इकाई – 1 व्यष्टि अर्थशास्त्र की प्रस्तावना
(Introduction of Micro Economics)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)
1.2 उद्देश्य (Objectives)
1.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा (Concept of Micro Economics)
1.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Micro Economics)
1.3.2 व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा (Definition of Micro Economics)
1.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र की विशेषताएँ (Characteristics of Micro Economics)
1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र का इतिहास (History of Micro Economics)
1.5 व्यष्टि अर्थशास्त्र में विश्लेषण के प्रकार (Types of Analysis in Micro Economics)
1.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Micro Economics)
1.7 व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्त्व एवं सीमाएं (Importance and Limitations of Micro Economics)
1.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
1.9 सारांश (Summary)
1.10 शब्दावली (Glossary)
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
1.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

माइक्रो (Micro) तथा मैक्रो (Macro) शब्द ग्रीक भाषा के हैं। इस भाषा में माइक्रो का अर्थ 'सूक्ष्म' तथा मैक्रो का अर्थ 'वृहत' होता है। अर्थशास्त्र में इन शब्दों का प्रयोग सबसे पहले रैग्नर फ्रिश (Ragnar Frisch) ने किया था। अब इन शब्दों को सभी अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार कर लिया है। आज माइक्रो इकोनोमिक्स अर्थात व्यष्टि अर्थशास्त्र और मैक्रो इकोनोमिक्स अर्थात समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की दो स्पष्ट शाखाएं हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र को विधिवत् जन्म देने का श्रेय प्रो. एडम स्मिथ को है, लेकिन इसका पूर्ण विकास प्रो. मार्शल तथा उसके सहयोगियों द्वारा किया गया है।

इस इकाई में आप व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा, स्वरूप व उसके क्षेत्र के बारे में पढ़ेगे। किसी भी अर्थव्यवस्था या आर्थिक निकाय के अध्ययन की सामान्यतः दो पद्धतियाँ हो सकती है। पहली पद्धति वह है जिसके अंतर्गत हम उस निकाय के छोटे या सूक्ष्म इकाईयों का अध्ययन करते है जो उस निकाय का सूक्ष्मतम अंग होती है। यह पद्धति 'व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण' कहलाती है। अध्ययन की दूसरी पद्धति वह है जब हम किसी आर्थिक समस्या का अध्ययन सम्पूर्ण आर्थिक निकाय की दृष्टि से करते है इसे 'समष्टि आर्थिक विश्लेषण' कहा जाता है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ✓ व्यष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं से अवगत हो सकेगें।
- ✓ स्थैतिक, प्रावैगिक एवं तुलनात्मक संतुलन को भली भाँति जान सकेगें।
- ✓ व्यष्टि अर्थशास्त्र के विकासक्रम को समझ सकेंगे।
- ✓ व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्व तथा औचित्य या उपयोग को समझ सकेगें।
- ✓ व्यष्टि अर्थशास्त्र की सीमाओं को जान सकेंगे।

1.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा (Concept of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र को प्रायः सूक्ष्म अर्थशास्त्र, अणु अर्थशास्त्र आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में व्यष्टि अर्थशास्त्र को ही 'कीमत सिद्धांत' कहा जाता था।

व्यष्टि अर्थशास्त्र के संबंध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों की विचारधाराओं में कोई मूलभूत मतभेद नहीं है। प्रायः सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि कोई भी आर्थिक सिद्धांत व्यष्टि अर्थशास्त्रीय होता है यदि वह अंतिम निर्णयकर्ताओं-उपभोक्ताओं और उत्पादकों अथवा परिवारों और व्यावसायिक फर्मों के संबंध में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष मान्यताओं पर आधारित होता है।

1.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Micro Economics)

अंग्रेजी शब्द **'Micro'** का अर्थ होता है बहुत छोटा भाग या अंश। अत: व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम अर्थव्यवस्था का समग्र अध्ययन ना करके अर्थव्यवस्था की विशिष्ट आर्थिक इकाइयों अथवा व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत एक उद्योग, एक वस्तु, एक फर्म, उपभोक्ता का अध्ययन किया जाता है। इसे ***'कीमत सिद्धान्त (Price Theory)'*** भी कहा जाता है। परन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में चाहे उपभोक्ता हों अथवा उत्पादक फर्म, उनके व्यवहार पर समग्र रूप में विचार नहीं किया जाता हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक विश्लेषण में हम एक वस्तु हेतु एक व्यक्ति की माँग का अध्ययन करते हैं और इसकी सहायता से उस वस्तु की बाजार माँग (एक वस्तु का उपभोग करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के समूह की माँग) का पता लगाते है। इसी प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक विश्लेषण में हम व्यक्तिगत फर्मों की कीमत और उत्पादन निर्धारण सम्बन्धी व्यवहारों का अध्ययन करते है और पता लगाते हैं कि माँग एवं

पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उनकी क्रियाओं पर क्या प्रभाव होगा। इसकी सहायता से हम एक उद्योग (एक समान वस्तु का उत्पादन करने वाली विभिन्न फर्मों का समूह) की कीमत और उत्पादन के निर्धारण की क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम उन आर्थिक सिद्धान्तों का अध्ययन करते है जिसके द्वारा विभिन्न आर्थिक इकाईयां संतुलन की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करती है।

1.3.2 व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा (Definiation of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार है-

केन्थ ई. बोल्डिग (Kenneth. E. Boulding) के अनुसार ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र कुछ विशेष आर्थिक इकाईयों तथा उनकी पारस्परिक प्रतिक्रियाओं; और विशेष आर्थिक मात्राओं एवं उनके निर्धारण का अध्ययन है। (Micro economics is the study of particular economic organism and their interation, and particular economic quantities and their determination.)"***

केन्थ ई. बोल्डिग (Kenneth. E. Boulding) ने इसकी एक अन्य सरल परिभाषा इस प्रकार दी है ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट परिवारों, व्यक्तिगत कीमतों, मजदूरियों, आयों, व्यक्तिगत उद्योगों तथा विशेष वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है। (Micro economics is the study of particular firms, particular households, individual prices, wages, incomes, individual industries, particular commodities.)"***

प्रो. हेन्डरसन एवं क्वांट (Handerson & Quandt) के अनुसार ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तियों एवं व्यक्तियों के ठीक से परिभाषित समूहों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन होता है। (Micro Economics is the study of economic actions of individual and well-defined group of individuals.)"*** उनके अनुसार व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांतों में कीमतों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है और साधारणतया उनका लक्ष्य कीमत निर्धारण तथा उपयोग विशेष में विशिष्ट साधन का विश्लेषण है।

गार्डनर ऐक्ले (Gardner Ackley) एक भिन्न पहलू से व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हैं। उनके शब्दों में, ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र विभिन्न उद्योगों, उत्पादों तथा फर्मों में कुल उत्पादन के विभाजन और प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगों में साधनों के आबंटन का विश्लेषण करता है। यह आय के वितरण की समस्याओं पर विचार करता है। इसका रुझान वस्तुओं और सेवा विशेष की तुलनात्मक कीमतों में है। (Microeconomics deals with the division of total output among industries, products and firms; and the allocation of resources among competing uses. It considers problems of income distribution. Its interest is in relative prices of particular goods and services.)"*** **ऐक्ले** अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए इस संबंध में आगे तर्क देते हैं कि कीमत विश्लेषण में भी यद्यपि हम कुल माँग और कुल पूर्ति की चर्चा करते हैं फिर भी यह व्याख्या व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में इसलिए आती है कि इसका संबंध संपूर्ण अर्थव्यवस्था से नहीं होता।

प्रो. शुल्ज (Schultz) के अनुसार ***""व्यष्टि अर्थशास्त्र का मुख्य यंत्र कीमत सिद्धान्त है। (Price theory is the main tool of Micro Economics.)"***

एडवर्ड चैम्बरलिन (Edward Chamberlin) के अनुसार ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र पूर्णतया व्यक्तिगत व्याख्या पर आधारित है तथा इसका सम्बन्ध अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों से होता है।"***

प्रो. जे. के. मेहता (Pro. J. K. Mehta) के अनुसार ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र केवल इस बात का अध्ययन करता है कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती है।"***

1.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र की विशेषताएँ (Characteristics of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा और क्षेत्र के आधार पर इसकी प्रमुख विषेशताओ को निम्न रूप मे स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत व्यक्तिगत आर्थिक इकाईयों जैसे एक व्यक्ति, एक परिवार, एक फर्म आदि से सम्बन्धित व्यय, उपभोग, बचत, विनियोग व आय के स्त्रोतों (व्यक्तिगत उत्पादन, व्यक्तिगत आय और व्यक्तिगत उपभोग आदि) का विशलेषणात्मक अध्ययन किया जाता है।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत कीमत निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में माँग और पूर्ति के द्वारा विभिन्न वस्तुओं के व्यक्तिगत मूल्य निर्धारित किए जाते है।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत सामान्य मूल्य स्तर का नही अपितु कीमतों के सापेक्षिक ढाँचे का अध्ययन किया जाता है। अर्थात विशिष्ट वस्तुओं व साधनों की कीमतों के निर्धारण व उनके पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
4. व्यष्टि अर्थशास्त्र में कुल उत्पादन का नही बल्कि कुल उत्पादन की संरचना का तथा विभिन्न प्रयोगों में साधनों के वितरण का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो यह कुल आय का नही बल्कि कुल आय के वितरण का अध्ययन किया जाता है।

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र का इतिहास (History of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र का जन्मदाता प्रसिद्ध परंपरावादी (Classical) अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ** (Adam Smith) को माना जाता है। एडम स्मिथ की पुस्तक 'An Inquiry Into the Nature and Causes of the Wealth of Nations' के प्रकाशन से पहले इंग्लैंड के वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों (marcantilists) ने अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए थे। ये सिद्धांत व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत नहीं आते। इसका कारण यह है कि वाणिज्यवादी विद्वान संपूर्ण अर्थव्यवस्था, राष्ट्र के संपूर्ण स्त्रोतों और रोजगार के अनुकूलतम स्तर में दिलचस्पी रखते थे। स्वयं एडम स्मिथ की भी दिलचस्पी राष्ट्रों की संपन्नता में थी और उन्होंने इस समस्या पर समग्र रूप से विचार किया था। लेकिन उन्होंने मूल्य निर्धारण की समस्या पर भी विशेष ध्यान दिया। एडम स्मिथ के अतिरिक्त रिकार्डों (Ricardo), मिल (Mill), सीनियर (Senior) आदि परंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टि अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आस्ट्रियन संप्रदाय (Austrian School) के अर्थशास्त्रियों ने सीमान्त विश्लेषण पर जोर दिया। सीमान्त विश्लेषण में व्यक्तिगत उपभोक्ता अथवा व्यक्तिगत फर्म का सीमान्त बिन्दु पर विश्लेषण करना होता है। सीमान्त विश्लेषण को प्रतिष्ठा प्रदान करने में अंग्रेजी उपयोगितावादी अर्थशास्त्री **विलियम स्टेनले जेवस** (William Stanley Jevons) का योगदान कम नहीं है। जेवस (Jevons) और **मेंजर (Menger)** के समकालीन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **वालरस** (Walras) ने मूल्य के उपयोगिता सिद्धांत को बाजार संतुलन के सिद्धांत के साथ जोड़कर व्यष्टि अर्थशास्त्र को काफी समृद्ध बनाया है।

नवपरंपरावादी (Neo-Classical) अर्थशास्त्रियों में अधिकतर संपूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्य संचालन के प्रति उदासीन रहे हैं। इन्होंने वस्तु विशेष की कीमत निर्धारण की समस्या, फर्म विशेष द्वारा उत्पादन के आकार, साधनों के आबंटन तथा उत्पादन में कार्यकुशलता की समस्याओं पर विस्तार से विचार किया है। मार्शल (Marshall) की वर्ष 1890 में प्रकाशित पुस्तक 'Principles of Economics' इस संप्रदाय के अर्थशास्त्रियों

की रचनाओं में अद्वितीय है। इस पुस्तक में मार्शल ने विविध आर्थिक व्यवहारों की व्याख्या सीमान्त विश्लेषण की सहायता से की है।

1.5 व्यष्टि अर्थशास्त्र में विश्लेषण के प्रकार (Types of Analysis in Micro Economics)

व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण तीन प्रकार का होता है - व्यष्टि आर्थिक स्थैतिकी, व्यष्टि आर्थिक तुलनात्मक स्थैतिकी तथा व्यष्टि आर्थिक प्रावैगिकी

1. **व्यष्टि आर्थिक स्थैतिकी (Micro-statics) –** यह वह आर्थिक विश्लेषण होता है। जो किसी दिए हुए समय पर सन्तुलन की स्थिति में विभिन्न मात्राओं के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है। इस विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि सन्तुलन की स्थिति एक निश्चित समय-बिन्दु से सम्बन्धित होती है और उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरण के लिए, बाजार में किसी विशिष्ट वस्तु का मूल्य एक निश्चित समय बिन्दु पर उसकी माँग एवं पूर्ति से निर्धारित होता है। व्यष्टि आर्थिक स्थैतिकी में यह मान लिया जाता है कि माँग एवं पूर्ति की शक्तियों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। व्यष्टि आर्थिक स्थैतिकी में उस प्रक्रिया के बारे में कोई अध्ययन नहीं किया जाता है जिससे माँग एवं पूर्ति के बीच सन्तुलन कैसे स्थापित होता है ।
2. **व्यष्टि आर्थिक तुलनात्मक स्थैतिकी (Comparative-micro statics) -** यह विश्लेषण की वह विधि है जिसमें विभिन्न समय बिन्दुओं पर व्यष्टि मात्राओं के परस्पर सम्बन्धों की सन्तुलन स्थितियों की तुलना की जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न समय- बिन्दुओं पर विभिन्न सन्तुलन स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है परन्तु इस विधि में पुराने सन्तुलन एवं नए सन्तुलन के बीच के संक्रमण काल पर कोई प्रकाश नहीं डाला जाता है। इस विश्लेषण में एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन तक पहुँचा जाता है, लेकिन इस बात का अध्ययन नहीं किया जाता है कि एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन तक पहुँचने के मध्य क्या घटनाएँ घटित हुईं। उदाहरण के लिए, किसी समय बाजार में प्रति इकाई मूल्य 5 रुपए है और यह बाजार में वस्तु की माँग एवं पूर्ति के सन्तुलन द्वारा निर्धारित हुआ है। अब मान लीजिए किसी कारण वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है और नया सन्तुलन मूल्य 10 रुपये प्रति इकाई निर्धारित होता है। व्यष्टि आर्थिक तुलनात्मक स्थैतिकी इन दोनों सन्तुलन मूल्यों की तुलना करेगी परन्तु उस प्रक्रिया पर प्रकाश नहीं डालेगी जिसके माध्यम से नया सन्तुलन मूल्य 5 रुपये से बढ़कर 10 रुपये निर्धारित हुआ है।
3. **व्यष्टि आर्थिक प्रावैगिकी (Micro dynamics) -** यह आर्थिक विश्लेषण की वह विधि है जिसमें उस प्रक्रिया का विस्तृत अध्ययन किया जाता है जिसके माध्यम से पुराने सन्तुलन से नवीन साम्य की ओर पहुँचा जाता है। इस विधि में उन शक्तियों का पूर्ण अध्ययन किया जाता है जो पुराने सन्तुलनों के भंग होने तथा नए सन्तुलन के स्थापित होने के संक्रमण काल में कार्यशील रहती है।

1.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसके अंतर्गत मोटे रूप से अर्थशास्त्र की चार केंद्रीय समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। ये समस्याएं हैं:

1. मूल्य निर्धारण (Price Determination)
2. उत्पादन फलन (Production Function)
3. वितरण (Distribution)
4. उत्पादन के साधनों के आबंटन में कुशलता (Efficiency in the allocation of factor of production)

1. **मूल्य निर्धारण (Price Determination) -** अर्थशास्त्रियों ने लम्बे समय तक मूल्य निर्धारण की समस्या पर विशेष ध्यान दिया है। परंपरावादी अर्थशास्त्री मूल्य के श्रम सिद्धांत पर जोर देते थे। आस्ट्रियन संप्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने सीमांत उपयोगिता को मूल्य की व्याख्या का आधार बनाया। तब से व्यष्टि अर्थशास्त्र में उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन किया जाने लगा। आजकल उपयोगिता विश्लेषण, अनधिमान/ उदासीनता/ तटस्थता वक्र संबंधी व्याख्या और उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का अध्ययन कीमत सिद्धांत को समझने के लिए किया जाता है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र का संबंध वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों से है ना कि सामान्य कीमत स्तर से। सामान्य कीमत स्तर का विश्लेषण समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।
2. **उत्पादन फलन (Production Function) -** उत्पादन फलन की समस्या दरअसल उत्पादन की विभिन्न तकनीकों में से उपयुक्त तकनीक के चुनाव की समस्या है। हम सभी जानते हैं कि किसी वस्तु के उत्पादन के लिए साधनों को विभिन्न अनुपातों में लगाया जा सकता है। उत्पादक, लागत को न्यूनतम रखने का प्रयास करेगा और इस दृष्टि से वह उन साधनों को अधिक मात्रा में लगाएगा जिन साधनों की सापेक्षिक कीमत कम और उत्पादकता अधिक होगी। अर्थशास्त्र में उत्पादक के इस व्यवहार का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आता है।
3. **वितरण (Distribution) -** राष्ट्रीय आय का विभिन्न व्यक्तियों अथवा वर्ग समूहों में वितरण अध्ययन की दृष्टि से बहुत दिलचस्प विषय है। हम सभी यह जानना चाहते हैं कि व्यक्ति विशेष अथवा किसी साधन विशेष की आय किस प्रकार निर्धारित होती है और वह अन्य लोगों की आय से कम अथवा अधिक क्यों होती है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में इस समस्या का स्पष्टीकरण मिलता है। विश्लेषण की इस शाखा में राष्ट्रीय आय के स्तर पर विचार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय आय के स्तर का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।
4. **उत्पादन के साधनों के आबंटन में कुशलता (Efficiency in the allocation of factor of production) -** उत्पादन कार्य में कुशलता लाना अथवा अपव्यय को रोकना एक महत्वपूर्ण समस्या है। अर्थशास्त्री प्रायः उन स्थितियों को निर्धारित करने का प्रयास करते हैं जिनमें उत्पादन व्यवस्था कुशल मानी जाती है। पैरेटों (Pareto), हिक्स (Hicks), कैल्डोर (Kaldor), बर्गसन (Bergson) इत्यादि ने इस क्षेत्र में काफी काम किया है। इनके प्रयासों से व्यष्टि अर्थशास्त्र में 'कल्याण अर्थशास्त्र' (Welfare Economics) के नाम से एक पृथक शाखा का विकास हुआ है।

संक्षेप में, व्यष्टि अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र में निम्नलिखित शामिल किए जाते हैं-

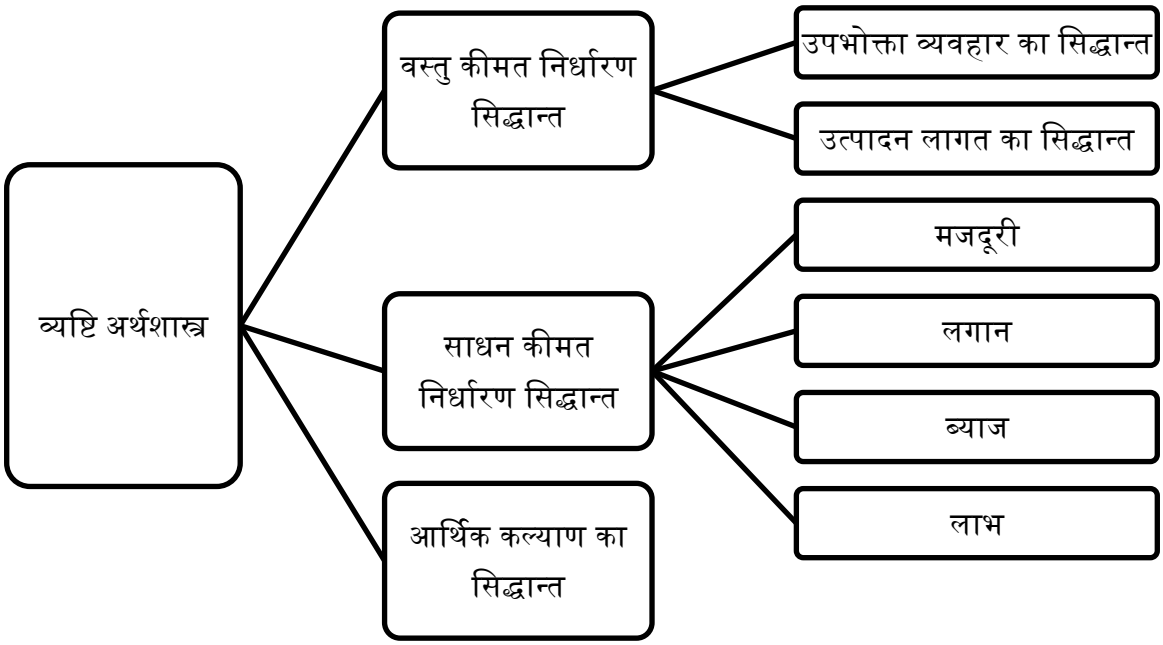

1. **वस्तु-कीमत निर्धारण सिद्धान्त (Theory of Product-Pricing) -** इस भाग में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है। सभी प्रकार की कीमतों का निर्धारण उनकी माँग व पूर्ति की शक्तियों पर निर्भर करता है। अतः इस भाग के आगे दो उप-भाग हैं - उपभोक्ता व्यवहार का सिद्धान्त तथा उत्पादन लागत का सिद्धान्त।
2. **साधन-कीमत निर्धारण सिद्धान्त (Theory of Factor-Pricing) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र के इस भाग में उत्पादन के साधनों (भूमि, श्रम,पूँजी व उद्यम) की कीमतों के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। इस भाग में मुख्य चार सिद्धान्त आते हैं- लगान का सिद्धान्त, मजदूरी का सिद्धान्त, ब्याज का सिद्धान्त तथा लाभ का सिद्धान्त।
3. **आर्थिक कल्याण का सिद्धान्त (Theory of Economic Welfare) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र में यह भी अध्ययन किया जाता है कि साधनों का कुशलतम उपयोग हो रहा है अथवा नहीं। साधनों का कुशलतम उपयोग तभी होगा जब अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो रही हो। अधिकतम संतुष्टि की प्राप्ति ही आर्थिक कल्याण का सूचक है। जब व्यक्तिगत उपभोक्ता अथवा उत्पादक अपने साधनों का कुशलतम उपयोग करता है, तो यह व्यक्तिगत कल्याण (Individual Welfare) होगा। यदि एक अर्थव्यवस्था में साधनों का कुशलतम उपयोग हो रहा हो तो इसे सामाजिक कल्याण (Social Welfare) कहेंगे। इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के कल्याण का अध्ययन करते हैं।

1.7 व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्त्व एवं सीमाएं (Importance and Limitations of Micro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्त्व

व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण विधि है जिसे कीन्स ने मनुष्य के विचार के उपकरण का आवश्यक भाग माना है। इसके सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही महत्त्व हैं।

1. **अर्थव्यवस्था के कार्य प्रणाली को समझना (To understand the working of the economy)–** मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के समझने हेतु व्यष्टि अर्थशास्त्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रणाली का नियोजन और समन्वय करने के लिए कोई भी संस्था नहीं होती है।

अर्थव्यवस्था में क्या उत्पादन किया जाए?, उत्पादन कैसे किया जाए?, उत्पादन किसके लिए किया जाए?, कैसे वितरण किया जाए और क्या उपभोग किया जाए?, ऐसे सभी निर्णय उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं द्वारा लिए जाते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक केंद्रीय आयोजित अर्थव्यवस्था में आयोजन प्राधिकारी एक मुक्त उद्यम अर्थव्यवस्था के अभाव में अर्थव्यवस्था के कुशल कार्यकरण को प्राप्त नहीं कर सकते। जैसा कि **लर्नर** ने कहा है, ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र हमें यह सिखाता है कि अर्थव्यवस्था का पूर्णरूपेण 'सीधा' कार्यकरण असंभव है। आधुनिक अर्थव्यवस्था इतनी जटिल है कि कोई भी केंद्रीय आयोजन संस्था सारी सूचना प्राप्त नहीं कर सकती और इसके कुशल कार्यकरण के लिए सभी आवश्यक निर्देश नहीं दे सकती।"***

2. **आर्थिक नीतियों के लिए उपकरण प्रदान करना (To provide tools for economic policy)-** व्यष्टि अर्थशास्त्र राज्य को आर्थिक नीतियों का मूल्यांकन करने के लिए विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान करता है। कीमत या मूल्य प्रणाली एक उपकरण है जो इस कार्य में सहायता देती है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में राज्य कई सार्वजनिक उपयोगी सेवाएँ जैसे डाक, रेल, पानी, बिजली आदि का संचालन करता है। इन अवस्थाओं में केंद्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारें लाभ-हानि के आधार पर कीमतें नियत नहीं करती हैं। आगे, ये कीमतें अन्य वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को प्रभावित करती हैं। यहाँ सार्वजनिक उद्यम भी होते हैं जिनका संचालन लागत-लाभ नीति पर होता है। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की कीमतें अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को प्रभावित करती हैं। कुछ सार्वजनिक उद्यम निजी उद्यमों के प्रतियोगी होते हैं जिससे उनकी कीमत नीतियाँ कीमत प्रणाली पर आधारित होती हैं। वे निजी क्षेत्र से अधिक कीमतें नहीं ले सकते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र सरकार को सही कीमत नीतियाँ बनाने और उनका ठीकक ढंग से मूल्यांकन करने में सहायता करता है।
3. **संसाधनों की कुशल नियोजन में सहायक (Helpful in the efficient employment of resources) -**कीमत सिद्धांत का संबंध दुर्लभ संसाधनों के कुशल मितव्ययी प्रयोग से है। आधुनिक सरकारों को जिस मुख्य समस्या का सामना करना पड़ता है वह प्रतियोगी साध्यों में संसाधनों के वितरण की है। इस विचार से, व्यष्टि अर्थशास्त्र का सरकार द्वारा प्रयोग संसाधनों को कुशल नियोजन और स्थिरता के साथ विकास प्राप्ति के लिए होता है।
4. **व्यवसाय कार्यपालक को सहायता (Help to the business executive)-** व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यावसायिक को वर्तमान संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। वह इसकी सहायता से उपभोक्ता माँग को जानने और अपनी वस्तु की लागतों का आकलन करने में समर्थ होता है।
5. **कराधान की समस्याएँ समझने में सहायक (Helpful in understanding the problem of Taxtation) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र कराधान की कुछ समस्याओं को समझने में सहायक होता है। यह एक कर के कल्याणकारी परिणामों की व्याख्या करने में प्रयोग किया जाता है। यह कर साधनों के अपने इष्टतम स्तर से पुनर्वितरण की ओर ले जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र यह समझाने में सहायता करता है कि आयकर सामाजिक कल्याण की कमी करता है या फिर उत्पादन शुल्क या बिक्री कर। आयकर की अपेक्षा उत्पादन शुल्क या बिक्री कर सामाजिक कल्याण में कमी लाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र विश्लेषण, विक्रेताओं और उपभोक्ताओं में वस्तु-कर (उत्पादन शुल्क या बिक्री कर) के करापात के वितरण का भी अध्ययन करता है।
6. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याएँ समझने में सहायक (Helpful in understanding the problems of International Trade) -** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में इसका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ, भुगतान शेष के असंतुलन और विदेशी विनिमय दर के निर्धारण में किया जाता है। एक दूसरे की वस्तुओं के प्रति माँग की सापेक्षिक लोच, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ को निर्धारित करती हैं। भुगतान-

शेष में असंतुलन, विदेशी मुद्रा की माँग की पूर्ति में असमानता होती है। एक मुक्त बाजार में करेंसी की कमी विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

7. **आर्थिक कल्याण की शर्तों का निरीक्षण करना (To examine the condition of economic welfare) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक कल्याण की शर्तों का निरीक्षण करने के लिए किया जा सकता है, ***"अर्थात व्यक्तिपरक (Subjective) संतुष्टियों का निरीक्षण करना जिनको व्यक्ति, वस्तुओं एवं सेवाओं तथा विश्राम का आनंद लेकर प्राप्त करते हैं।"*** यह कल्याणकारी अर्थशास्त्र का अध्ययन शामिल करता है जोकि एक आदर्श अर्थव्यवस्था को परिभाषित करता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कल्याण अर्थशास्त्र का संबंध सामाजिक कल्याण को बढ़ाने से है। यह केवल पूर्ण प्रतियोगिता में ही संभव है। परंतु एकाधिकार, अलपाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सदैव संसाधनों का अनुचित आबंटन होता है और प्राप्त उत्पादन सदैव इष्टतम से कम होता है। अतः संसाधनों का काफी अपव्यय होता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र अधिकतम सामाजिक कल्याण लाने के लिए अपव्ययों को दूर करने हेतु कई तरीकों का सुझाव देने में सहायता करता है। जैसा कि **प्रो. लर्नर** ने ठीक कहा है, ***"हम व्यष्टि अर्थशास्त्र में अधिकतर अपव्यय को दूर करने या समाप्त करने से संबंधित होते हैं, या इससे कि अकुशलता उत्पन्न होने से उत्पादन का संगठन कुशलतम संभव तरीके से नहीं किया गया। व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धांत दक्षता की शर्तों को बताता है (अर्थात सभी प्रकार की अकुशलताओं को समाप्त करने के लिए) और यह सुझाव देता है कि इन शर्तों को कैसे पूरा किया जाए। ये शर्त 'पैरेटो इष्टतम' शर्तें कहलाती है) जनसंख्या का रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने में सबसे अधिक सहायक हो सकती है।"***

8. **पूर्वकथन का आधार (The basis for prediction) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धांत पूर्व कथन के आधार के तौर पर प्रयोग हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि यह हमें भविष्य को बताने में सामर्थ्य देगा। लेकिन यह अधिकारी को प्रतिबंधात्मक (conditional) पूर्वकथन करने में सामर्थ्य देगा। इन शर्तों की निम्नलिखित किस्में है यदि कुछ होता है, तो एक निश्चित परिणामों के समूह पाये जायेंगे। उदाहरणार्थ हम वस्तुओं और मजदूरियों को प्रभावित कर रही सरकारी नीतियों का अध्ययन करने में समर्थ हो और देखें कि यह नीतियाँ साधनों के वितरण को कैसे प्रभावित करती है। व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धांत हमें यहाँ प्रतिबंधात्मक पूर्वकथन करने में सामर्थ्य देगा।

9. **वास्तविक आर्थिक तत्वों के लिए मॉडलों का निर्माण एवं प्रयोग (Construction and use of models for actual economic phenomena) -** व्यष्टि अर्थशास्त्र वास्तविक आर्थिक तत्त्वों को समझने के लिए मॉडलों को बनाता और प्रयोग करता है। जैसा कि **लर्नर** ने कहा है, ***"व्यष्टि अर्थशास्त्र यह समझने की सुविधा देता है कि बुरी तरह से जटिल अस्त-व्यस्त असंख्य तथ्यों के लिए व्यवहार के मॉडल बनाकर जो काफी हद तक वास्तविक घटनाओं के समान होते हैं। उनके समझने में सहायक होगा। इसी समय ये मॉडल अर्थशास्त्रियों को उस कोटि तक व्याख्या करने की सामर्थ्य देते हैं जहाँ तक कि वास्तविक घटनाएँ निश्चित आदर्श रचनाओं में विकसित होती हैं, जो पूर्णतया व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों को पूर्ण करेंगे। इसी प्रकार वे केवल वास्तविक आर्थिक स्थिति का ही वर्णन करने में सहायक नहीं होते, परंतु नीतियाँ भी सुझाते हैं, जोकि बहुत सफलता एवं बहुत दक्षता के साथ इच्छित परिणामों को लाएगी और ऐसी नीतियाँ एवं अन्य घटनाओं के परिणामों की भी भविष्यवाणी करेंगी।***

(Microeconomic theory facilitates the understanding of what would be a hopelessly complicated confusion of billions of facts by constructing simplified models of behaviour which are sufficiently similar to the actual phenomena to be of help in understanding them. These models at the same time enable the

economists to explain the degree to which the actual phenomena depart from certain ideal constructions that would most com-letely achieve individual and social objectives. They, thus, help not only to describe the actual economic situation, but to suggest policies that would most successfully and most efficiently bring about desired results and to predict the outcomes of such policies and other events.)" इस प्रकार, यह समस्या सुलझाने की एक बढ़िया विधि है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की सीमाएं

निस्संदेह व्यष्टि अर्थशास्त्र, अर्थप्रणाली और आर्थिक व्यवहार को समझने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है लेकिन इस प्रकार के विश्लेषण की कुछ सीमाएं भी हैं जोकि निम्नलिखित है

1. यह अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। **कीन्स** के अनुसार, पूर्ण रोजगार को मानना यह मान लेने के बराबर है कि हमारे सामने कठिनाइयाँ हैं ही नहीं। वास्तविक संसार में पूर्ण रोजगार नियम नहीं, बल्कि अपवाद है। वास्तविक जीवन में यदि अर्थप्रणाली का स्वरूप पूंजीवादी हो तो पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है। इसलिए इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित व्यष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धांत व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में अधिक उपयोगी नहीं है। इस प्रकार, व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक अवास्तविक विधि है।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र अबाध (laissez faire) नीति की मान्यता पर आधारित है। परंतु यह नीति अब बिल्कुल प्रयोग में नहीं लाई जाती है। यह 1930 के दशक की महान मंदी के साथ ही समाप्त हो गई थी। इस कारण व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अवास्तविक बन जाता है।
3. संपूर्ण अर्थव्यवस्था के सही स्वरूप को प्रस्तुत करने में असमर्थ था। व्यष्टि अर्थशास्त्र संपूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्य संचालन को स्पष्ट कर पाने में असमर्थ रहता है। इसका कारण यह है कि अक्सर लोगों के व्यक्तिगत व्यवहार का जोड़ सामूहिक व्यवहार से भिन्न होता है। इस विरोधाभास को आसानी से समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, जब समाज के सभी व्यक्ति अपनी-अपनी बचतों को बढ़ा देते हैं तो इस प्रकार सामाजिक बचत अंततः गिर जाती है। लोगों द्वारा अपनी बचत बढ़ाने का फल यह होता है कि उन्हें अपने उपभोग में कभी करनी होती है। दूसरे शब्दों में, उपभोग संबंधी वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। अतः उत्पादन की मात्रा में कमी होती है और रोजगार का स्तर नीचे गिरता है। इस स्थिति के परिणामस्वरूप उत्पादन के सभी साधनों की आय और बचत करने का सामर्थ्य कम हो जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि व्यक्तियों द्वारा अपनी बचत बढ़ाने का अंतिम परिणाम यह होता है कि सामाजिक बचत कम हो जाती है। व्यष्टि अर्थशास्त्र अंशों के अध्ययन से संबंधित है और समस्त की उपेक्षा करता है। जैसा कि बोल्डिंग ने व्यक्त किया है, ***"आर्थिक प्रणाली जैसे तथ्यों के एक बड़े और जटिल संसार की व्याख्या व्यक्तिगत इकाइयों के रूप में करना असंभव है।"*** अतः व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अर्थव्यवस्था की एक अस्पष्ट और अपूर्ण तस्वीर प्रदान करता है।
4. कई आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करने में व्यष्टि अर्थशास्त्र असमर्थ ही नहीं, बल्कि आपत्तिजनक भी है। यह आवश्यक नहीं कि जो नियम एक विशेष परिवार, फर्म या उद्योग के लिए सत्य हैं वे समस्त अर्थव्यवस्था पर भी ठीक-ठीक लागू हो।

1.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक ..... की एक महत्त्वपूर्ण विधि है। (विभाग/विश्लेषण)
2. 'व्यष्टि' शब्द ग्रीक शब्द ..... से लिया गया है। (Macros/Micros)

निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए -

1. व्यक्तियों और व्यक्तियों के छोटे समूहों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। (सत्य / असत्य)
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र कीमत सिद्धांत का अध्ययन है। (सत्य / असत्य)
3. अर्थशास्त्र में माइक्रो (Micro) तथा मैक्रो (Macro) शब्दों का प्रयोग सबसे पहले प्रो. एडम स्मिथ ने किया था। (सत्य / असत्य)

1.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह भलीभांति समझ चुके होगें कि व्यष्टि अर्थशास्त्र को विधिवत् जन्म देने का श्रेय प्रो. एडम स्मिथ को है, लेकिन इसका पूर्ण विकास प्रो. मार्शल तथा उसके सहयोगियों द्वारा किया गया है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक विश्लेषण में हम एक वस्तु हेतु एक व्यक्ति की माँग का अध्ययन करते हैं और इसकी सहायता से उस वस्तु की बाजार माँग का पता लगाते है। इसी प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक विश्लेषण में हम व्यक्तिगत फर्मों की कीमत और उत्पादन निर्धारण सम्बन्धी व्यवहारों का अध्ययन करते है और पता लगाते हैं कि माँग एवं पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन होने फलस्वरूप उनकी क्रियाओं पर क्या प्रभाव होगा। इसकी सहायता से हम एक उद्योग की कीमत और उत्पादन के निर्धारण की क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम उन आर्थिक सिद्धान्तों का अध्ययन करते है जिसके द्वारा विभिन्न आर्थिक इकाईयां संतुलन की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करती है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में विश्लेषण के अर्न्तगत सन्तुलन का अध्ययन तीन प्रकार से संभव है। पहला स्थैतिक सन्तुलन, दूसरा प्रावैगिक सन्तुलन और तीसरा तुलनात्मक सन्तुलन। व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसके अंतर्गत अर्थशास्त्र की चार केंद्रीय समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। पहला मूल्य निर्धारण दूसरा उत्पादन फलन तीसरा वितरण और चौथा उत्पादन के साधनों के आबंटन में कुशलता।

1.10 शब्दावली (Glossary)

- **व्यष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics) :** व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थव्यवस्था की विशिष्ट आर्थिक इकाइयों अथवा व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन किया जाता हैं।
- **स्थैतिक संतुलन (Static Equilibrium) :** स्थैतिक संतुलन विश्लेषण के अर्न्तगत दिए गए आँकड़ों की सहायता से सन्तुलन मूल्यों के निर्धारण की व्याख्या की जाती है।
- **प्रावैगिक संतुलन (Dynamic Equilibrium) :** प्रावैगिक संतुलन विश्लेषण में यह व्याख्या की जाती है कि आधार सामग्री (आँकड़ों) में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था किस प्रकार एक सन्तुलन अवस्था से दूसरी सन्तुलन अवस्था में पहुँचती है।
- **तुलनात्मक संतुलन (Comparative Equilibrium)** : स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषणों के मध्य की अध्ययन विधि है। तुलनात्मक विश्लेषण के अर्न्तगत हम प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की तुलना उस अन्य सन्तुलन अवस्था से करते है जो आँकड़ों के परिवर्तित होने के फलस्वरुप प्राप्त होती है।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. विश्लेषण 2. Micros

निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए –

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

1.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा को विस्तारपूर्वक लिखिए।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र में संतुलन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
4. व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्त्व एवं सीमाएं लिखिए।

इकाई – 2 संतुलन की अवधारणा
(Concept of Equilibrium)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.2 उद्देश्य (Objectives)
2.3 संतुलन की अवधारणा (Concept of Equilibrium)
2.3.1 संतुलन का अर्थ (Meaning of Equilibrium)
2.3.2 संतुलन की परिभाषाएं (Definitions of Equilibrium)
2.4 संतुलन का वर्गीकरण (Classification of Equilibrium)
2.4.1 स्थिर, अस्थिर एवं तटस्थ संतुलन (Stable, Unstable and Neutral Equilibrium)
2.4.2 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन संतुलन (Short Period and Long Period Equilibrium)
2.4.3 आंशिक एवं सामान्य संतुलन (Partial and General Equilibrium)
2.4.4 एकाकी एवं बहुमुखी संतुलन (Single and Multiple Equilibrium)
2.4.5 स्थैतिक एवं प्रावैगिक संतुलन (Static and Dynamic Equilibrium)
2.5 संतुलन की अवधारणा का महत्त्व (Importance of the Concept of Equilibrium)
2.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
2.7 सारांश (Summary)
2.8 शब्दावली (Glossary)
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
2.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

2. 1. प्रस्तावना (Introduction)

वास्तविक आर्थिक जगत में प्राय: संतुलन का अभाव पाया जाता है परन्तु इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक शक्तियां प्रणाली को संतुलन की दिशा में ले जाने का प्रयास करती हैं। कभी-कभी वास्तविक जीवन में वस्तु विशेष के बाजार में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था में साम्य स्थापित हो जाता है लेकिन संतुलन चाहे व्यष्टि स्तर पर हो अथवा समष्टि स्तर पर, प्राय: अल्पकालिक होता है।

इस इकाई के अन्तर्गत संतुलन के अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण की विस्तृत चर्चा की गई है। इसके साथ ही आर्थिक प्रणाली में संतुलन का अध्ययन किस प्रकार किया जाता है उसको स्पष्ट किया गया है।

2. 2. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ✓ अर्थशास्त्र में संतुलन के अर्थ को जान सकेगें।
- ✓ आंशिक एवं सामान्य संतुलन को भली भाँति जान सकेगें।
- ✓ स्थैतिक और प्रावैगिक संतुलन में अंतर समझ सकेंगे।
- ✓ संतुलन के वर्गीकरण की एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ अर्थशास्त्र में सन्तुलन विश्लेषण के महत्व को को जान सकेगें।

2.3 संतुलन की अवधारणा (Concept of Equilibrium)

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में संतुलन शब्द का महत्वपूर्ण स्थान है।

2.3.1 संतुलन का अर्थ (Meaning of Equilibrium)

'सन्तुलन' शब्द भौतिक विज्ञान (Physics) से लिया गया है। 'सन्तुलन' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर Equilibribrium लैटिन भाषा के दो शब्दों 'Acqus' अर्थात् समान + 'Libra' अर्थात् संतुलन से हुआ है। इस प्रकार सन्तुलन का अर्थ है समान सन्तुलन।

अर्थशास्त्र में यद्यपि यह शब्द भौतिक विज्ञान (Physics) से लिया गया है फिर भी अर्थशास्त्र में इसका अर्थ वह नहीं हैं जो भौतिक विज्ञान में है। भौतिक विज्ञान में इसका अर्थ स्थिर अवस्था (State of Rest) से लिया जाता है। यह दशा उस समय होती है जब दो विरोधी शक्तियाँ एक समान बल का प्रयोग कर रही हों और उसके परिणामस्वरूप स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन न आए। इस प्रकार इसका अर्थ यह हुआ कि सन्तुलन की स्थिति में परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती या किसी प्रकार की कोई गति (Movement) नहीं होती। किन्तु अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अर्थ स्थिर अवस्था अथवा अर्थव्यवस्था में गतिहीनता से नहीं लिया जाता। यदि ऐसा मान लिया जाए तो उत्पादन, व्यापार, उपभोग, विनिमय इत्यादि सभी क्रियाएँ ठप्प हो जाएगी और अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न (Crash) हो जाएगी। अर्थशास्त्र में सन्तुलन की दशा में ऐसी सभी प्रकार की क्रियाएँ होती रहती हैं किन्तु इन क्रियाओं की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता। अत: अर्थशास्त्र में सन्तुलन की अवस्था उस स्थिति को कहते हैं जिसमें गति तो होती है परन्तु गति की दर में परिवर्तन नहीं होता।

उदाहरण के लिए, रस्सा-कशी (Tug-of- War) प्रतियोगिता में जब दोनों टीमें बराबर बल का प्रयोग कर रही होती हैं तो रस्सा स्थिर स्थिति में आ जाता है। इसी प्रकार जब तराजू के दोनों पलड़ों में बराबर का वजन होता है तो तराजू की डंडी सीधी रहती है। ये अवस्थाएँ सन्तुलन स्थिति की सूचक हैं।

2.3.2 संतुलन की परिभाषाएं (Definitions of Equilibrium)

प्रो. स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, ***"संतुलन वह स्थिति है जिसमें गति की शुद्ध प्रवृत्ति न हो, हम शुद्ध प्रवृत्ति इस कथन पर बल देने के लिए कहते हैं कि यह स्थिति आवश्यक रूप से आकस्मिक जड़ता की नहीं होती***

अपितु इसके स्थान पर यह बलशाली शक्तियों को निष्प्रभावित करने की स्थिति को प्रदर्शित करती हैं। (An Equilibrium is a position from which there is no net tendency to move, we say net tendency to emphasise the fact that it is not necessarily a state of sudden inertia, but may instead represent the cancellation of power forces.)"

प्रो. जे. के. मेहता के शब्दों में, *"अर्थशास्त्र में संतुलन, गति में परिवर्तन की अनुपस्थिति को प्रदर्शित करता है। (Equilibrium in Economics denotes the absence of change in movement.)"*

प्रो. हेन्सन (Prof. Hanson) के शब्दों में *"संतुलन वह अवस्था है, जिसमें उस समय पर विद्यमान आर्थिक बलों में परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं होती। (Equilibrium is a situation in which economic forces, as they exist at the time, have no tendency to change)"*

सीटोवस्की (Scitovasky) के अनुसार, *"कोई एक बाजार अथवा एक अर्थव्यवस्था अथवा व्यक्तियों या फर्म का कोई एक समूह, सन्तुलन की अवस्था में तब कहा जाता है जबकि इसमें कोई सदस्य अपने व्यवहार में परिवर्तन करने की इच्छा नहीं करता। इसलिए एक समूह को सन्तुलन में होने के लिए, उसके सभी सदस्यों का संतुलन में होना आवश्यक है और प्रत्येक सदस्य का सन्तुलन व्यवहार अन्य सभी सदस्यों के सन्तुलन व्यवहार के अनुरूप होना चाहिए।"*

उदाहरण के रूप में एक **उपभोक्ता** संतुलन की स्थिति में तब होगा जब वह अपनी सीमित आय को खर्च करके अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर रहा होगा। एक **उत्पादक** संतुलन की स्थिति में तब होगा जब वह अपने सीमित साधनों से अधिकतम उत्पादन कर रहा होगा। एक **उद्योग** संतुलन की दशा में तब होगा जब उसमें किसी भी नई फर्म के प्रवेश या वर्तमान फर्म को छोड़ने की प्रवृत्ति ना हो।

मान लीजिए, बाजार में X वस्तु का क्रय-विक्रय होता है। जिस बिन्दु पर X वस्तु की माँग और पूर्ति समान रहती है, वह **संतुलन बिन्दु** कहलाता है। जिस कीमत पर X वस्तु का क्रय-विक्रय होता है, वह **सन्तुलन कीमत** कहलाती है। X वस्तु की वह मात्रा, जिसका उस कीमत पर क्रय-विक्रय किया जाता है, **सन्तुलन मात्रा** कहलाती है।

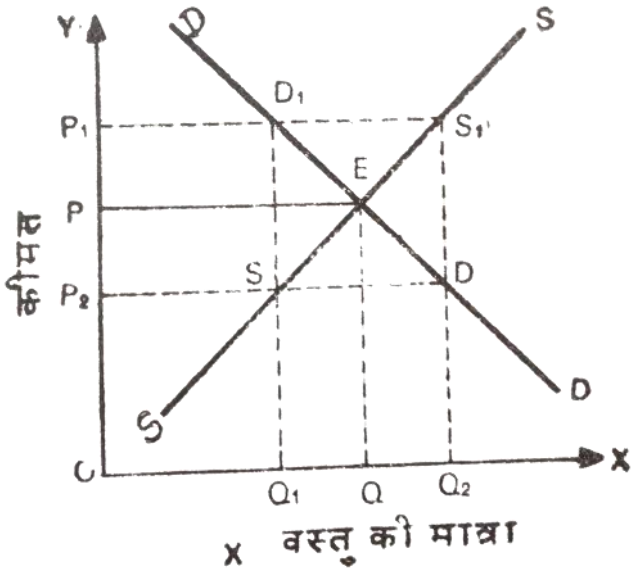

चित्र 2.1

चित्र में E बिन्दु संतुलन बिन्दु है। OP कीमत संतुलन कीमत तथा OQ संतुलन मात्रा है। यदि किसी कारणवश कीमत गिरकर संतुलन कीमत से निचे OP_2 पर आ जाए तो माँग की मात्रा बढ़ जाएगी और पूर्ति की मात्रा घट जाएगी अथार्त $P_2D > P_2S$ शक्तियाँ कार्यशील हो जाएगी और कीमत को पुनः E संतुलन बिंदु की ओर धकेलने लगेगीं। इसी प्रकार यदि कीमत संतुलन कीमत से ऊपर OP_1 पर आ जाए तो माँग की मात्रा कम हो जाएगी और पूर्ति की मात्रा बढ़ जाएगी $P_1S_1 > P_1D_1$ शक्तियाँ कार्यशील होकर पुनः कीमत को संतुलन बिन्दु E पर वापस ले आएगी।

2.4 संतुलन का वर्गीकरण (Classification of Equilibrium)

अभी आपने संतुलन के अर्थ और परिभाषाओं को जाना अब हम इसके वर्गीकरण को समझते है।
अर्थशास्त्रियों ने विश्लेषण के लिए विभिन्न प्रकार के संतुलनों का उल्लेख किया है। संतुलन के वर्गीकरण को निम्न चार्ट में दर्शाया गया है

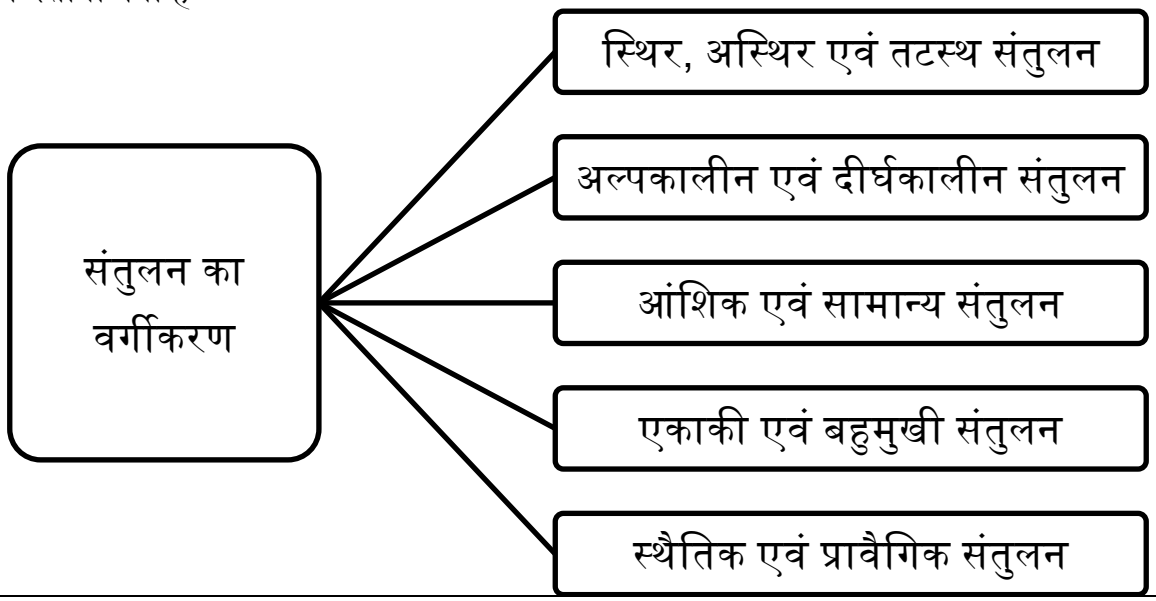

2.4.1 स्थिर, अस्थिर एवं तटस्थ संतुलन (Stable, Unstable and Neutral Equilibrium)

1. **स्थिर संतुलन (Stable Equilibrium) -** स्थिर अथवा स्थायी सन्तुलन आर्थिक प्रणाली की उस स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें सन्तुलन के किसी कारणवश भंग होने पर कुछ ऐसी शक्तियां कार्यशील हो जाती हैं जो उसे पुन: प्रारम्भिक स्थिति में कर देती हैं। इस प्रकार पुन: पहले जैसी ही स्थिति स्थापित हो जाती है। **प्रो. पीगू** (Pigou) के अनुसार, ***"एक प्रणाली स्थायी सन्तुलन में तब कही जाएगी, जब वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था के हटने के पश्चात्, दोबारा अपनी उसी अवस्था में वापस आ जाए।"***
2. **अस्थिर संतुलन (Unstable Equilibrium) -** अस्थिर सन्तुलन की दशा आर्थिक प्रणाली की उस स्थिति को व्यक्त करती है जिसमें कोई भी विघ्न, जो सन्तुलन को भंग करता है, कतिपय ऐसी अस्थिर शक्तियों को जन्म देता है कि आर्थिक प्रणाली सन्तुलन की प्रारम्भिक स्थिति से निरंतर दूर हटती जाती है और एक नई संतुलन स्थिति को प्राप्त कर लेता है। **प्रो. पीगू** (Pigou) के अनुसार, ***"एक प्रणाली अस्थिर सन्तुलन की अवस्था में तब कही जाएगी जब सन्तुलन भंग करने वाली कोई अल्प-शक्ति अनेक शक्तियों को उत्पन्न कर दे और वे सब शक्तियाँ इस प्रकार कार्य करें कि सन्तुलन के वापस आने की प्रवृत्ति न हो।"***

3. तटस्थ संतुलन (Neutral Equilibrium) - तटस्थ सन्तुलन आर्थिक प्रणाली की उस दशा को कहते हैं जिसमें सन्तुलन एक बार भंग हो जाने पर अपनी पुरानी स्थिति पर नहीं लौटता बल्कि उसी स्तर पर रुककर स्थायी हो जाता है जिस पर सन्तुलन भंग होने के पश्चात् वह पहुँचा था। **प्रो. पीगू** (Pigou) के अनुसार, ***"तटस्थ सन्तुलन की अवस्था वह है कि यदि कोई विघ्न उपस्थित होता है तो उसकी कोई पुर्नस्थापना नहीं, लेकिन, अन्य कोई भंग करने वाली शक्तियाँ भी उत्तेजित नहीं होतीं जिससे प्रणाली विश्राम की उसी अवस्था में बनी रहती है जहाँ पर वह पहुँच चुकी है।"***

स्थिर, अस्थिर तथा तटस्थ संतुलन में अन्तर चित्र 2.2 से स्पष्ट हो जाएगा। इस चित्र में स्थिति (1) स्थिर संतुलन की स्थिति है। यदि कटोरे के तले पर रखी गई गेंद को हिलाया डुलाया जाता है तो वह फिर से वहीं लौट आएगी। इसके विपरीत, यदि स्थिति (2) पर गौर करें तो गेंद को एक बार हिला देने पर वह लुढ़क जाएगी और दोबारा पूर्ववत् स्थिति में नहीं आ पाएगी। इसलिए स्थिति (2) अस्थिर संतुलन की स्थिति है। स्थिति (3) तटस्थ संतुलन की स्थिति है। इसमें यदि गेंद को धीरे से हिलाया जाता है तो वह किसी अन्य बिन्दु पर आ कर रुकेगी। नए बिन्दु पर नया संतुलन होगा।

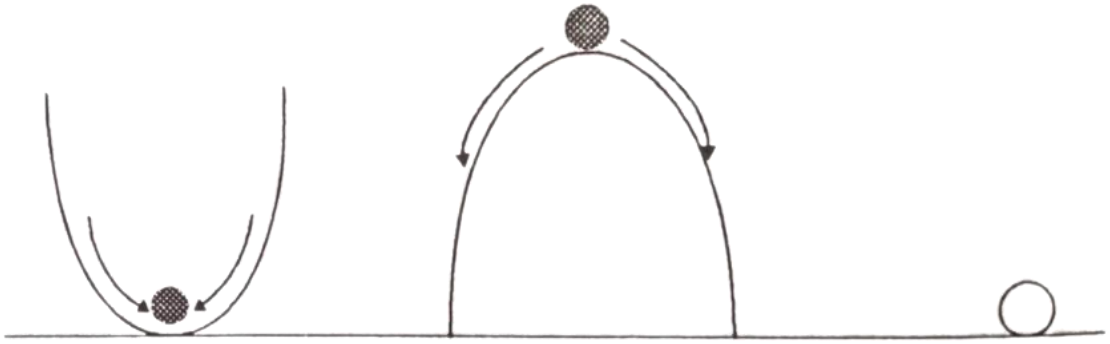

(1) (2) (3)

चित्र 2.2

2.4.2 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन संतुलन (Short Period and Long Period Equilibrium)

1. अल्पकालीन संतुलन (Short Period Equilibrium) – अल्पकालीन संतुलन वह है जो एक समय बिन्दु या अल्पकाल की अवधि में स्थापित होता है। इस प्रकार का संतुलन क्षणिक होता है और बहुत ही अल्प समय के लिए बना रहता है।

अल्पकालीन संतुलन आर्थिक प्रणाली की वह दशा है जिसमें माँग में परिवर्तन होने पर पूर्ति में परिवर्तन केवल वर्तमान साधनों की सहायता से ही किया जा सकता है। इसमें समय इतना कम होता है कि नए उत्पत्ति के साधनों को प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। यह संतुलन केवल एक निश्चित बिन्दु पर ही बना रहता है। यह क्षणिक होता है और उसके बाद भंग हो जाता है।

चित्र 2.3 में E बिन्दु संतुलन बिन्दु है, क्योंकि यहाँ पर MC=MR, वस्तु की कीमत OP, वस्तु की मात्रा OQ तथा लाभ ESTP है।

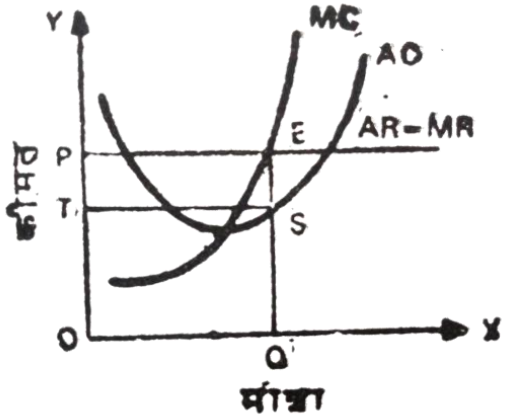

चित्र 2.3

2. दीर्घकालीन संतुलन (Long Period Equilibrium) - दीर्घकालीन संतुलन ना तो क्षणिक होता है और ना ही एक निश्चित समय बिन्दु तक बना रहता है बल्कि यह एक अल्पकाल की एक लम्बी श्रृंखला तक बना रहता है।

दीर्घकालीन संतुलन वह स्थिति है जिसमें माँग में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पूर्ति में परिवर्तन वर्तमान उत्पत्ति के साधनों तथा नए उत्पत्ति के साधनों की सहायता से किया जा सकता है। माँग और पूर्ति में यह सन्तुलन दीर्घकालीन संतुलन कहलाता है। यह संतुलन लम्बे समय तक बना रहता है।

चित्र 2.4 में P बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है, जहाँ AR=MR=MC=Price है। PQ संतुलन कीमत है तथा OQ संतुलन उत्पादन है।

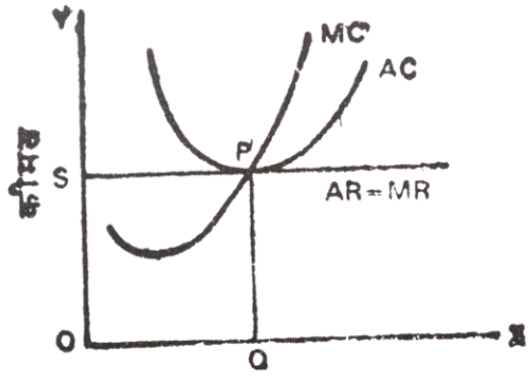

चित्र 2.4

2.4.3 आंशिक एवं सामान्य संतुलन (Partial and General Equilibrium)

1. आंशिक संतुलन (Partial Equilibrium) - आंशिक या विशिष्ट संतुलन से आशय उस संतुलन से है जो एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग अथवा उद्योग के एक समूह से सम्बन्धित होता है, जैसे - एक उपभोक्ता का संतुलन, एक फर्म का संतुलन एवं एक उद्योग का संतुलन।

प्रो. स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में, ***"आंशिक संतुलन वह है जो केवल सीमित आँकड़ों पर आधारित है। इसका एक अच्छा उदाहरण किसी एक वस्तु की कीमत है, जबकि विश्लेषण काल में अन्य सभी वस्तुओं की***

कीमतें स्थिर रहती हैं। (A partial equilibrium is one which is based on only a restricted range of data. A standard example is price of a single product, the price of all other products being fixed during the analysis.) "

प्रो. लेफ्टविच (Leftwich) के शब्दों में, *"इसका सम्बन्ध विशिष्ट आर्थिक इकाइयों या विशिष्ट उद्योगों की सन्तुलन की तरफ होने वाली उन गतिशीलताओं से होता है जो उनके समक्ष पाई जाने वाली आर्थिक दशाओं की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं।"*

प्रो. बोल्डिंग (Boulding) के अनुसार, *"कोई एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जब अपने लाभ में और अधिक वृद्धि करने का उसे अवसर उपलब्ध नहीं होता और ना ही लाभ में कमी करने का उसे प्रोत्साहन मिलता है। (A firm is in equilibrium when there is no opportunity to act so as to increase its profits and no incentive to act so as to lower them.)"*

आंशिक संतुलन की मान्यतायें (Assumptions of Partial Equilibrium)

1. अन्य बातों को स्थिर मान लिया जाता है।
2. अर्थव्यवस्था के किसी एक भाग का ही विश्लेषण किया जाता है।
3. यह आर्थिक घटनाओं के केवल प्रथम कोटि के प्रभावों का अध्ययन करता है। इसका सम्बन्ध निम्न में से किसी एक इकाई तक सीमित रहता है-
   (क) एक वस्तु की कीमत उस बिन्दु पर सन्तुलन में होती है जहाँ पर उसकी माँग उसकी पूर्ति के बराबर हो जाती है।
   (ख) एक उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की स्थिति में होता है जब वह एक निश्चित व्यय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है।
   (ग) एक फर्म (या उद्योग) उस समय सन्तुलन की अवस्था में होती है जब उसमें विस्तार व संकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। अल्पकाल में MR=MC होती है और दीर्घकाल में MR=AR=MC=AC।

आंशिक संतुलन के गुण (Merits of Partial Equilibrium)

1. यह विश्लेषण हमें किसी वस्तु या सेवा की कीमत में परिवर्तन के कारणों का विश्लेषण करने में सहायता देता है।
2. यह विश्लेषण बाजार प्रक्रिया में भाग लेने वालों की योजनाओं और व्यवहारों में परिवर्तनों के परिणामों को बताने में सहायक है।
3. यह व्यावहारिक आर्थिक समस्याओं को हल करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।
4. यह सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का आधार है।

आंशिक संतुलन की सीमाएं (Limitation of Partial Equilibrium)

1. यह विश्लेषण अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र (भाग) तक ही सीमित रहता है।
2. यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जो वास्तविक जीवन में निश्चित, स्थिर व समान नहीं रहतीं।

2. सामान्य संतुलन (General Equilibrium) - यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के समस्त कार्यशील तत्वों का अध्ययन करता है। इसका सम्बन्ध अर्थव्यवस्था की किसी एक विशेष वस्तु अथवा इकाई से ना होकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है।

प्रो. स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में, ***"सामान्य सन्तुलन का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था के सभी भागों में पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है। (The theory of general equilibrium is the theory of inter-relationship among all parts of the economy.)"***

प्रो. लेफ्टविच (Leftwich) के शब्दों में, ***"सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था उसी समय सामान्य साम्य की अवस्था में होगी जबकि सब आर्थिक इकाइयाँ एक साथ ही विशिष्ट सन्तुलन प्राप्त कर लेती हैं। सामान्य सन्तुलन की यह धारणा सभी आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्था के सभी अंगों की पारस्परिक निर्भरता पर बल देती है। (General equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneously particular equilibrium adjustment.)"***

सामान्य संतुलन विश्लेषण के गुण (Merits of General Equilibrium)

1. सामान्य संतुलन विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि अर्थव्यवस्था के एक भाग में संतुलन उसके अन्य भागों में साम्य के साथ-साथ रह सकता है।
2. यह विश्लेषण अर्थव्यवस्था के सामान्य ढाँचे तथा कार्यकरण की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।
3. यह विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि किसी विशिष्ट समस्या के लिए कौन-से तथ्य उपयोगी हैं।

सामान्य संतुलन विश्लेषण की सीमाएं (Limitation of of General Equilibrium)

1. यह विधि अत्यधिक गणितीय है और इसलिए जटिल है।
2. इस विधि से निकाले गए निष्कर्ष अपूर्ण होते हैं। अतः ये कम निश्चित होते हैं।
3. यह मॉडल अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जो व्यावहारिक जीवन में नहीं पाई जाती।
4. इसकी प्रकृति स्थैतिक (Static) है ।

प्रो. स्टिगलर (Stigler) के शब्दों में, ***"सामान्य संतुलन एक मिथ्या नाम है। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि सामान्य अध्ययन आंशिक संतुलन अध्ययनों की अपेक्षा अधिक विस्तृत होते हैं, परन्तु वे कभी पूर्ण नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त विश्लेषण जितना अधिक सामान्य होगा, उतने ही अधिक उसके निष्कर्ष कम निश्चित होंगे।"***

2.4.4 एकाकी एवं बहुमुखी संतुलन (Single and Multiple Equilibrium)

1. एकाकी संतुलन (Single Equilibrium) - जब संतुलन की दशा को उत्पादन मात्रा तथा कीमत का एक ही समूह सन्तुष्ट करता है तो इसे एकाकी साम्य कहते हैं। **बोल्डिंग** (Boulding) के अनुसार, ***"यदि सम्बन्धों की प्रणाली को किन्हीं ऐसे समीकरणों की सूची द्वारा व्यक्त किया जा सकता है जो कि विभिन्न चरों को केवल एक ही कीमत अथवा थोड़ी सी कीमतों द्वारा सन्तुष्ट कर सकते हैं, तो यह एकाकी संतुलन है।"***

2. बहुमुखी संतुलन (Multiple Equilibrium) - जब संतुलन की शर्तों की सन्तुष्टि कई बिन्दुओं पर विभिन्न कीमतों तथा उत्पादन की मात्राओं द्वारा होती है, तो इसे बहुमुखी संतुलन कहते हैं।

2.4.5 स्थैतिक एवं प्रावैगिक संतुलन (Static and Dynamic Equilibrium)

1. स्थैतिक संतुलन (Static Equilibrium) - स्थैतिक संतुलन का सम्बन्ध स्थिर अर्थव्यवस्था से होता है। स्थिर अर्थव्यवस्था से आशय ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमें कि विभिन्न अंग उपभोग, उत्पादन, जनसंख्या, माँग पूर्ति आदि स्थिर रहते हैं और उनमें परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।

बोल्डिंग (Boulding) के शब्दों में, ***"एक यांत्रिक सादृश्य एक गेंद जो समान गति से लुढ़कती जा रही हो या इससे भी अच्छा उदाहरण एक वन का है जिसमें पेड़ उगते हैं, बढ़ते हैं या नष्ट होते हैं परन्तु समूचे वन की संरचना में कोई अन्तर नहीं आता, पाया जा सकता है । (A mechanical analogy may be found in a ball rolling at a constant speed, or better still of a forest in equilibrium where tree sprout grows or dies but where the composition of the forest as a whole remains unchanged.)"***

प्रो. जे. के. मेहता (Prof J. K. Mehta) के शब्दों में, **स्थैतिक संतुलन वह संतुलन है जो अपने आपको विचारगत समय के बाहर भी बनाये रखता है। एक उद्योग जो कि एक विशेष संतुलन में हो और यदि वह इस संतुलन को उस दिन के पश्चात् बनाए रखता है, तो वह संतुलन स्थैतिक संतुलन कहलायेगा ।"**

प्रो. जे. के. मेहता (Prof J. K. Mehta) के शब्दों में, ***"यदि संतुलन निश्चित अवधि के बाहर नहीं बना रहता तो उसे प्रावैगिक संतुलन कहेंगे।"***

2. प्रावैगिक संतुलन (Dynamic Equilibrium) - प्रावैगिक संतुलन का सम्बन्ध प्रावैगिक (गतिशील) अर्थव्यवस्था से होता है। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें आर्थिक तत्व स्थिर ना रहकर परिवर्तित होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था की दो मुख्य बातें हैं- (अ) इसके विभिन्न अंगों या विभिन्न आर्थिक तत्वों में परिवर्तन होता रहता है। (ब) उन विभिन्न अंगों के आर्थिक तत्वों में परिवर्तन की दर समान होती है। **प्रो. बोल्डिंग** (Boulding) के शब्दों में, ***"कालान्तर में कोई अर्थव्यवस्था उस समय प्रावैगिक संतुलन की अवस्था में होती है जब इसके आवश्यक तत्वों में होने वाले परिवर्तनों की दरें समान होती हैं।"***

स्थैतिक एवं प्रावैगिक संतुलन में अन्तर (Differnece between Static and Dynamic Equilibrium)

स्थैतिक संतुलन	प्रावैगिक संतुलन
स्थैतिक संतुलन, स्थैतिक अर्थव्यवस्था से सम्बंधित है।	प्रावैगिक संतुलन, प्रावैगिक अर्थव्यवस्था से सम्बंधित है।
इसमें विभिन्न आर्थिक चरों के सम्बन्धों का अध्ययन समय के एक बिन्दु पर किया जाता है। अतः इसमें आर्थिक तत्व स्थिर रहते हैं।	इसमें विभिन्न आर्थिक चरों के सम्बन्धों का अध्ययन समय के विभिन्न बिन्दुओं के सम्बन्ध में किया जाता है, परन्तु इसमें आर्थिक तत्वों में परिवर्तन की दर स्थिर रहती है।
यह अर्थव्यवस्था में कार्य एवं कारण की एक स्थिर तस्वीर प्रस्तुत करता है।	इसमें अर्थव्यवस्था में कार्य एवं कारण का एक चलचित्र है।
यह सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।	यह व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

2.5 संतुलन की अवधारणा का महत्त्व (Importance of the Concept of Equilibrium)

अनेक अर्थशास्त्री इस तथ्य के आधार पर कि वास्तविक आर्थिक जगत में संतुलन नहीं पाया जाता, अर्थशास्त्र में इसकी उपयोगिता को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार संतुलन के काल्पनिक विचार से आर्थिक विश्लेषण में अधिक सहायता नहीं मिलती लेकिन क्या संतुलन के विचार को त्याग कर आर्थिक विश्लेषण दिशाहीन नहीं हो जाएगा? निस्संदेह वास्तविक आर्थिक जगत में प्रायः साम्य का अभाव होता है फिर भी साम्य के विचार की उपयोगिता को नकारना ठीक नहीं है।

वास्तविक आर्थिक जगत में प्राय: संतुलन का अभाव पाया जाता है परन्तु इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक शक्तियां प्रणाली को संतुलन की दिशा में ले जाने का प्रयास करती हैं। कभी-कभी वास्तविक जीवन में वस्तु विशेष के बाजार में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था में साम्य स्थापित हो जाता है लेकिन संतुलन चाहे व्यष्टि स्तर पर हो अथवा समष्टि स्तर पर, प्राय: अल्पकालिक होता है। जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) के अनुसार, ***"संतुलन की अवस्था उस समय प्राप्त होती है जब स्थितियां बहुत कुछ स्थिर होती हैं अर्थात जब लोग समझते हैं कि कीमतें यथास्थिर रहेंगी और कीमतें वास्तव में यथास्थिर रहती हैं। लेकिन कभी-कभी साहसी वर्ग की प्रत्याशाएं कीमतों के बारे में सुनिश्चित नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में यदि वास्तविक कीमतें अधिक संभाव्य कीमतों से भिन्न भी होती है तो भी व्यवहार में गंभीर असंतुलन की स्थिति उत्पन्न नहीं होती। (The idea of equilibrium is usually approached most nearly when conditions are most nearly stationary: when people expect prices to remain steady, and they do remain steady .However, since the expectations of entrepreneurs are not precise expectations of particular prices, but partake more of the character of probability distributions, the realized prices can depart to some extent from those prices expected as most probable, without causing any sense of disequilibrium.)"*** इसके अतिरिक्त, जैसा कि **हिक्स** ने कहा है, यदि प्रत्याशित और वास्तविक कीमतों में अन्तर होता है (अर्थात् असंतुलन की स्थिति होती है) तो इसका अर्थ यह होता है कि साधनों का अपव्यय हुआ है तथा अनुपयुक्त (inappropriate) निवेश हुआ है। इस प्रकार ***"असंतुलन या असाम्य की स्थिति साधनों के अपव्यय तथा उत्पादन के दक्ष ना होने की स्थिति का द्योतक है।"***

अर्थशास्त्र में संतुलन की धारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक नियन्त्रण में इसकी भूमिका इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने अर्थ-विज्ञान को संतुलन विश्लेषण कहकर सम्बोधित किया है। अर्थशास्त्र में सन्तुलन विश्लेषण के महत्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **उपभोक्ता के लिए संतुलन का महत्व (Importance of Equilibrium for Consumer)** - उपभोक्ता के लिए संतुलन का विचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उपभोक्ता सदैव वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों का इस प्रकार से उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं कि उन्हें अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो जाए और ऐसा उसी समय सम्भव हो सकता है जबकि उनकी आवश्यकताओं तथा वैकल्पिक उपयोग वाले साधनों के बीच संतुलन स्थापित हो जाए।
2. **आर्थिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सहायक (Helpful in propounding economic principles) -** अनेक आर्थिक सिद्धान्तों का निर्माण संतुलन विश्लेषण की सहायता से ही किया जाता है; जैसे- राष्ट्रीय आय के वितरण का सिद्धान्त, अधिकतम सन्तुष्टि का सिद्धान्त।
3. **वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में सहायक (Helpful in determining the price of goods) –** पूर्ण, अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता आदि विभिन्न दशाओं में वस्तुओं के मूल्य निर्धारण संतुलन विश्लेषण के अनुसार उस बिन्दु पर निर्धारित होते हैं जहाँ वस्तु की माँग और पूर्ति में संतुलन स्थापित हो जाता है।
4. **आर्थिक समस्याओं के समाधान में सहायक (Helpful in solving economic problems)** - अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में असन्तुलन की दशा उत्पन्न हो जाने से आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस सन्तुलन को ठीक करने पर ही आर्थिक समस्याओं का समाधान सम्भव है और इसके लिए आर्थिक क्रियाओं के बीच सन्तुलन की स्थापना करना आवश्यक होता है।

5. **आर्थिक नीतियों के निर्धारण में सहायक (Helpful in determining economic policies)** - असन्तुलन से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिये संतुलन का विचार उचित आर्थिक नीति के निर्माण में सहायता करता है।
6. **भविष्य के लिए निर्णय लेने में सहायक (Helpful in taking decisions for the future)** – संतुलन का विचार भविष्य में निर्णय लेने में सहायक होता है। किसी वस्तु के मूल्य अथवा उसकी मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय 'संतुलन' के आधार पर ही लिया जाता है।
7. **उत्पादकों के लिए संतुलन का महत्व (Importance of Equilibrium for Producers) -** एक उत्पादक का अन्तिम उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। संतुलन की सहायता से ही यह निर्णय लिया जाता है कि किस प्रकार न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन किया जाए ताकि अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो सके।

प्रो. लेफ्टविच (Leftwich) ने संतुलन के महत्व को स्पष्ट करते हुये लिखा है, ***"संतुलन की धारणा का महत्व इसलिए नहीं है कि वास्तव में कभी संतुलन प्राप्त किया जाता है बल्कि इसलिए है कि यह हमें उन दिशाओं को बतलाती है जिनकी तरफ आर्थिक परिवर्तन अग्रसर होते हैं। असन्तुलन में होने वाली आर्थिक इकाइयाँ प्राय: सन्तुलन की दशाओं की तरफ जाती हैं। नई किस्म की आर्थिक हलचलें, उपभोक्ताओं की रुचि व अधिमानों में होने वाले परिवर्तन, तकनीकी परिवर्तन, साधनों की पूर्ति में होने वाले परिवर्तन आदि सन्तुलन की दशाओं को बदल देते हैं और विभिन्न आर्थिक इकाइयों को नई दिशाओं की तरफ जाने के लिए उस समय तक प्रेरित करते हैं जब तक कि नई हलचले उत्पन्न नहीं हो जातीं। सामान्यतया सन्तुलन की तरफ होने वाली गतियाँ साथ में आर्थिक कुशलता की होने वाली गतियाँ भी होती हैं।"***

2.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए -

1.आंशिक संतुलन विश्लेषण अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र (भाग) तक ही सीमित रहता है। (सत्य / असत्य)

2. सामान्य संतुलन की प्रकृति प्रवैगिक है। (सत्य / असत्य)

3.आंशिक संतुलन, सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का आधार है। (सत्य / असत्य)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रावैगिक विश्लेषण…….. (सन्तुलन / असन्तुलन) का अध्ययन है।
2. व्यापार चक्र, जनसंख्या के विकास, तथा मूल्य निर्धारण पर समय के प्रभाव का अध्ययन …….. (स्थैतिक अर्थशास्त्र / प्रावैगिक अर्थशास्त्र) के अन्तर्गत किया जाता है।

2.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह भलीभांति समझ चुके होगें कि किसी भी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत संतुलन का अध्ययन किया जाता है। जब एक समय बिन्दु या अल्पकाल की अवधि में संतुलन स्थापित होता है तो यह अल्पकालीन संतुलन कहलाता हैं। इसके विपरीत जब एक अल्पकाल की एक लम्बी श्रृंखला तक संतुलन बना रहता है तो यह दीर्घकालीन संतुलन कहलाता हैं। जब एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग अथवा उद्योग के एक समूह से सम्बन्धित संतुलन का अध्ययन किया जाता है उसे आंशिक सन्तुलन कहते है जबकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के समस्त कार्यशील तत्वों से सम्बन्धित संतुलन का अध्ययन किया जाता है तो उसे सामान्य सन्तुलन कहते है। स्थैतिक संतुलन का सम्बन्ध स्थिर अर्थव्यवस्था से होता है। स्थिर अर्थव्यवस्था से आशय ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमें कि विभिन्न अंग उपभोग, उत्पादन, जनसंख्या, माँग पूर्ति आदि स्थिर रहते हैं और

उनमें परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। प्रावैगिक संतुलन का सम्बन्ध प्रावैगिक (गतिशील) अर्थव्यवस्था से होता है। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें आर्थिक तत्व स्थिर ना रहकर परिवर्तित होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था की दो मुख्य बातें हैं- (अ) इसके विभिन्न अंगों या विभिन्न आर्थिक तत्वों में परिवर्तन होता रहता है। (ब) उन विभिन्न अंगों के आर्थिक तत्वों में परिवर्तन की दर समान होती है।

अर्थशास्त्र में संतुलन की धारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक नियन्त्रण में इसकी भूमिका इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने अर्थ-विज्ञान को संतुलन विश्लेषण कहकर सम्बोधित किया है।

2.8 शब्दावली (Glossary)

- **स्थिर संतुलन (Stable Equilibrium) -** स्थिर सन्तुलन दशा तब प्राप्त होती है जब प्रारम्भिक संतुलन विचलित हो जाने पर पुनः आतंरिक शक्तियों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया द्वारा पुनः पूर्ववत् प्राप्त हो जाती है।
- **अस्थिर संतुलन (Unstable Equilibrium) -** अस्थिर सन्तुलन की दशा आर्थिक प्रणाली की उस स्थिति को व्यक्त करती है जिसमें कोई भी विघ्न, जो सन्तुलन को भंग करता है, कतिपय ऐसी अस्थिर शक्तियों को जन्म देता है कि आर्थिक प्रणाली सन्तुलन की प्रारम्भिक स्थिति से निरंतर दूर हटती जाती है और एक नई संतुलन स्थिति को प्राप्त कर लेता है।
- **तटस्थ संतुलन (Neutral Equilibrium) -** तटस्थ सन्तुलन आर्थिक प्रणाली की उस दशा को कहते हैं जिसमें सन्तुलन एक बार भंग हो जाने पर अपनी पुरानी स्थिति पर नहीं लौटता बल्कि उसी स्तर पर रुककर स्थायी हो जाता है जिस पर सन्तुलन भंग होने के पश्चात् वह पहुँचा था।
- **अल्पकालीन संतुलन (Short Period Equilibrium) –** अल्पकालीन संतुलन वह है जो एक समय बिन्दु या अल्पकाल की अवधि में स्थापित होता है। इस प्रकार का संतुलन क्षणिक होता है और बहुत ही अल्प समय के लिए बना रहता है।
- **दीर्घकालीन संतुलन (Long Period Equilibrium) -** दीर्घकालीन संतुलन ना तो क्षणिक होता है और ना ही एक निश्चित समय बिन्दु तक बना रहता है बल्कि यह एक अल्पकाल की एक लम्बी श्रृंखला तक बना रहता है।
- **आंशिक संतुलन (Partial Equilibrium) -** आंशिक या विशिष्ट संतुलन अर्थव्यवस्था के किसी एक अंश के संतुलन से सम्बंधित है जिसमें अन्य घटकों को यथास्थिर (Ceteris Paribus) मान लिया जाता हैं।
- **सामान्य संतुलन (General Equilibrium) -** सामान्य संतुलन का सिद्धांत अर्थव्यवस्था के सभी अंगों के बीच परस्पर निर्भरता का सिद्धान्त है जिसमें अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण चर-मूल्यों का अध्ययन किया जाता है।
- **स्थैतिक संतुलन (Static Equilibrium) –** एक समय बिन्दु पर प्राप्त होने वाला संतुलन स्थैतिक संतुलन है जिसमें समय तत्व का प्रभाव पूर्णत: अनुपस्थित रहता है।
- **प्रावैगिक संतुलन (Dynamic Equilibrium) –** गतिशील अर्थव्यवस्था में पाया जाने वाला संतुलन प्रावैगिक संतुलन होता है जिसमें पिछली और आगे की तिथियों से संबंधित आर्थिक विषयों का अध्ययन किया जाता है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए -

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. असन्तुलन 2. प्रावैगिक अर्थशास्त्र

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

2.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अर्थशास्त्र में संतुलन के विचार को समझाइए तथा आर्थिक सिद्धान्त में उसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
2. निम्नलिखित को समझाइये
   (i) स्थिर, तटस्थ तथा अस्थिर संतुलन
   (ii) अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन
   (iii) स्थैतिक तथा प्रावैगिक संतुलन।
3. सन्तुलन की संकल्पना को समझाइए। स्थैतिक सन्तुलन तथा प्रावैगिक सन्तुलन में क्या अन्तर है?
4. अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अर्थ तथा महत्व को बताइये। स्थिर या स्थायी सन्तुलन, तदस्य सन्तुलन तथा अस्थायी सन्तुलन के बीच सावधानीपूर्वक अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. सन्तुलन के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
6. आंशिक तथा सामान्य संतुलन की परिभाषा दीजिए तथा इसके महत्व एवं सीमाओं को बताइए।

इकाई - 3 गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण
(Cardinal Utility Analysis)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)
3.2 उद्देश्य (Objectives)
3.3 गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis)
3.4 सम-सीमान्त तुष्टिगुण का नियम (Law of Equi-Marginal Utility)
3.4.1 तुष्टिगुण की अवधारणाएँ (Concepts of Utility)
3.4.2 कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण के बीच सम्बन्ध (Relationship between Total Utility and Marginal Utility)
3.4.3 सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता - ह्रास - नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)
3.5 उपभोक्ता का संतुलन तथा मार्शल का सम-सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता विश्लेषण (Consumer's Equilibrium and Marshall's Equi-Marginal Utility Analysis)
3.6 सम-सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticism of Equi-Marginal Utility Theory)
3.7 सम - सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्व (Significance of the Law of Equi-Marginal Utility)
3.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
3.9 सारांश (Summary)
3.10 शब्दावली (Glossary)
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
3.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
3.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में आप किसी वस्तु के क्रय या उसकी माँग या उसके उपभोग की मात्रा के सम्बन्ध में कोई उपभोक्ता विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार से व्यवहार करता है, इसका अध्ययन करेगें। आप सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण और सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण को जान सकेंगे।
- ✓ उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण सिद्धान्त की आलोचनाओं को समझ सकेंगे।
- ✓ सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व को जान सकेंगे।

3.3 गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis)

माँग का सबसे पुराना सिद्धांत गणनावाचक तुष्टिगुण सिद्धांत (Cardinal Utility Theory) है जो किसी वस्तु की उपभोक्ता द्वारा माँग की व्याख्या करता है और माँग के उस नियम का पता लगाता है जो वस्तु की माँग-मात्रा तथा कीमत में विलोम सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सिद्धांत उपयोगिता की गणन-संख्या प्रणाली (Cardinal System) पर आधारित है तथा उपयोगितावादी (Utilitarian) धारणाओं पर निर्भर है। यद्यपि माँग के सिद्धांत का गणनावाचक तुष्टिगुण के दृष्टिकोण से अध्ययन का यह ढंग बहुत पुराना है जिसको अंतिम रूप मार्शल द्वारा प्रदान किया गया।

3.4 सम-सीमान्त तुष्टिगुण का नियम (Law of Equi-Marginal Utility)

मार्शल का यह मत है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक (psychological) तथ्य होने के बावजूद भी मुद्रा के द्वारा मापी जा सकती है। हम किसी वस्तु के लिए मुद्रा के रूप में मूल्य देते हैं क्योंकि उसमें उपयोगिता समाहित होती है। किसी भी वस्तु का मूल्य हम उसकी उपयोगिता से अधिक देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु के बदले दिए जाने वाले मूल्य के बराबर होती है। मार्शल द्वारा बताई गई उपयोगिता के माप की इस विधि को **संख्यात्मक विधि** (numerical method) कहते हैं। इस विधि के अनुसार किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को 10, 15, 50, 65 ..... आदि संख्याओं के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

इसके पूर्व कि हम मार्शल द्वारा प्रतिपादित संस्थिति निर्धारण सिद्धान्त की व्याख्या करें, यह उचित होगा कि आप इसमें प्रयुक्त होने वाली कुछ धारणाओं को पहले समझ ले।

3.4.1 तुष्टिगुण की अवधारणाएँ (Concepts of Utility)

तुष्टिगुण को मुख्यत: तीन अवधारणाओं में बाँटा जा सकता है- प्रारम्भिक तुष्टिगुण, सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण ।

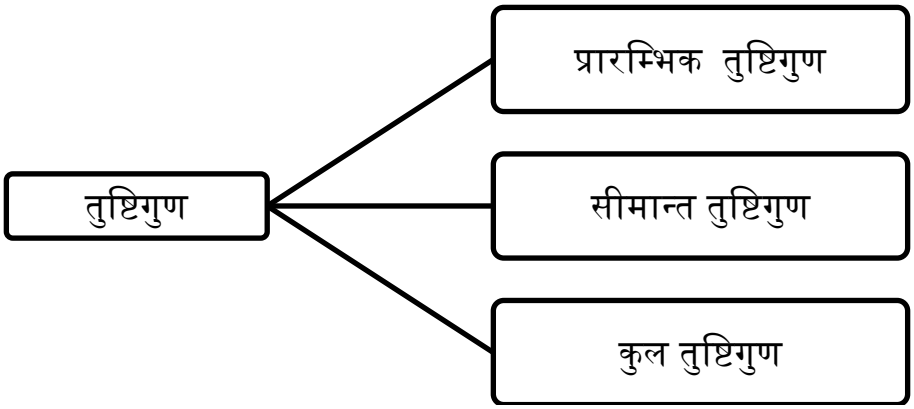

1. **प्रारम्भिक तुष्टिगुण (Initial Utility) -** किसी वस्तु की प्रथम इकाई के उपभोग करने से जो तुष्टिगुण प्राप्त होता है, उसे 'प्रारम्भिक तुष्टिगुण' कहते हैं (Initial utility is the utility from the first unit of consumption of the commodity)। मान लो कोई व्यक्ति रोटी खाता है, तो पहली रोटी से प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण प्रारम्भिक तुष्टिगुण कहलायेगा।
2. **सीमान्त तुष्टिगुण (Marginal Utility) –** यह धारणा तुष्टिगुण विश्लेषण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारणा है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम अंग्रेज़ अर्थशास्त्री प्रो. जेवन्स (Jevons) ने किया था। सीमान्त तुष्टिगुण से अभिप्राय किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई (Additional Unit) के उपभोग से प्राप्त होने वाले तुष्टिगुण से है। अन्य शब्दों में, किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग करने से कुल तुष्टिगुण में जो वृद्धि होती है, उसे 'सीमान्त तुष्टिगुण' कहते हैं (Marginal utility is the addition made to total utility when one more unit of the commodity is consumed)।

   गणितीय भाषा में, सीमान्त तुष्टिगुण को इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है किसी भी इकाई से मिलने वाली सीमान्त तुष्टिगुण उससे प्राप्त होने वाली कुल तुष्टिगुण तथा उस संख्या से 1 कम इकाई से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता का अन्तर है। इस प्रकार nवीं इकाई की सीमान्त उपयोगिता $MU_n = TU_n - TU_{n-1}$ होगी। चूँकि प्रत्येक इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि सीमान्त तुष्टिगुण है, इसलिए कुल तुष्टिगुण वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल उससे सम्बधित उपभोग की गई वस्तु के लिए सीमान्त तुष्टिगुण प्रदर्शित करेगा।
3. **कुल तुष्टिगुण (Total Utility) -** किसी वस्तु की विभिन्न इकाईयों से प्राप्त होने वाली तुष्टिगुण के कुल योग (sum) को 'कुल तुष्टिगुण' कहते हैं। मान लो कोई व्यक्ति चार रोटी खाता है, तो पहली, दूसरी, तीसरी एवं चौथी रोटी से प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण के योग ही कुल तुष्टिगुण कहलायेगा।

   गणितीय रूप में, $TU = U_1 + U_2 + U_3 + U_4$

3.4.2 कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण के बीच सम्बन्ध (Relationship between Total Utility and Marginal Utility)

निम्न सारिणी को ध्यानपूर्वक देखने से यह ज्ञात होता है कि कुल तुष्टिगुण में बढ़ने की प्रवृत्ति तीसरी इकाई तक है तथा तुष्टिगुण का अधिकतम स्तर वहाँ आ जाता है जब चौथी इकाई से मिलने वाली तुष्टिगुण शून्य

हो जाती है। पाँचवीं इकाई से मिलने वाली तुष्टिगुण, अनुपयोगिता में परिवर्तित हो गई है, क्योंकि पाँचवीं इकाई से मिलने वाली तुष्टिगुण ऋणात्मक है।

सारिणी 3.1 कुल, औसत और सीमान्त तुष्टिगुण

इकाइयाँ (Units)	तुष्टिगुण (Utility)	कुल तुष्टिगुण (Total Utility)	औसत तुष्टिगुण (Average Utility)	सीमान्त तुष्टिगुण (Marginal Utility)
1	8	8	8	8
2	5	8+5=13	6.5	13-8=5
3	1	13+1=14	4.67	14-13= 1
4	0	14+0= 14	3.5	14-14 = 0
5	-1	14-1 = 13	2.6	13-14 = -1

यदि हम विचार करें तो पाएगे कि कुल तुष्टिगुण क्रमशः बढ़ती जाती है। इसमें घटने की प्रवृत्ति अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति के बाद प्रारम्भ होती है। लेकिन यह ऋणात्मक नहीं है। दूसरी ओर, सीमान्त तुष्टिगुण उपभोग की क्रिया के साथ क्रमशः घटती जाती है और अधिकतम सन्तुष्टि के स्तर पर पहुँच कर सीमान्त तुष्टिगुण शून्य हो जाती है। सीमान्त तुष्टिगुण, शून्य तथा ऋणात्मक भी हो सकती है। दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि सन्तुष्टि के अधिकतम स्तर पर सीमान्त तुष्टिगुण शून्य होती है तथा इस बिन्दु के बाद जब कुल तुष्टिगुण घटने लगती है तो सीमान्त तुष्टिगुण ऋणात्मक हो जाती है। इस सम्बनध को चित्र संख्या 3.1 में प्रदर्शित किया गया है।

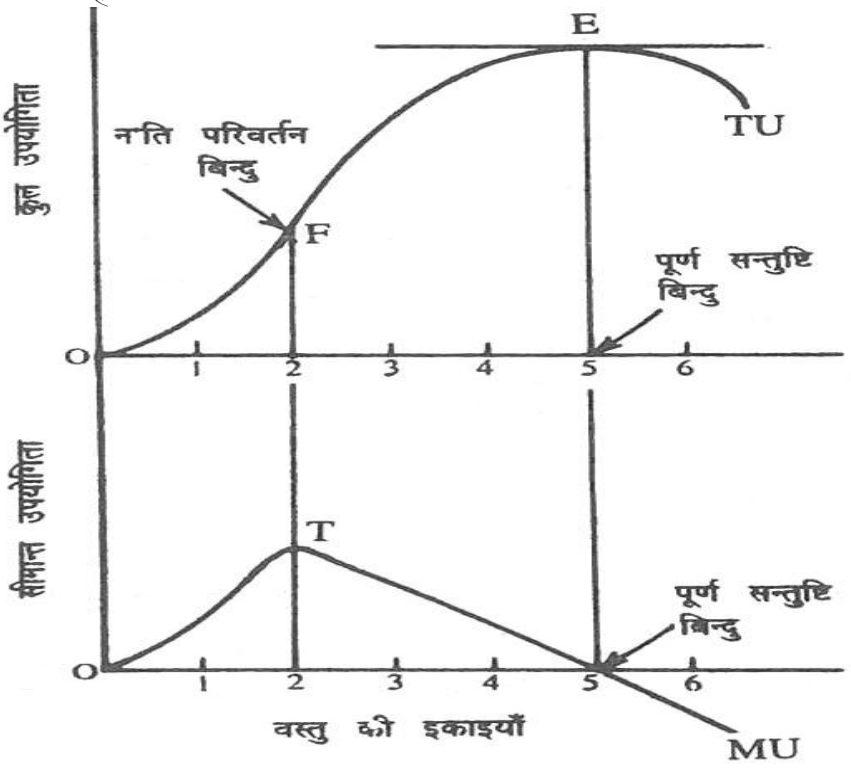

चित्र 3.1

इस चित्र में कुल तथा सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता वक्रों को प्रदर्शित किया गया है। कुल तुष्टिगुण/उपयोगिता वक्र (TU) को देखने से स्पष्ट है कि E बिन्दु पर कुल तुष्टिगुण/उपयोगिता वक्र (TU) अधिकतम है। बिन्दु E के बाद इसमें गिरावट प्रारम्भ हो जाती है और इसका ढाल शून्य है। आपको याद रहे कि जब कुल तुष्टिगुण/उपयोगिता अधिकतम होती है तब सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता न्यूनतम (शून्य) होती है। इस वक्र को देखने से यह बात स्पष्ट है कि शुरूआत में दूसरी इकाई तक या नति परिवर्तन बिन्दु (Point of inflection) F तक तो सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता (MU) बढ़ रही है उसके बाद उसमें गिरावट शुरू हो गई है। उल्लेखनीय है कि यदि TU वक्र F बिन्दु से शुरू हो, अर्थात् वक्र का OF भाग नहीं हो तो सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता (MU) वक्र केवल नीचे गिरती हुई होगी अर्थात् T से शुरू होगी, OT भाग नहीं प्रदर्शित होगा। TU वक्र के देखने से यह भी स्पष्ट है कि F बिन्दु तक कुल उपयोगिता बढ़ती दर से बढ़ रही है इसके बाद कुल उपयोगिता गिरती दर से बढ़ रही है। F बिन्दु को नति-परिवर्तन बिन्दु (point of inflection) कहते हैं ।

3.4.3 सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता - ह्रास - नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास- नियम उपभोग का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम फ्रेंच अर्थशास्त्री **हर्मन हेनरिच गॉसेन** (Hermann Henrich Gossen) ने किया। इसलिए इस सिद्धान्त को **जेवेन्स** (Jevens) ने **गॉसेन का प्रथम नियम** (First Law of Gossen) कहा है। **विलियम स्टेनले जेवेन्स** (William Stanley Jevens) पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में इस नियम का प्रयोग किया परन्तु बाद में प्रो. मार्शल ने इसका समर्थन किया तथा इसे और विकसित किया। **प्रो. अल्फर्ड मार्शल** (Prof. Alfred Marshall) के अनुसार ***"एक वस्तु के स्टॉक में वृद्धि होने से व्यक्ति को जो अतिरिक्त संतुष्टि प्राप्त होती है वह भण्डार में हुई प्रत्येक वृद्धि से कम होती जाती है। (The additional benefit which a person derives from a given increase of his stock of a thing diminishes with every increase in the stock that he already has)"*** जैसे-जैसे हम किसी वस्तु का उपभोग करते जाते हैं, उसकी उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है।

सीमान्त उपयोगिता में घटने की प्रवृत्ति के प्रमुख रूप से निम्नांकित कारण हो सकते हैं -

1. **मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Basis) -** सीमान्त उपयोगिता -ह्रास- नियम प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **वेबर** (Weber) के सिद्धान्त पर आधारित है जो यह प्रतिपादित करता है कि बाहरी उत्तेजकों (external stimulants) के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रियाओं की तीव्रता क्रमशः कम होती जाती है। उपभोग की क्रिया में उपभोग में लाई जाने वाली वस्तु बाहरी उत्तेजक है तथा उससे मिलने वाली उपयोगिता (उसकी प्रतिक्रिया) जिसका घटना (diminish) उक्त नियम के अनुसार स्वाभाविक है।
2. **प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण सन्तुष्टि की सम्भावना (Possibility of Complete Satisfaction of each need) - बोल्डिंग** (Boulding) ने इस बात का उल्लेख किया कि सीमान्त उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति का आधार यह है कि प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण संतुष्टि सम्भव है। अब यदि हम किसी आवश्यकता को पूर्णतया सन्तुष्ट करने की क्रिया में आगे बढ़ें और जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है

कि पूर्ण सन्तुष्टि का द्योतक शून्य उपयोगिता होती है तो शून्य की ओर बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता क्रमशः घटे।

3. **वस्तुओं का परस्पर पूर्ण स्थानापन्न न होना (Non Perfect Substitution of Goods) - बोल्डिंग** (Boulding) के अनुसार सीमान्त उपयोगिता में घटने की प्रवृत्ति का एक और कारण यह है कि उपभोग की वस्तु एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं, वस्तुओं को एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए यदि एक को स्थिर कर दिया जाए और दूसरे को ही निरन्तर बढाया जाए तो उचित अनुपात के अभाव में दूसरी वस्तु की उपयोगिता घटनी (diminishing) शुरू हो जाएगी।

अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की ही भाँति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। ये निम्नांकित है -

1. उपभोग की क्रिया निरन्तर चलनी चाहिए, ऐसा नहीं हो कि उपभोग की एक इकाई प्रातः काल ली जाए तथा उसकी दूसरी इकाई रात्रि में ।
2. उपभोग में आने वाली वस्तु की प्रत्येक इकाई समान (गुण, परिमाण, स्वाद, बनावट आदि में) होनी चाहिए।
3. उपभोग की लम्बी अवधि में उपभोग की आय, रुचि, आदत आदि में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
4. उपभोग की अवधि में उपभोक्ता की मानसिक स्थिति समान बनी रहनी चाहिए।
5. उपभोग की क्रिया की अवधि में वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
6. वस्तु की स्थानापन्न वस्तु का मूल्य भी अपरिवर्तित रहना चाहिए।
7. **चैपमैन** ने यह कहा कि नियम के लागू होने हेतु यह आवश्यक है कि वस्तु की उचित इकाईयों का प्रयोग होना चाहिए।

3.5 उपभोक्ता का संतुलन तथा मार्शल का सम-सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता विश्लेषण (Consumer's Equilibrium and Marshall's Equi-Marginal Utility analysis)

प्रत्येक उपभोक्ता के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या अपने सीमित साधनों को विभिन्न प्रयोगों या विभिन्न वस्तुओं के क्रय के सम्बन्ध में इस प्रकार से बँटवारे की होती है जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त हो सके। यह अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति ही **उपभोक्ता के संतुलन** की स्थिति होगी। **मार्शल** ने उपयोगिता के संख्यात्मक (Cardinal) माप पर आधारित सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) का प्रतिपादन किया। उपभोग के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या सर्वप्रथम **गॉसेन** (Gossen) द्वारा की गई। इसीलिए इसे **गॉसेन का दूसरा नियम** (Gossen's Second Law) कहते हैं। चूँकि इस सिद्धान्त का अधिक परिष्कृत तथा वैज्ञानिक विश्लेषण **प्रो. मार्शल** (Prof. Marshall) ने ही किया इसलिए हम इसके प्रतिपादक के रूप में **मार्शल** को ही स्वीकार करते हैं। अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति को प्राप्त करने में उपभोक्ता कम उपयोगिता देने वाली वस्तुओं के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाली वस्तुओं को तब तक प्रतिस्थापित करते है जब तक उसे संतुलन की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती, इसलिए इस सिद्धान्त को उपभोग में प्रयुक्त **प्रतिस्थापन का सिद्धान्त** (substitution principle) भी कहते हैं।

उपभोक्ता संतुलन से हमारा अभिप्राय उपभोक्ता के व्यवहार की उस स्थिति से है जहाँ पर उसे अपने उपलब्ध साधनों से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है और वह उस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं लाना चाहता। यह उसके उपयोग की आदर्श स्थिति होती है। यदि वह इसमें कोई परिवर्तन करता है तो उसकी संतुष्टि में कमी आ सकती है अथवा वृद्धि नहीं की जा सकती।

प्रो. मार्शल (Marshall) के शब्दों में ***"उपभोक्ता संतुलन उपभोक्ता माँग की वह अवस्था है, जिसे वह श्रेष्ठ समझता है और उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं लाना चाहता। (Consumer's equilibrium is that state of consumer's demand which he thinks to be the best and which he does not want to alter.)"***

प्रो. सिटोवस्की (Sctiovosky) के अनुसार, ***"एक उपभोक्ता तब संतुलन में होता है जब वह अपने वास्तविक व्यवहार को वर्तमान परिस्थितियों में सर्वोत्तम समझता है और जब तक परिस्थितियों में परिवर्तन न हो, उसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहता। (A consumer is in equilibrium when he regards his actual behaviour as the best possible under the given circum- stances and feels no urge to change his behaviour so long as circumstances remain unchanged.)"***

इस सिद्धान्त की मान्यतायें निम्नवत् हैं -

1. **विवेक पूर्णता (Rational)-** उपभोक्ता विवेकपूर्ण है।
2. **सीमित साधन या सीमित मौद्रिक आय (finite resources or limited monetary income)-** उपभोक्ता के पास साधन सीमित है।
3. **उपयोगिता का संख्यात्मक माप (Cardinal measurement of utility)-** मार्शल का सम-सीमान्त उपयोगिता नियम इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को संख्या में मापा जा सकता है।
4. **योगात्मक (additive)-** विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता **योगात्मक** (additive) मानता है अर्थात वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपोगिता को जोड़ा जा सकता है।
5. **सीमांत उपयोगिता ह्रास के नियम की कार्यप्रणाली (Working of the Law of Diminishing Marginal Utility)-** किसी वस्तु की उत्तरोत्तर (gradually) इकाईयां के उपभोग से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः गिरती हुई होगी।
6. **मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर रहने की मान्यता (Assumption of constant Marginal Utility of Money)-** उपभोग के दौरान उपभोक्ता जैसे-जैसे मुद्रा खर्च करता जाएगा उसके पास वैसे ही मुद्रा के स्टॉक में भी कमी होती जाएगी, फलस्वरूप मुद्रा की उत्तरोत्तर (gradually) इकाई की सीमान्त उपयोगिता बढती जाएगी परन्तु मार्शल ने यह माना कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहेगी। कोई भी वस्तु यदि मापक इकाई के रूप में स्वीकार की जाए तो उसके मूल्य में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
7. विभिन्न वस्तु समूह से प्राप्त होने वाली उपयोगिता, अलग-अलग वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करेगी। वस्तुओं की जितनी अधिक मात्रा उपभोग की जाएगी कुल उपयोगिता उतनी ही अधिक होगी।

8. आत्मदर्शन पद्धति (introspection method)- यह दृष्टिकोण आत्मदर्शन पद्धति (introspection method) पर आधारित है।

मार्शल के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के पास कोई एक ऐसी वस्तु हो जो विभिन्न प्रयोगों में लाई जा सके तो तब वह उस वस्तु को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे। वस्तु की सीमान्त उपयोगिता समान ना होने की दशा में वह उपभोक्ता वस्तु की मात्रा को अधिक उपयोगी स्थान पर परिवर्तित कर लाभान्वित होना चाहेगा।

इस प्रकार जहाँ x वस्तु पर खर्च की गई रूपए की अन्तिम इकाई की सीमान्त उपयोगिता y वस्तु पर खर्च की गई रुपए की अन्तिम इकाई की सीमान्त उपयोगिता के बराबर है, वहीं संतुलन की स्थिति प्राप्त होगी। अर्थात् वस्तु पर रुपए की अन्तिम इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता वास्तव में x वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य अनुपात के द्वारा या $\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$ से प्रदर्शित होता है। $\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$, x पर मूल्य के रूप में व्यय की गई मुद्रा की प्रति इकाई x की सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि उपभोक्ता x की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य के अनुपात अर्थात् x की सीमान्त उपयोगिता या x का मूल्य ($\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$) की तुलना y की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य के अनुपात अर्थात् y की सीमान्त उपयोगिता या y का मूल्य ($\frac{\mathrm{MU_y}}{\mathrm{P_y}}$) के साथ करता है और जब तक ($\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$) का मान $\frac{\mathrm{MU_y}}{\mathrm{P_y}}$ से अधिक होगा, व मुद्रा की इकाई y वस्तु से हटाकर x वस्तु पर लगायेगा, इस क्रिया में $\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$का मान कम होगा (क्योंकि x पर अधिक व्यय के कारण x की सीमान्त उपयोगिता घटेगी) दूसरी ओर $\frac{\mathrm{MU_y}}{\mathrm{P_y}}$का मान बढ़ेगा (क्योंकि जैसे-जैसे y पर कम व्यय होगा उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता बढ़ेगी) मूल्य स्थिर मान लिया गया है। इस प्रकार $\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}}$ घटेगा तथा $\frac{\mathrm{MU_y}}{\mathrm{P_y}}$ बढ़ेगा और y के स्थान पर x के प्रतिस्थापन की क्रिया तब तक चलती जाएगी जब तक कि वह स्थिति नहीं मिल जाती जबकि

$$\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}} = \frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}}$$

यहाँ एक बात और महत्वपूर्ण है कि कोई भी उपभोक्ता जब किसी वस्तु का क्रय करता है तो वह ना केवल मुद्रा की प्रति इकाई से प्राप्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) को ध्यान में रखता है बल्कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility of Money) को भी ध्यान में रखता है जिसको उसे वस्तुओं के क्रय (purchase) हेतु खर्च (Expenditure) करना है इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता अपने व्यवहार के दौरान $\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}}$, $\frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}}$ तथा मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility of Money- $\mathrm{MU_M}$) की तुलना करता है, और जैसा मार्शल ने माना कि उपभोग के दौरान मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहेगी तो हम यह भी कह सकते हैं कि उपभोक्ता संतुलन की स्थिति वहाँ प्राप्त करेगा, जहाँ

$$\frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{P_X}} = \frac{\mathrm{MU_y}}{\mathrm{P_y}} = \mathrm{MU_M}\,(\text{जो स्थिर है}) \text{ या } \frac{\mathrm{MU_X}}{\mathrm{MU_y}} = \frac{\mathrm{P_X}}{\mathrm{P_y}}$$

सिद्धान्त से प्राप्त जो निष्कर्ष दो वस्तुओं के सम्बन्ध में लागू होगा वही अनेक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी लागू होगा।

यदि x से लेकर n वस्तुएँ हो तो हम कह सकते हैं कि संतुलन की स्थिति में

$$\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}} = \frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}} = \cdots \frac{\mathrm{MU}_n}{P_\mathrm{n}} = MU_\mathrm{M}$$

चूँकि अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त करने के लिए उपभोगता x के स्थान पर y तथा y के स्थान पर x को तब तक प्रतिस्थापित करता है जब तक $\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}} = \frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}} = MU_\mathrm{M}$ की स्थिति न प्राप्त हो जाए इसलिए इसे उपभोग में प्रयुक्त **प्रतिस्थापन का सिद्धान्त** (principle of substitution) कहते हैं और जैसा कि हमें पता है कि यदि मूल्य को बराबर मान लिया जाए, तो उपभोक्ता संतुलन की स्थिति वहाँ प्राप्त करेगा जहाँ विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता बराबर हो, इसलिए उपभोग के इस सिद्धान्त को **'सम-सीमान्त उपयोगिता नियम' (Law of Equi-Marginal Utility)** भी कहते हैं।

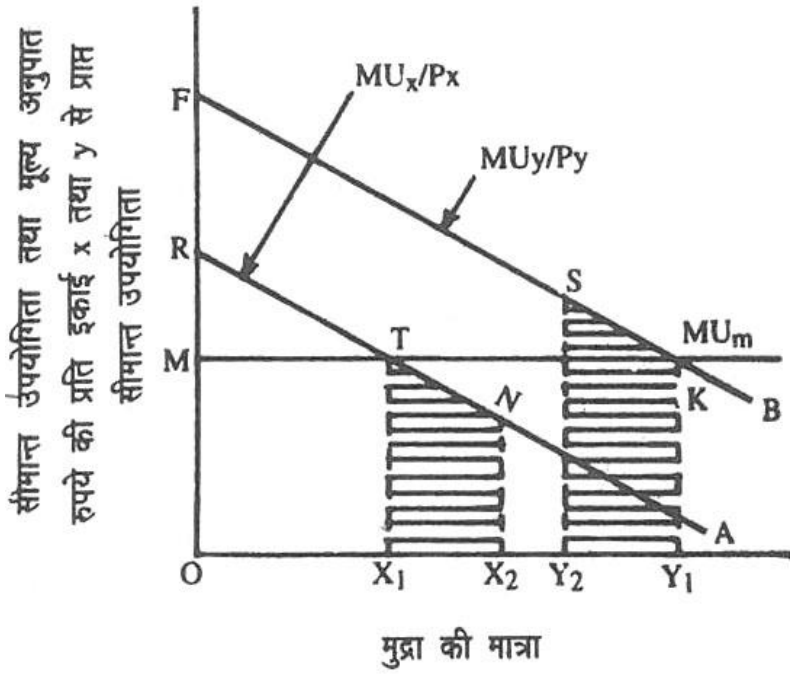

चित्र 3.2

उपभोक्ता की संतुलन की व्याख्या चित्र 3.2 के माध्यम से की गयी है। इस चित्र में RA रेखा $\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}}$ या मुद्रा की प्रति इकाई प्राप्य x की सीमान्त उपयोगिता तथा FB रेखा $\frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}}$ या मुद्रा की प्रति इकाई प्राप्य y की सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करता हैं यह मानकर कि उपभोक्ता की आय दी हुई है, चित्र में यह मान लिया गया है कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता OM है जो स्थिर है। चित्र से स्पष्ट है कि $\frac{\mathrm{MU_X}}{P_\mathrm{X}}$ मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (OM) के बराबर तब होगी जब उपभोक्ता X पर OX_1 मुद्रा व्यय करें। इसी प्रकार $\frac{\mathrm{MU}_y}{P_\mathrm{y}}$ मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता OM के बराबर तब होगी जब उपभोक्ता Y पर OY_1 मुद्रा व्यय करें। इस स्थिति में उपभोक्ता को X से $ORTX_1$ तथा Y से $OFKY_1$ कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। अब यदि हम X पर X_1X_2 और व्यय कर दें तथा $X_1X_2 = Y_1Y_2$ को Y पर कम खर्च करें तो इस स्थिति में X पर अतिरिक्त इकाई लगाने से उपयोगिता में वृद्धि X_1TNX_2 होगी जबकि Y पर कमी के कारण उपयोगिता में जो कमी होगी वह Y_2Y_1KS होगी। चूंकि उपयोगिता की हानि उपयोगिता की प्राप्ति से अधिक है, इसलिए उपभोक्ता को आवंटन (allocation) से पहले से उत्तम स्थिति प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार हम Y पर बढ़ाकर तथा X पर घटाकर भी देख सकते हैं, पहले से अच्छी स्थिति

नहीं प्राप्त होगी। इस प्रकार अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जबकि उपभोक्ता X पर OX_1 तथा Y पर OY_1 मुद्रा व्यय करें।

3.6 सम-सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticism of Equi-Marginal Utility Theory)

1. **उपयोगिता का संख्यात्मक माप सम्भव नहीं (Numerical measurement of utility is not possible)** - आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विशेष रूप से **प्रो. हिक्स (Prof. Hicks)** ने इस सिद्धान्त की आलोचना की। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि उपयोगिता का संख्यात्मक माप सम्भव नहीं तथा उपभोक्ता संतुलन (consumer equilibrium) को व्यक्त करने हेतु अनधिमान वक्रों (Indifference Curves) का प्रतिपादन किया।
2. **मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर रहने की त्रुटिपूर्ण मान्यता (Erroneous assumption of constant of marginal utility of money) -** यह मान्यता सैद्धान्तिक आधार पर ठीक नहीं है क्योंकि एक ओर तो हम यह मान लेते हैं कि जैसे-जैसे हम किसी वस्तु की इकाई क्रय करते जाते हैं उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। परन्तु दूसरी ओर हम इस तथ्य की अवहेलना करते हैं कि जैसे- जैसे उपभोक्ता मुद्रा की मात्रा व्यय करता जाएगा, मुद्रा से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाएगी। दोनों का ही आधार क्रमागत सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है।
3. **उपभोक्ता के विवेकपूर्ण होने की मान्यता (Assumption of rational consumer) –** इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि प्रत्येक उपभोक्ता एक विवेकशील उपभोक्ता है जोकि सदैव अपनी अधिकतम सन्तुष्टि का ध्यान रखता है तथा व्यय करते समय प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता की गणना करता है। परन्तु यह मान्यता वास्तविकता में व्यावहारिक नहीं। प्रायः उपभोक्ता उपयोगिता की तुलना नहीं करता है।
4. **इकाई इकाई करके मुद्रा को व्यय करने की त्रुटिपूर्ण मान्यता (Erroneous assumption of spending money unit by unit) -** इस सिद्धान्त का एक दोष मार्शल की इस मान्यता में निहित है कि उपभोक्ता अपनी व्यय की जाने वाली राशि को इकाई दर इकाई व्यय करेगा, तभी वह विभिन्न उपयोगों से मिलने वाली मुद्रा (Money) की सीमान्त इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता की गणना कर सकेगा तथा संतुलन की स्थिति का ज्ञान कर सकेगा अन्यथा नहीं। परन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं है।
5. **वस्तु की अविभाज्यता (Indivisibility of goods) -** व्यावहारिक जीवन में ऐसी अनेक वस्तुएं हैं जिनको विभाजित नहीं किया जा सकता है, इसलिए उनकी उपयोगिता की तुलना भी नहीं की जा सकती है।
6. **वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन (Change in prices of goods) -** किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता का सम्बन्ध उस वस्तु के मूल्य से बहुत अधिक गहन होता है। वस्तुओं के मूल्य प्रायः परिवर्तित होते रहते हैं, फलस्वरूप उनकी उपयोगिता भी बदलती रहती है, जिसके कारण उसकी सीमान्त उपयोगिताओं का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो पाता।
7. **कुछ वस्तुओं का अधिक टिकाऊ होना (Some items are more durable) -** इस नियम के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता की तुलना हम एक निश्चित अवधि में करते हैं जिसे हम **बजट अवधि** (budget period) कहते हैं, परन्तु कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो अधिक टिकाऊ होती है और

उन पर व्यय बजट अवधि में किया जाता है लेकिन उनसे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उसी बजट अवधि तक सीमित नहीं रहती है बल्कि आने वाली बजट अवधि तक भी चलती है क्योंकि उनका प्रयोग आगे तक किया जाता है।

8. रीति-रिवाज, फैशन तथा आदत (Custom, fashion and habit)- प्रायः मनुष्य वस्तुओं पर व्यय करते समय उनसे मिलने वाली उपयोगिता पर ध्यान नहीं देता है और इस प्रकार की वस्तुओं को भी खरीदता है जिनसे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता भले ही कम हो पर वह या तो उसकी आदत बन चुकी होती हैं या रीति-रिवाज अथवा फैशन के कारण उसके बजट की अभिन्न अंग बन चुकी होती है।

9. कुछ वस्तुओं की अनुपलब्धता (Unavailability of some goods) - ऐसा हो सकता है कि कोई ऐसी वस्तु हो जिससे उपभोक्ता को उपयोगिता अधिक मिले तथा उसे वह क्रय करना भी चाहे परन्तु बाजार में वह उपलब्ध ही ना हो, तब ऐसी परिस्थिति में वह कम उपयोगिता वाली वस्तु भी उसके स्थान पर खरीदने के लिए बाध्य हो जाएगा।

3.7 सम - सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्व (Significance of the Law of Equi-Marginal Utility)

सम-सीमान्त उपयोगिता नियम अर्थशास्त्र का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा व्यापक सिद्धान्त है। अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी इस सिद्धांत का व्यावहारिक/सैद्धान्तिक महत्व कम नहीं हुआ। उपभोग तथा उत्पादन के क्षेत्र में हम लोगों ने इस नियम के क्रियाशीलता तथा इसके महत्व की व्याख्या की। अब हम कुछ और क्षेत्रों में इस नियम के प्रयोग पर विचार करेंगे।

1. कृषि क्षेत्र में नियम का प्रयोग (Application of law in agriculture)- किसान अपने विभिन्न खेतों में इस प्रकार से फसल उगाता है, जिससे प्रत्येक खेत से मिलने वाला सीमान्त उत्पाद बराबर हो तथा वह विभिन्न उपयोगों में अपने साधनों को इस प्रकार से लगाएगा कि द्रव्य (Money) की अन्तिम इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता प्रत्येक उपयोग में बराबर हो।

2. मुद्रा तथा वस्तु का वर्तमान तथा भावी प्रयोग (Present and future uses of money and goods)- इस नियम के आधार पर उपभोक्ता वर्तमान तथा भावी प्रयोग के बीच अपनी आय अथवा वस्तुओं को इस प्रकार बाँटेगा कि उनसे मिलने वाली वर्तमान की सीमान्त उपयोगिता, भविष्य में मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाए।

3. राजस्व के संदर्भ में नियम का प्रयोग (Application of Law in respect of revenue)- राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त भी समसीमान्त उपयोगिता नियम पर आधारित है। कर के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करते समय सरकार को कर (Tax) इस प्रकार लगाना चाहिए जिससे कर (Tax) से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उससे होने वाली सीमान्त त्याग (Marginal Sacrifice) के बराबर हो। सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में भी सरकार अपनी नीति का निर्धारण इस सिद्धान्त के आधार पर कर सकती है।

अन्त में, **रॉबिन्स** (Robbins) ने कहा है कि यह नियम अर्थशास्त्र का आधार है। सीमित साधनों का असीमित उद्देश्यों की संतुष्टि के प्रयोग के सम्बन्ध में इस नियम की आवश्यकता होती है। इसे हम अर्थशास्त्र का मुख्य नियम कहते हैं। अन्य नियम तो उपनियम मात्र है। यह नियम उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय तथा वितरण में प्रमुख है।

3.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. मार्शल का सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण ..... माप दृष्टिकोण है।
2. नति परिवर्तन बिन्दु के उपरान्त कुल उपयोगिता..... हुई दर से बढ़ती है।
3. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सर्वप्रथम..... ने प्रतिपादित किया।
4. सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण ..... पद्धति पर आधारित है।
5. कुल उपयोगिता को उपभोग की गई इकाईयों की संख्या से भाग दें तो हमें ..... उपयोगिता प्राप्त हो जाएगी।

3.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अब यह जान चुके हैं कि सम-सीमान्त तुष्टिगुण/उपयोगिता विश्लेषण मार्शल द्वारा प्रतिपादित किया गया है जो संख्यात्मक माप दृष्टिकोण पर आधारित है। कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग (या क्रय) इसलिए करता है क्योंकि उस वस्तु में उपभोक्ता की आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता निहित होती है। आवश्यकता को संतुष्ट करने की यह क्षमता ही उस वस्तु की उपयोगिता कहलाती है। इस इकाई में कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता को स्पष्ट किया गया है साथ ही कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता के परस्पर सम्बन्ध की भी व्याख्या की गई है। तत्पश्चात् सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को स्पष्ट किया गया है। सम-सीमान्त-उपयोगिता ह्रास-नियम उपभोग का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। मार्शल के सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण के माध्यम से उपभोक्ता की संतुलन की व्याख्या की गई है एवं सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण भी प्रस्तुत किया गया है। अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति को प्राप्त करने में उपभोक्ता कम उपयोगिता देने वाले उपयोग के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाले उपयोग को तब तक प्रतिस्थापित करता है जब तक उसे संतुलन की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती।

3.10 शब्दावली (Glossary)

- **संख्यात्मक माप (Cardinal Measurement)-** संख्यात्मक दृष्टिकोण के अनुसार, उपयोगिता को संख्याओं के रूप में मापा जा सकता है।
- **उपयोगिता (Utility) -** किसी वस्तु में निहित उस शक्ति को उपयोगिता कहते है जिसके उपभोग से संतुष्टि प्राप्त होती है।
- **उपयोगिता की माप (Measurment of Utility) -** किसी वस्तु के बदले में दिया जाने वाला मूल्य ही उस वस्तु की उपयोगिता की माप होता है।
- **कुल उपयोगिता (Total Utility) -** पहली इकाई के उपभोग से लेकर अंतिम इकाई के उपभोग तक, प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता के योग को ही कुल उपयोगिता कहा जाता है।
- **औसत उपयोगिता (Average Utility) -** यदि कुल उपयोगिता को उपभोग की गई इकाइयों की संख्या से भाग दें तो हमें औसत उपयोगिता प्राप्त होती है।
- **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) -** वस्तु की कुल मात्रा में इकाई वृद्धि होने के परिणामस्वरूप कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि सीमान्त उपयोगिता कहलाती है।
- **ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता (Diminishing Marginal Utility)-** प्रति समय इकाई वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। इसे ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता कहते हैं।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. संख्यात्मक 2. बढ़ती 3. गॉसेन 4. आत्मदर्शन 5. औसत

3.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

3.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. उपयोगिता का अर्थ स्पष्ट करते हुए सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपोगिता का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या चित्र की सहायता से कीजिए।
3. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम क्या है? इस नियम की सीमाओं का वर्णन कीजिए।
4. उपयोगिता विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता किस प्रकार संतुलन की अवस्था को प्राप्त करता है? स्पष्ट कीजिए।
5. उन आर्थिक क्षेत्रों का वर्णन कीजिए जहाँ सम-सीमान्त उपयोगिता नियम लागू होता है।

इकाई - 4 माँग: नियम और लोच
(Demand: Law and Elasticity)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)
4.2 उद्देश्य (Objectives)
4.3 माँग से आशय (Meaning of Demand)
4.4 माँग का नियम (Law of Demand)
4.4.1 नियम की मान्यतायें (Assumptions of Law of Demand)
4.4.2 नियम की सीमाएँ (Limitations of Law of Demand)
4.5 माँग अनुसूची तथा माँग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)
4.5.1 व्यक्तिगत माँग अनुसूची (Individual Demand Schedule)
4.5.2 सामूहिक माँग अनुसूची (Market Demand Schedule)
4.5.3 माँग वक्र का स्वरुप (Shape of Demand Curve)
4.6 माँग में परिवर्तन (Changes in Demand)
4.7 माँग के निर्धारक तत्व (Determinant factors of Demand)
4.8 माँग की लोच (Elasticity of Demand)
4.8.1 माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)
4.8.2 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)
4.8.3 माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)
4.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
4.10 सारांश (Summary)
4.11 शब्दावली (Glossary)
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
4.14 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
4.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यष्टि अर्थशास्त्र के गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है, इससे पहले की इकाई में आपने सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का सम-सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण और इस नियम के महत्वों का अध्ययन किया है।

इस इकाई में आप माँग से आशय,माँग का नियम (Law of Demand) तथा माँग सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र के बारे में पढेंगे। माँग वक्र का स्वरूप, बाजार माँग वक्र तथा माँग के नियम को समझेंगे। माँग में परिवर्तन तथा माँग के निर्धारक तत्व को भी आप इस इकाई में समझेंगे। इसके अलावा आप मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग एवं पूर्ति में कितना परिवर्तन होगा, किस अनुपात में होगा, तथा विभिन्न मूल्यों पर माँग एवं पूर्ति के परिवर्तित होने की क्षमता पर इसका क्या प्रभाव होगा इसका अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ माँग से आशय नियम तथा माँग सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र को जान सकेंगे।
- ✓ माँग वक्र का स्वरूप, बाजार माँग वक्र तथा माँग के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- ✓ माँग में परिवर्तन तथा माँग के निर्धारक तत्व को बता सकेंगे।
- ✓ माँग की लोच का आशय एवं लोच को प्रभावित करने वाले तत्व को जान सकेंगे।
- ✓ माँग की लोच के महत्व को समझ सकेंगे।
- ✓ माँग की लोच के प्रमुख प्रकार को बता पाएँगे।

4.3 माँग से आशय (Meaning of Demand)

मार्शल (Marshall) के माँग के नियम की व्याख्या प्रस्तुत करने से पूर्व आपको यह पता होना जरुरी हैं की 'माँग' से क्या आशय है। किसी दिए गए समय में दिए हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता, बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्रायें क्रय करता है, उसे वस्तु की माँग कहते हैं। बिना मूल्य के माँग का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि मूल्य के परिवर्तन का प्रभाव ही माँग पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त मूल्य ही वह तत्व है जो माँग को उस वस्तु की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है।

माँग विश्लेषण, उपभोक्ता के व्यवहार या किसी वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की माँग में होने वाले परिवर्तन के विश्लेषण से सम्बन्धित है जब माँग को प्रभावित करने वाले चरों में परिवर्तन हो। किसी वस्तु की माँग वस्तु के मूल्य (P_X) उपभोक्ता की आय (Y) अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_Y), रूचि तथा फैशन (T), सम्पत्ति (W) आदि पर निर्भर करती है। इसके बीच एक आश्रितता (dependent) या फलनात्मक सम्बन्ध होगा जिसे हम माँग-फलन कहते हैं। इसे फलन के रूप में हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

$$Dx = f(Px, Y, Py, T)$$

माँग फलन यह स्पष्ट करता है कि यदि हम इन चरों में परिवर्तन करें तो इसका प्रभाव X वस्तु की माँग पर पड़ेगा। चरों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप वस्तु की माँग में भी परिवर्तन देखने को मिलता हैं, जैसे यदि X की कीमत गिरेगी तो उसकी माँग बढ़ेगी, उसे माँग का नियम कहते हैं। हम सरल अध्ययन की दृष्टि से एक-एक चर में परिवर्तन करते हैं। जब एक चर में परिवर्तन करते हैं तो अन्य चरों को स्थिर मान लेते हैं, और देखते हैं कि इसका क्या प्रभाव वस्तु की माँग पर पड़ेगा।

4.4 माँग का नियम (Law of Demand)

मार्शल (Marshall) ने माँग का नियम प्रतिपादित करते हुए कहा हैं कि, किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोमात्मक सम्न्ध पाया जाता है तथा जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य गिरता जाता है, उसकी माँग बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य बढ़ता जाता है,उसकी माँग घटती जाती है। मार्शल के शब्दों में माँग का एक सामान्य नियम है - किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके क्रेता को अधिक मिल सकें। दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से माँग घटती है और मूल्य के गिरने से माँग बढ़ती है। इस प्रकार मार्शल के अनुसार वस्तु की माँगी गई मात्रा (D) तथा वस्तु के मूल्य (P) के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है जिसे माँग का नियम कहते हैं।

$$Dx = f(Px) \quad \text{... अन्य बातें समान रहें}$$

जहाँ P_y तथा Y समान हैं।

4.4.1 नियम की मान्यतायें (Assumptions of Law of Demand)

माँग-नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है क्योंकि यह नियम तभी सत्य होगा जब अन्य तत्व स्थिर रहें। ये निम्नलिखित हैं-

1.लोगों की आय यथास्थिर रहें ।

2. अन्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर रहें।

3. लोगों के स्वाद एवं अभिरूचि में परिवर्तन न हो।

4.4.2 नियम की सीमाएँ (Limitations of Law of Demand) –

सामान्यतया माँगवक्र नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ होगा अर्थात् (ऋणात्मक मूल्य-माँग सम्बन्ध प्रदर्शित करेगा) पर कुछ ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जबकि माँग वक्र नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ न हो, ऐसी स्थिति में मूल्य-माँग सम्बन्ध धनात्मक होगा। ये परिस्थितियाँ निम्नांकित होंगी -

1. **प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं (Prestige goods):-** बहुत सी ऐसी वस्तुयें होती हैं जिनको व्यक्ति या तो प्रतिष्ठा के लिए खरीदता है अथवा अपने आप को दूसरे वर्ग के लोगों से अलग करने/दिखाने के लिए जैसे कि हीरा, आभूषण आदि। इन वस्तुओं का मूल्य जितना ही ऊँचा होता है लोग इसे उतना ही इन्हें प्रतिष्ठा के लिए अपने पास रखते हैं।
2. **गिफेन वस्तुएं (Giffen goods):-** ऐसी अत्यन्त ही निकृष्ट कोटि की वस्तुयें जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव इतना अधिक धनात्मक हो कि वे ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त कर दे तथा फलस्वरूप मूल्य- माँग सम्बन्ध धनात्मक हो जाए तो माँग वक्र दाहिनी ओर गिरेगा नहीं।
3. **अज्ञान तथा भ्रम (Ignorance of Consumer) :-** कुछ व्यक्तियों में ऐसा भ्रम होता है कि यदि किसी वस्तु का मूल्य कम है तो वह निकृष्ट कोटि (Worst Quality) की है, इसलिए उसकी माँग कम करते हैं तथा ऊँचा मूल्य उसकी उत्कृष्ट कोटि (excellent Quality) का प्रतीक है, इसलिए माँग अधिक करते हैं।

4. **मूल्य में वृद्धि का डर तथा कमी की आशा (Fear of increase in price and hope of decrease):**
   - यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ रहा हो तथा यदि उपभोक्ता यह आशा करने लगे कि भविष्य में मूल्य और बढ़ेगा तो मूल्य में वृद्धि के बावजूद भी अधिक वस्तुयें खरीद कर रख लेना चाहेगा। इसी प्रकार यदि उसे यह आशा हो जाये कि भविष्य में मूल्य गिरेगा तो मूल्य में थोड़ी कमी होने के बाद भी उसकी माँग में वृद्धि नहीं हो सकती है।
5. **जीवन-निर्वाह/अनिवार्य वस्तुएँ (Subsistence/Essential Goods):-** ऐसी वस्तुयें जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं उनके मूल्य में वृद्धि, एक निश्चित सीमा के बाद माँग में कमी नहीं लायेगी। इन वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने पर लोग अन्य वस्तुओं की माँग कम कर देंगे।

4.5 माँग अनुसूची तथा माँग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)

माँग-सारिणी किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची है जो विभिन्न मूल्यों पर माँगी या क्रय की जाती है। हमें विदित है कि वस्तु के मूल्य तथा माँग में विलोम फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।
माँग सारिणी दो प्रकार की होती है:

1. व्यक्तिगत माँग अनुसूची (Individual Demand Schedule)
2. सामूहिक माँग अनुसूची (Market Demand Schedule)

जब हम समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी मूल्य पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची तैयार करते हैं तो उसे **व्यक्तिगत माँग अनुसूची** कहते हैं। परन्तु जब हम विभिन्न व्यक्तियों की माँग की सारिणियों को मिला देते हैं तो **सामूहिक माँग अनुसूची** तैयार हो जाती है।

4.5.1 व्यक्तिगत माँग अनुसूची (Individual Demand Schedule)

माँग सारिणी 4.1 से यह स्पष्ट होता हैं कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता है वस्तु की माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है। इसी प्रकार विपरीत क्रम में जब वस्तु का मूल्य बढ़ता है तो वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी होती है। माँग- सारिणी के माध्यम से व्यक्तिगत माँग वक्र का निर्माण किया जा सकता है जो कि वस्तु की माँग तथा मूल्य के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।

सारिणी 4.1 व्यक्तिगत माँग अनुसूची (Individual Demand Schedule)

मूल्य प्रति इकाई (Price per unit)	वस्तु की माँगी गई इकाईयां (Unit of a good demanded)
25	30
20	40
15	50
10	60
05	70

चित्र-4.1 में प्रदर्शित DD वक्र, माँग वक्र है जो वस्तु की माँग तथा मूल्य के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है। स्पष्ट है कि यह वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ है। स्पष्ट है कि यह वक्र बायें से दाये गिरता है। चित्र से स्पष्ट है कि जब मूल्य OP(20) है तो माँगी गयी मात्रा OQ (30) है, और जब मूल्य घटकर OP_1 (15) हो जाता है तो माँग बढ़कर OQ_1 (40) हो जाती है।

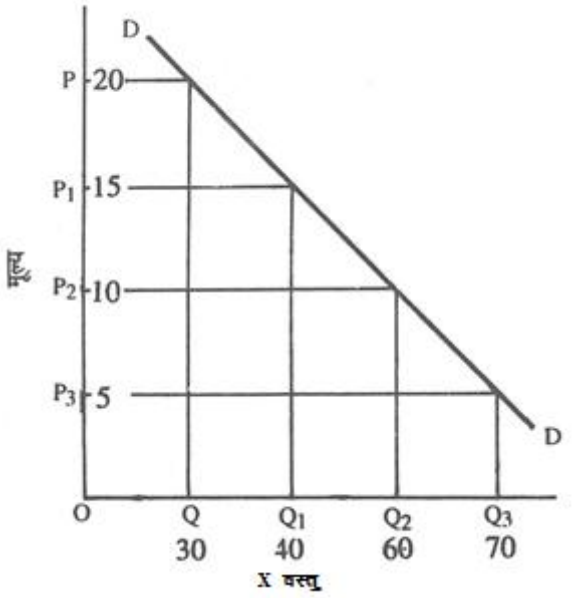

चित्र-4.1

4.5.2 सामूहिक माँग अनुसूची (Market Demand Schedule)

अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो विशिष्ट समयावधि में सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक हैं, वह उस वस्तु की बाजार माँग (Market Demand) होगी। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता द्वारा P_1 मूल्य पर X वस्तु की माँग $d_1, d_2, d_3,.....d_n$ हैं तो P_1 मूल्य पर बाजार माँग $d_1, d_2, d_3,.....d_n$ का योग ही होगी। इसे सारिणी-4.2 में स्पष्ट किया गया है।

सारिणी-4.2 सामूहिक माँग अनुसूची (Market Demand Schedule)

X वस्तु का मूल्य (Price of X good)	X वस्तु की माँग (Demand of X good)		बाजार माँग (Market Demand) (A+B)
	उपभोक्ता (Consumer) A	उपभोक्ता (Consumer) B	
20	5	3	8
18	8	5	13
16	12	10	22
14	16	15	31
12	25	20	45

यदि हम अन्तिम खाने में प्रदर्शित आँकड़ों को वक्र के रूप में प्रदर्शित करें तो हमें बाजार माँग वक्र प्राप्त हो जाएगा। चित्र के रूप में, बाजार माँग वक्र व्यक्तिगत माँग वक्रों का क्षैतिजीय योग होता है, जैसा चित्र 4.2 में प्रदर्शित है। चित्र के भाग 3 में DM बाजार माँग प्रदर्शित करती है। DM वस्तुतः प्रत्येक मूल्य स्तर पर D_A तथा D_B का क्षैतिजीय योग है। जैसे OP_3, मूल्य पर A की माँग OX_1, तथा B की माँग OX_5, है। OX_1, तथा OX_5, को जोड़कर भाग 3 में यह प्रदर्शित किया गया है कि OP_3, पर बाजार माँग OQ_1 होगी।

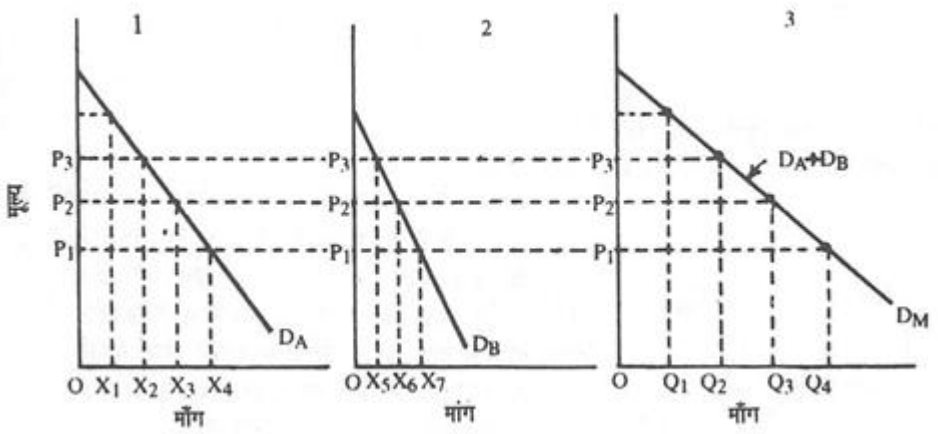

चित्र 4.2

4.5.3 माँग वक्र का स्वरुप (Shape of Demand Curve)

माँग-वक्र सामान्यतया नीचे दाहिनी ओर झुकता हुआ होता है, जेसा की आप ऊपर पढ़ ही चुके हैं।

आइये इसे चित्र 4.3 के माध्यम से स्पष्टीकृत करते है। इस चित्र में D माँग वक्र है, मान लीजिए वस्तु का मूल्य OP है।

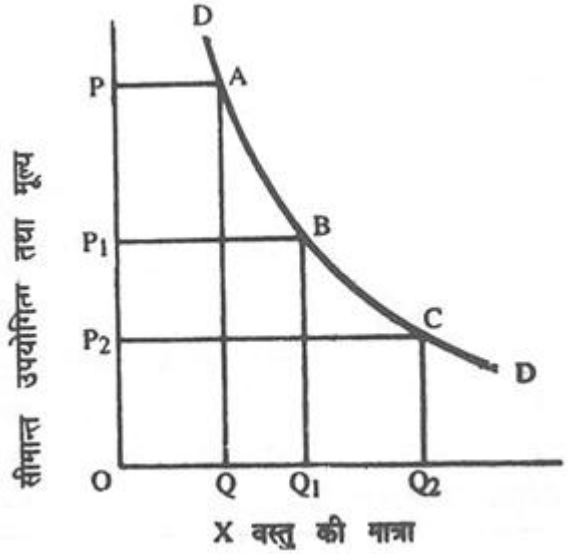

चित्र 4.3

चूँकि कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उसकी सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देगा, इसलिए A बिन्दु पर OP=MU आवश्यक रूप से होगा। इस प्रकार A बिन्दु संस्थिति बिन्दु होगा। इसी प्रकार OP1 मूल्य पर भी OP, जैसे-जैसे वह X की अधिक मात्रा क्रय करेगा X की सीमान्त उपयोगिता गिरेगी, इसलिए B बिन्दु पर संस्थिति की स्थिति तभी होगी जब मूल्य में गिरावट हो, OP1 मूल्य OP मूल्य से आवश्यक रूप से कम होगा। इस प्रकार उत्तरोत्तर गिरती हुई सीमान्त उपयोगिता के साथ मूल्य का गिरना आवश्यक है, तभी अधिक

वस्तु का क्रय हो सकेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे मूल्य गिरता जाएगा, वस्तु की माँगी गयी मात्रा बढ़ती जाएगी और इनके बीच सम्बन्ध व्यक्त करने वाला माँग-वक्र नीचे दाहिनी ओर झुकता जाएगा।

माँग-वक्र के दाहिनी ओर झुकने के दो मुख्य कारण हैं:

1. **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility) :** इस नियम के अनुसार जब कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की जैसे-जैसे अधिक इकाईयों को खरीदता जाएगा वैसे ही उससे मिलने वाली उपयोगिता क्रमशः कम होती जाएगी। इस प्रकार उपयोगिता की कमी होने के कारण कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता, वस्तु के मूल्य के बराबर होगी।
2. **सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) :** मार्शल के अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि या संस्थिति की स्थिति में वहाँ होगा, जहाँ $^{MUx}/_{Px} = MUm$ अर्थात् वस्तु की सीमांत उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात मुद्रा की सीमांत उपयोगिता (जो स्थिर है) के बराबर हो जाए।

4.6 माँग में परिवर्तन (Changes in Demand)

माँग में होने वाले परिवर्तन (वृद्धि तथा कमी) दो प्रकार के होते हैं-

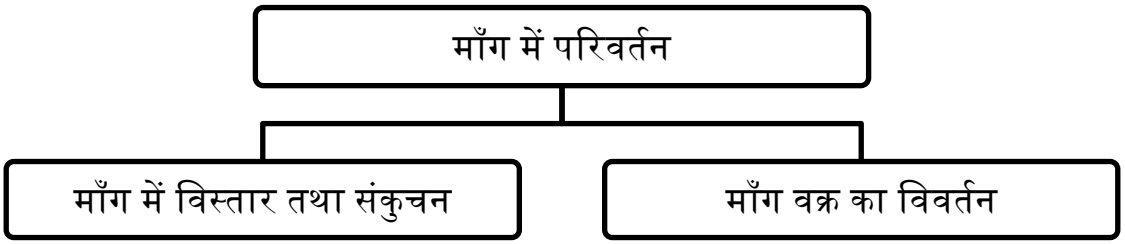

1. **माँग में विस्तार तथा संकुचन (Expansion and Contraction in Demand):** अन्य मान्यताओं के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार (Expansion) कहते हैं और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती है तो इसे माँग का संकुचन (Contraction) कहते हैं।

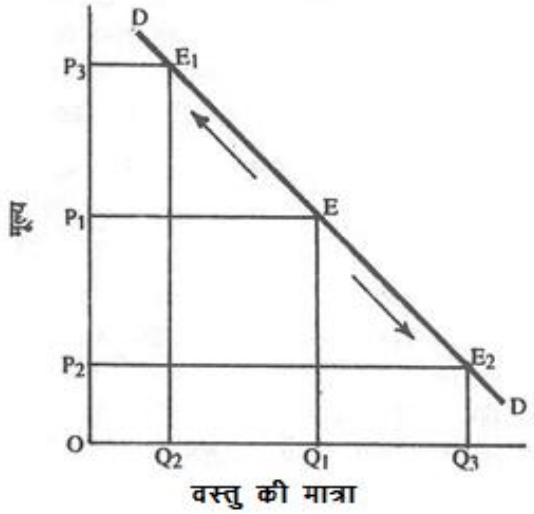

चित्र 4.4

इस प्रकार एक ही माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर चलने की क्रिया माँग में विस्तार या संकुचन प्रदर्शित करेगी। माँग वक्र पर नीचे (दाहिनी) की ओर चलना **माँग में विस्तार** को व्यक्त करता है। माँग वक्र पर ऊपर बायीं ओर चलना **माँग में संकुचन** को व्यक्त करता है।

इसे चित्र 4.4 में स्पष्ट किया गया है। इस चित्र में DD माँग वक्र है। मान लीजिए मूल स्थिति में मूल्य OP_1 तथा माँगी गयी वस्तु की मात्रा OQ_1 है। DD माँग रेखा पर ही विभिन्न बिन्दुओं पर चलना विस्तार तथा संकुचन को प्रदर्शित करेगा। यदि आप E बिंदु से दाहिनी ओर बिंदु E_2 पर आयें तो मूल्य OP_1 से गिरकर OP_2 होगा तथा माँगी गयी वस्तु की मात्रा OQ_1 बढ़कर OQ_3 हो जाएगी जोकि माँग के विस्तार को दर्शाती है। इसी प्रकार यदि आप बिंदु E से बायीं ओर बिंदु E_1 पर आयें तो मूल्य OP_1 से बढ़कर OP_3 होगा तथा माँगी गयी वस्तु की मात्रा OQ_1 गिरकर OQ_2 हो जाएगी जोकि माँग में संकुचन को दर्शाती है।

2. माँग वक्र का विवर्तन (Shifting in Demand Curve): माँग में वृद्धि तथा माँग में कमी यदि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण, एक ही मूल्य पर माँग अपेक्षाकृत अधिक हो जाए तो इसे माँग में वृद्धि (Increase in Demand) कहेंगे। पर इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर माँग पहले की अपेक्षा कम हो जाए तो इसे माँग में कमी (Decrease in Demand) कहेंगे। यदि $Dx = f(Px, Py, Y, T....)$ हो और हम मूल्य माँग [$D_x=f(P_x)$] की व्याख्या कर रहे हों तो हम कह सकते हैं कि यदि P_y,Y,T.... आदि चर अपरिवर्तित हों केवल P में परिवर्तन हो तो यह परिवर्तन माँग में विस्तार या संकुचन को प्रदर्शित करेगी परन्तु इन चरों में ही परिवर्तन हो जाए तो माँग में वृद्धि या माँग में कमी को प्रदर्शित करेगी । परिणामस्वरूप माँग वक्र दूसरा बनता है। माँग में वृद्धि और माँग में कमी को चित्र 4.5 में स्पष्ट किया गया है।

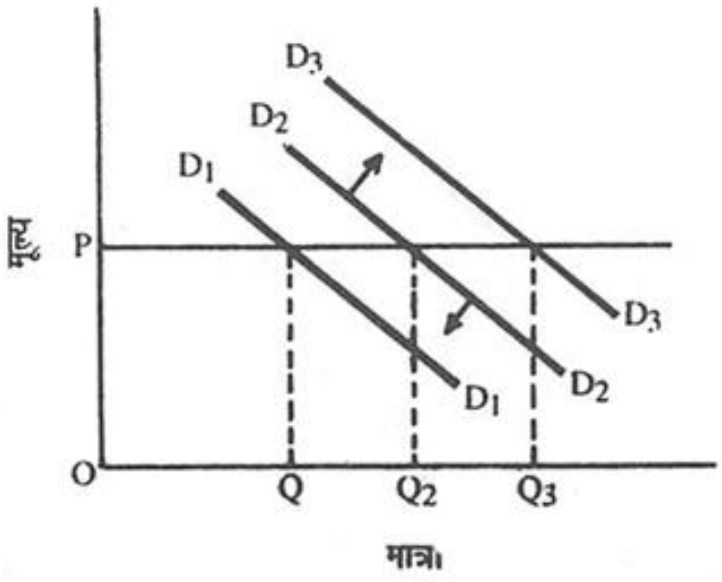

चित्र 4.5

चित्र 4.5 में मूल माँग D_2D_2 तथा मूल्य OP है। किसी अन्य कारक में परिवर्तन के कारण माँग D_2D_2 से बढ़कर D_3D_3 हो जाए तो इसे माँग में वृद्धि कहा जाएगा। पर यदि किसी कारण से माँग D_2D_2 से D_1D_1 हो जाये तो वस्तु की माँग उसी मूल्य पर OQ_2 से घटकर OQ_1 हो जाती है। इसे माँग में कमी कहते हैं।

4.7 माँग के निर्धारक तत्व (Determinant factors of Demand)

जो तत्व माँग में प्रकर्षण और विकर्षण को जन्म देते हैं वे इस प्रकार हैं:

1. **उपभोक्ता की आय (Income of Consumer):** किसी भी उपभोक्ता की माँग उसकी क्रय-शक्ति पर निर्भर करती है तथा यह क्रयशक्ति उसकी आय तथा उसके पास संचित धन एवं सम्पत्ति पर निर्भर करती है। यदि किसी व्यक्ति के पास आय अधिक हो तो वह अधिक वस्तुओं की माँग करेगा।
2. **रूचि, फैशन तथा रीति-रिवाज (Taste and Preference):** उपभोक्ता की रूचि, प्रचलित फैशन तथा समाज के रीति-रिवाज का प्रभाव माँग पर पड़ता है। यदि किसी स्थान पर व्यक्तियों की रूचि ही ऐसी हो कि वे चाय पीना अधिक पसन्द करते हैं तो उसकी माँग बढ़ जाएगी। इसी तरह यदि कोई वस्तु प्रचलन/फैशन में आ जाए तो उसकी माँग बढ़ जाएगी। कुछ वस्तुओं की माँग रीति-रिवाज द्वारा प्रभावित होती है।
3. **बाजार में उपभोक्ता की संख्या (Number of Consumer in Market) :** किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की माँग करने वाले उपभोक्ताओं की संख्या पर भी निर्भर करती है। यदि उपभोक्ताओं की संख्या अधिक हो तो वस्तु की माँग अधिक होगी तथा कम होने पर कम होगी।
4. **भविष्य में वस्तु के मूल्य में परिवर्तन की आशा (Expectations of Consume):** यदि भविष्य में किसी वस्तु की मूल्य में वृद्धि की आशा हो तो उसकी माँग बढ़ जाएगी तथा इसके विपरीत यदि भविष्य में मूल्य के गिरने की उम्मीद हो तो माँग घट जाएगी।
5. **जनसंख्या (Population) :** जनसंख्या में वृद्धि के कारण भी माँग प्रभावित होती है। जनसंख्या बढ़ने से अनेक वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है जैसे खाद्यान्नों की माँग।

4.8 माँग की लोच (Elasticity of Demand)

माँग की लोच के तीन प्रकार हैं- माँग की मूल्य लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की आड़ी लोच ।

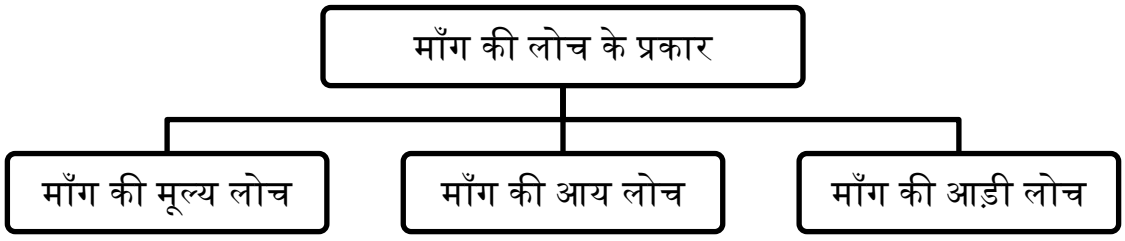

4.8.1 माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)

माँग की मूल्य लोच के अनुसार माँग, किसी वस्तु के मूल्य में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन (Relative Change) के परिणामस्वरूप वस्तु की माँगी गयी मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया (Relative Response) का माप ही माँग की लोच है। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs John Robinson) के अनुसार माँग की लोच अथवा मूल्य में थोड़े परिवर्तन के परिणाम स्वरूप खरीदी गयी वस्तु की मात्रा के आनुपातिक

(Proportional) परिवर्तन को मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है। सूत्र के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{माँग की लोच (ep)} = (-)\frac{\text{वस्तु की माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

इसमें, माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन $= \frac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{पूर्व माँग की मात्रा}}$

$$\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{\text{मूल्य में परिवर्तन}}{\text{पूर्व माँग की मात्रा}}$$

यदि हम माँग एवं मूल्य के परिवर्तनों को Δq एवं Δp के द्वारा क्रमशः व्यक्त करें, तो इसे हम संक्षेप में इस रूप में भी लिख सकते हैं-

$$ep = \left(\frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta p}{p}\right) = -\left(\frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}\right)$$

4.8.1.1 माँग की मूल्य लोच की श्रेणियाँ (Degree of Price Elasticity of Demand)

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है-

1.पूर्णतया लोचदार माँग (Perfectly Elastic Demand) (ep = ∞) - किसी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार तब होगी जब उसके मूल्य में अल्प वृद्धि होते ही उस वस्तु की माँग शून्य हो जाए और अल्प कमी होते ही उस वस्तु की माँग में अपरिमित वृद्धि हो जाए। इसका स्पष्टीकरण चित्र 4.6 में किया गया है।

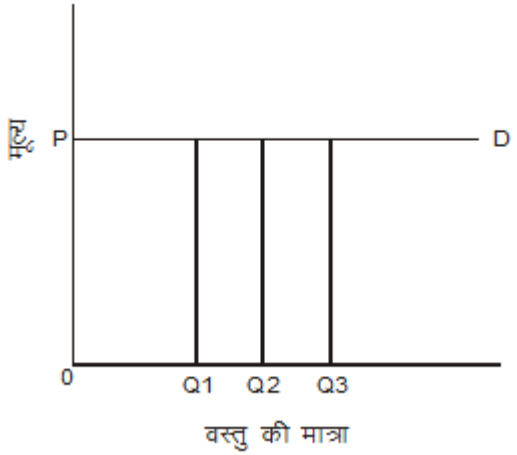

चित्र 4.6

2. पूर्णतया बेलोच माँग (Perfectly Inelastic Demand) (ep=0):- यदि किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के बाद भी उसकी माँग में किसी प्रकार का परिवर्तन ना हो तो उसकी माँग को पूर्णतया बेलोच कहेंगे। कुछ ऐसी वस्तुएं जो जीवन के लिए आवश्यक हैं, उनकी माँग बेलोच तो हो सकती है पर फिर भी इनकी माँग पूर्णतया बेलोच नहीं होगी। पूर्णतया बेलोच माँग-वक्र लम्ब - अक्ष के समानान्तर अथवा आधार अक्ष पर लम्ब होगा जैसा चित्र 4.7 में दिखाया गया है।

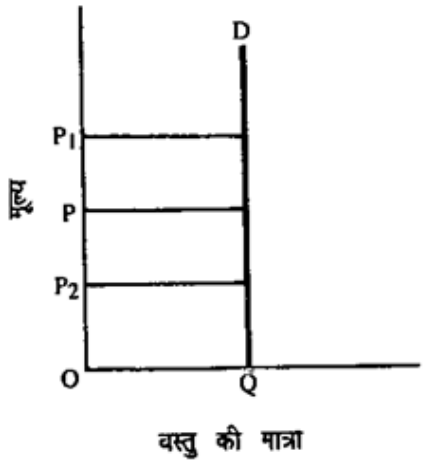

चित्र 4.7

3. माँग की इकाई लोच (Unitary Elasticity of Demand) (ep=1):- जब किसी वस्तु की माँग में सापेक्षित परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो तो उस वस्तु की माँग की इकाई लोच कहेंगे, जैसे किसी वस्तु के मूल्य में कमी 10% हो और उसकी माँग में वृद्धि भी 10% ही हो। माँग की इकाई लोच का स्पष्टीकरण चित्र 4.8 में किया गया है।

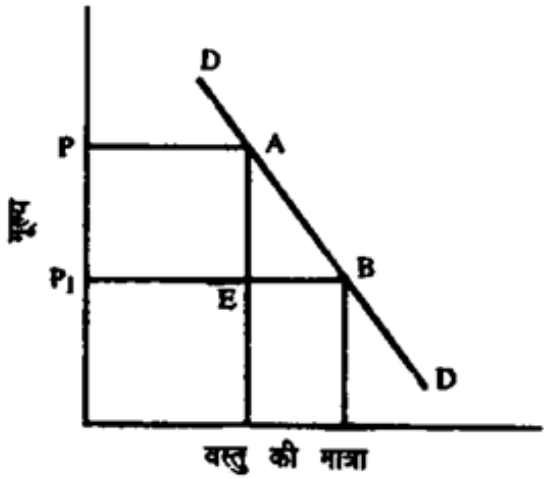

चित्र 4.8

4. अधिक लोचदार माँग (Elastic Demand) (ep>1) :- जब किसी वस्तु की माँग में सापेक्षित परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक हो तो उस वस्तु की माँग अधिक लोचदार कही जाएगी जैसे किसी वस्तु के मूल्य में 10% की वृद्धि के कारण वस्तु की माँग में 30% की कमी आ जाए। अधिक लोचदार माँग का प्रदर्शन चित्र 4.9 में किया गया है।

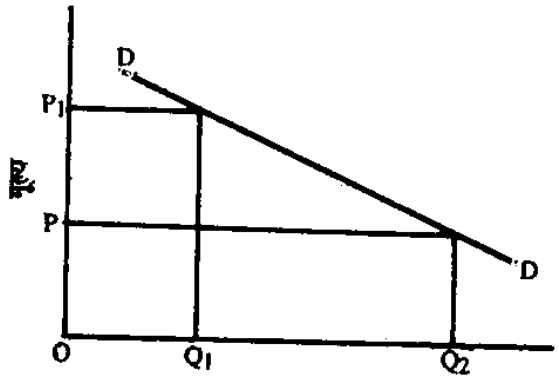

चित्र 4.9

5. बेलोच माँग (Inelastic Demand) (ep <1):- जब किसी वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से कम हो तो उस वस्तु की माँग बेलोच कही जाएगी, जैसे मूल्य में 10% की कमी माँग में 5% की वृद्धि लाए। इसका स्पष्टीकरण चित्र 4.10 में किया गया हैं।

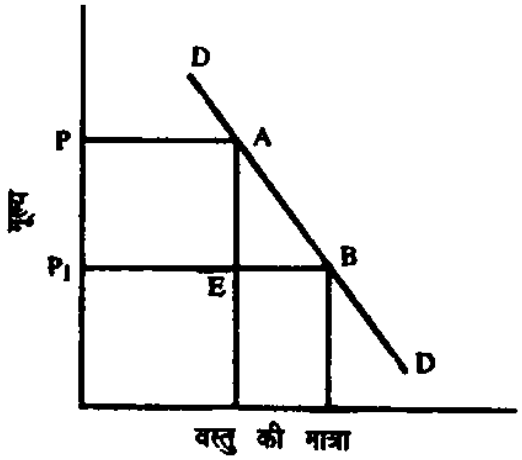

चित्र 4.10

4.8.1.2 माँग की मूल्य लोच की माप (Measurement of Price Elasticity of Demand)

माँग की लोच को मापने की तीन विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं जिनका स्पष्टीकरण विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है-

1. कुल व्यय विधि (Total Expenditure Method):- मार्शल (Marshall) ने मूल्य में परिवर्तन के कारण किसी वस्तु पर होने वाले कुल व्यय के आधार पर माँग की लोच का मापन किया, जिसको व्यय विधि कहा जाता है। मार्शल ने यह प्रतिपादित किया कि यदि मूल्य में कमी के बाद यदि व्यय बढ़े तो माँग की लोच इकाई से अधिक (ep>1) होगी यदि स्थिर रहे तो माँग की लोच इकाई के बराबर (ep=1) तथा यदि व्यय कम हो जाए तो माँग की लोच इकाई से कम (ep <1) होगी।

किसी वस्तु पर होने वाला कुल व्यय (TE)=वस्तु की माँगी गयी मात्रा x प्रति इकाई मूल्य

नीचे दी गयी सारिणी में व्यय विधि के आधार पर माँग की मूल्य लोच को स्पष्ट किया गया हैं-

सारिणी : माँग, व्यय तथा माँग की लोच

मूल्य (Price)	माँगी गयी मात्रा (Quantity demanded)	कुल व्यय (Total Expenditure)	माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)
3 2 1	250 450 1000	750 900 1000	मूल्य में गिरावट के साथ व्यय में वृद्धि (लोचदार माँग) e > 1
3 2 1	500 750 1500	1500 1500 1500	मूल्य में गिरावट के बाद व्यय स्थिर इकाई लोच e = 1
3 2 1	925 950 1000	2775 1900 1000	मूल्य में गिरावट के बाद व्यय में कमी बेलोच माँग e > 1

2. चाप माँग की लोच (Arc Elasticity of Demand)-

इस विधि का प्रयोग माँग वक्र पर दो बिन्दुओं के बीच की स्थिति में माँग की लोच ज्ञात करने के लिए किया जाता है। दो बिन्दुओं के मध्य माँग वक्र के भाग को 'चाप' कहा जाता है, तथा सम्बन्धित माँग की लोच को 'चाप माँग की लोच' कहा जाता है। इस विधि से माँग की लोच का सूत्र इस प्रकार होगा-

$$ep = \frac{\text{मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

3. माँग की बिन्दु लोच (Point Elasticity of Demand) :

माँग की बिन्दु लोच को चित्र 4.11 की सहायता से दर्शाया गया है।

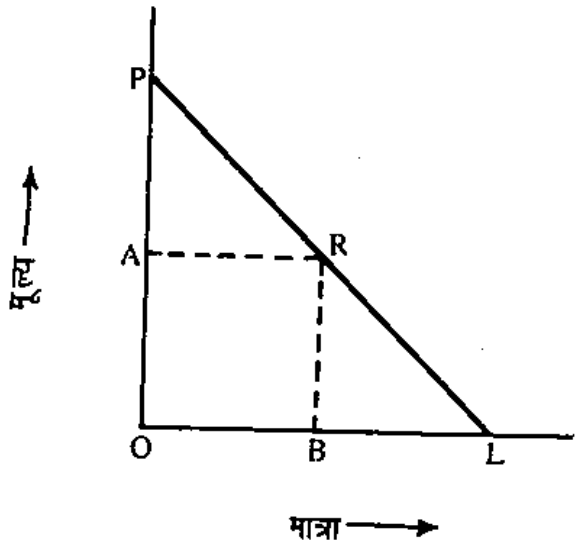

चित्र 4.11

चित्र में PL माँग रेखा एक सीधी रेखा है जिसके बिन्दु R पर हम माँग की लोच ज्ञात करना चाहते हैं। माँग की लोच का सूत्र इस प्रकार है –

$$\frac{BL}{AR} = \frac{RL}{PR} = \frac{\text{माँग वक्र का निचला भाग}}{\text{माँग वक्र का ऊपरी भाग}}$$

चित्र 4.12 में R, माँग रेखा tT का मध्य बिन्दु है।

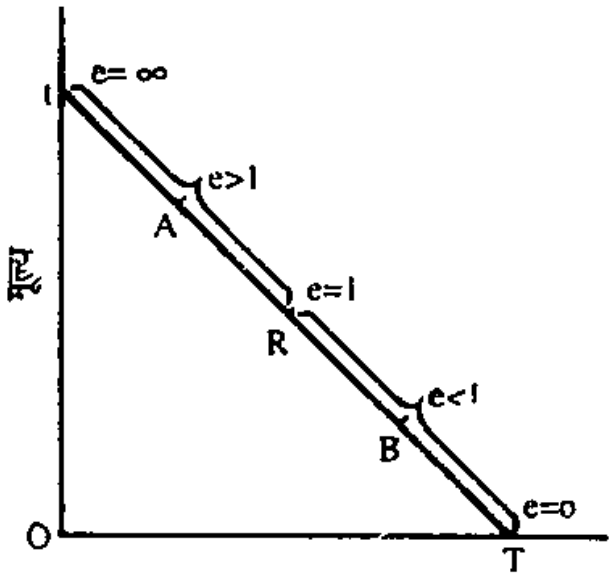

चित्र 4.12

विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की मूल्य लोच की गणना को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

बिन्दु t पर

$$ep = \frac{\text{t बिंदु के नीचे का भाग}}{\text{t बिंदु के उपर का भाग}}$$

अब t, बिन्दु के ऊपर, माँग वक्र का भाग शून्य के बराबर है, तथा t बिन्दु के नीचे माँग वक्र के भाग tT के बराबर है। अतः $ep = \frac{tT}{0} = \infty$ (अनंत)

बिन्दु A पर

$$ep = \frac{AT}{tA}$$

चूँकि बिन्दु A मध्य बिन्दु R के ऊपर स्थित है अतः AT का मान tA से अधिक होगा-

अर्थात $e_p > 1$

बिन्दु R पर

$$e_p = \frac{RT}{tR}$$

चूँकि R माँग रेखा का मध्य बिन्दु है अतः RT=tR अर्थात $e_p=1$

इस प्रकार बिन्दु B पर $e_p = \frac{BT}{tB}$ अर्थात $e_p < 1$ तथा बिंदु T पर $e_p = \frac{0}{tT} = 0$

4.8.1.3 माँग की मूल्य लोच को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting the Price Elasticity of Demand)

इनका अध्ययन हम निम्नांकित शीर्षकों में करेंगें-

1. **वस्तु की प्रकृति (Nature of Goods):** अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुओ की माँग बेलोच होती है, जैसे नमक। आराम सम्बन्धी वस्तुओं की माँग ना तो अधिक लोचदार होती है और ना ही बेलोचदार। विलासिता (Luxury) की वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है।
2. **वस्तु के विभिन्न उपयोग (Different Uses of Goods):** मार्शल के अनुसार यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके अनेक प्रयोग होते हैं तो उसकी माँग लोचदार होगी।
3. **वस्तु के उपयोग का स्थगित किया जाना (Multiple Uses of Goods):** यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके उपयोग को स्थगित किया जा सकता है तो उसकी माँग की लोच अधिक होगी पर यदि वस्तु ऐसी है जिसका प्रयोग स्थगित नहीं किया जा सकता तो उसकी माँग बेलोच होगी।
4. **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि (Availabilty of Substitute Goods):** यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसकी स्थानापन्न वस्तुएं हैं तो उसकी माँग की लोच अधिक होगी पर यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं है तो उसकी माँग की लोच कम होगी।
5. **उपभोक्ता की आय (Income of Consumer):** एक ही वस्तु की माँग की लोच अधिक आय तथा कम आय वाले व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है। धनी व्यक्ति की मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम रहती है, इसलिए वह वस्तु की मूल्य में वृद्धि होने पर भी अधिक मुद्रा/रूपया खर्च करने को तत्पर होता है उसके लिए वस्तु की माँग बेलोच होती है परन्तु निर्धन व्यक्ति के लिए वस्तु की माँग अधिक लोचदार होती है।
6. **वस्तु पर व्यय किया जाने वाला आय का भाग (Portion of Income spend):** यदि आय का अधिकांश भाग किसी वस्तु के प्रयोग पर व्यय होता है तो उस वस्तु की माँग लोचदार होगी पर यदि किसी वस्तु पर आय का अल्प भाग ही व्यय हो रहा हो तो उस वस्तु की माँग बेलोच होगी।

4.8.2 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)

किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्ष परिवर्तन की माप या क्षमता ही माँग की आय लोच है, यदि वस्तु का मूल्य अपरिवर्तित रहे।

$$\text{किसी वस्तु की माँग की आय लोच (ey)} = \frac{\text{वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$ey = -\frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta y}{y}$$

$$ey = -\frac{\Delta q}{q} \times \frac{\Delta y}{y} = \frac{\Delta q}{\Delta y} \times \frac{y}{q}$$

सामान्यता किसी वस्तु की माँग की आय लोच धनात्मक होती है अर्थात उपभोक्ता की आयु में वृद्धि के फलस्वरूप उस वस्तु की माँग में वृद्धि होती है तथा आय में कमी वस्तु की माँग में कमी लाती है पर कुछ स्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें वस्तु की माँग की आय लोच ऋणात्मक भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में माँग एवं आय के परिवर्तन विपरीत दिशा में होंगे। इस प्रकार की स्थिति 'निम्न कोटि' अथवा 'गिफेन वस्तुओं' के सम्बन्ध

में मिल सकती है। इस स्थिति में आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता इन वस्तुओं की कम माँग करता है अथवा इन वस्तुओं पर कम व्यय करता है।

4.8.3 माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)

यदि किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन से किसी अन्य वस्तु की माँग परिवर्तित होती है तो उसे हम परस्पर सम्बन्धित वस्तु कहते हैं। सम्बन्धित वस्तुएं दो प्रकार की हो सकती हैं- स्थानापन्न (Substitute) व पूरक (Complimentary)। यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ने (घटने) पर किसी अन्य वस्तु की माँग बढ़ती (घटती) है तो वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। अर्थात् किसी वस्तु के मूल्य एवं स्थानापन्न वस्तु की माँग में धनात्मक सम्बन्ध होता है। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का मूल्य एवं स्थानापन्न वस्तु की माँग घटती (बढ़ती) है तो वस्तुएं परस्पर पूरक कहलाएगी। किसी वस्तु के मूल्य एवं उसकी पूरक वस्तु की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। माँग की आड़ी लोच इस प्रकार की वस्तुओं की सापेक्षिक सम्बद्धता की माप है।

$$\text{माँग की आड़ी लोच } (e_{AB}) = \frac{\text{A वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{B वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि A तथा B दोनों परस्पर स्थानापन्न हैं तो माँग की आड़ी लोच धनात्मक होगी पर यदि A तथा B एक दूसरे की पूरक वस्तुएं हैं तो माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होगी।

4.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. दिये गए मूल्य पर कोई उपभोक्ता, बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्राएँ क्रय करता है उसे वस्तु की .....कहते हैं।
2. मार्शल के अनुसार वस्तु की माँग तथा वस्तु के बीच कैसा सम्बन्ध पाया जाता है?
3. माँग वक्र का नीचे दाहिनी ओर गिरना क्या दर्शाता हैं?
4. गिफेन वस्तुओं के सम्बन्ध में मूल्य - माँग सम्बन्ध कैसा होता हैं?
5. एक सीधी रेखा के रूप में माँग वक्र के मध्य बिन्दु पर माँग की ..... लोच होगी।

4.10 सारांश (Summary)

उपरोक्त इकाई में सर्वप्रथम माँग को परिभाषित करने के पश्चात् माँग के नियम, माँग की अनुसूची, व्यक्तिगत माँग वक्र, बाजार माँग वक्र एवं माँग की लोच की व्याख्या की गई है। वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा वस्तु के मूल्य के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है जिसे माँग का नियम कहते हैं। माँग अनुसूची किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची है जो विभिन्न मूल्यों पर माँगी या क्रय की जाती है। जब हम समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी मूल्य पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची तैयार करते हैं तो उसे व्यक्तिगत माँग अनुसूची कहते हैं। माँग वक्र का स्वरूप ऊपर से नीचे गिरता हुआ होता है, इसके कारणों को भी इकाई में स्पष्ट किया गया है। माँग वक्र के नीचे दाहिने ओर गिरने का कारण सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है जो माँग के नियम का आधार है। माँग में परिवर्तन अर्थात् माँग में विस्तार तथा संकुचन एवं माँग में वृद्धि एवं कमी को भी व्याख्यित किया गया है और अंत में माँग के निर्धारक तत्वों की व्याख्या की गई है। किसी वस्तु के मूल्य में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँगी गयी मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया की माप ही माँग की लोच है। मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में परिवर्तन कितना होगा, किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर माँग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। यह क्षमता ही माँग की मूल्य लोच है। वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले

परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है- पूर्णतया लोचदार माँग, पूर्णतया बेलोच माँग और अधिक लोचदार माँग। माँग की मूल्य लोच के साथ ही माँग की आय लोच एवं माँग की आड़ी लोच का भी वर्णन किया गया है।

4.11 शब्दावली (Glossary)

- **माँग (Demand) -** किसी दिए गए समय में दिए हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता बाजार में उपलब्ध किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्राएँ क्रय करता है उसे उस वस्तु की माँग कहते हैं।
- **माँग का नियम (Law of Demand) -** वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा उसके निर्धारक तत्वों के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध को माँग का नियम कहते हैं।
- **स्थानापन्न वस्तुएँ (Substitute Goods)** - जब एक वस्तु के मूल्य में कमी होने से दूसरी वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी हो जाए तो ऐसी वस्तुएँ परस्पर स्थानापन्न होंगी।
- **पूरक वस्तुएँ (Complementary Goods) -** जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मात्रा में वृद्धि लाती हैं तो ऐसी वस्तुएँ एक दूसरे की पूरक होंगी।
- **निम्न कोटि की वस्तुएँ (Inferior Goods) -** ये वह वस्तुएँ हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ घटती जाती है।
- **माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand) -** वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया माँग की लोच कहलाती है। इसे मूल्य - लोच भी कहते हैं।
- **माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand) -** उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन होने से वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन को माँग की आय लोच कहते है।
- **माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand) -** अन्य वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन होने के कारण उस वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन को माँग की आड़ी लोच कहते है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. माँग 2. विपरीत 3. सीमान्त उपयोगिता ह्रास
4. धनात्मक 5. एक

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

4.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माँग वक्र ऊपर से नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ क्यों होता है? व्याख्या कीजिए।
2. माँग के नियम के विभिन्न रूपों की व्याख्या कीजिए।
3. माँग में परिवर्तन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
4. माँग वक्र क्या है? माँग को निर्धारित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।
5. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं? इस बात को सिद्ध कीजिए कि एक माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न होती है?
6. माँग की कीमत लोच की श्रेणियों को स्पष्ट कीजिए। माँग की कीमत लोच की माप करने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?

इकाई – 5 उपभोक्ता बचत
(Consumer Surplus)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)
5.2 उद्देश्य (Objectives)
5.3 उपभोक्ता की बचत के विभिन्न दृष्टिकोण (Various Approaches to Consumer Surplus)
5.4 मार्शल का दृष्टिकोण (Marshall's Approach)
5.4.1 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा (Concept of Consumer Surplus)
5.4.2 मार्शल के दृष्टिकोण की आलोचनाएँ (Criticisms of Marshall's Approach)
5.5 हिक्स का दृष्टिकोण (Hicks's approach)
5.5.1 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा (Concept of Consumer Surplus)
5.5.2 मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव (Effects of Changes in Price and Income on Consumer Surplus)
5.6 उपभोक्ता की बचत का महत्व (Importance of Consumer Surplus)
5.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
5.8 सारांश (Summary)
5.9 शब्दावली (Glossary)
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
5.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
5.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

कल्याणकारी अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का विचार बहुत महत्वपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत (Consumer Surplus) के सिद्धान्त को समझ सकेंगे। इस इकाई में आप वस्तु की उपयोगिता के संख्यात्मक (Cardinal) और क्रमवाचक (Ordinal) दोनों मापों के दृष्टिकोणों से अवगत हो जाएगें।

5.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ उपभोक्ता की बचत की व्याख्या एवं बचत का रेखाचित्रीय प्रदर्शन कर सकेंगे।
- ✓ उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त का आधुनिक रूप समझ सकेंगे।
- ✓ मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव को जान सकेंगे।
- ✓ उपभोक्ता बचत के सिद्धान्त के महत्व को समझ सकेंगे।

5.3 उपभोक्ता की बचत के विभिन्न दृष्टिकोण (Various Approaches to Consumer Surplus)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्रेय प्राय: **डॉ. मार्शल** (Marshall) को दिया जाता है लेकिन वास्तविकता यह है कि इस सिद्धान्त की कल्पना प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री **विलियम स्टेनले जैवन्स** (William Stanley Jevons) तथा फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **ड्युपिट** (Dupuit) ने 1844 ई. में की थी। **मार्शल** ने अपनी पुस्तक **'Pure Theory of Domestic Values'** शीर्षक पुस्तक में 1879 ई. में इस प्रत्यय का पूर्ण रूप से विश्लेषण किया था और उन्होंने इसका नाम **'उपभोक्ता का अधिशेष (Consumer's Surplus)'** रखा था। तत्पश्चात् मार्शल ने **'Principles of Economics'** शीर्षक अपनी द्वितीय पुस्तक में इस प्रत्यय की पूर्ण रूप से व्याख्या की थी और इसको **'उपभोक्ता की बचत (Consumer's Saving)'** का नाम दिया था।

जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) ने 'Review of Economic Studies' में प्रकाशित एक लेख माला में उदासीनता वक्र (Indifference Curve) तकनीक की सहायता से वस्तु की उपयोगिता के क्रमवाचक (Ordinal) माप पर आधारित 'उपभोक्ता बचत' की अवधारणा की व्याख्या की है।

उपभोक्ता के बचत सिद्धान्त की व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है-

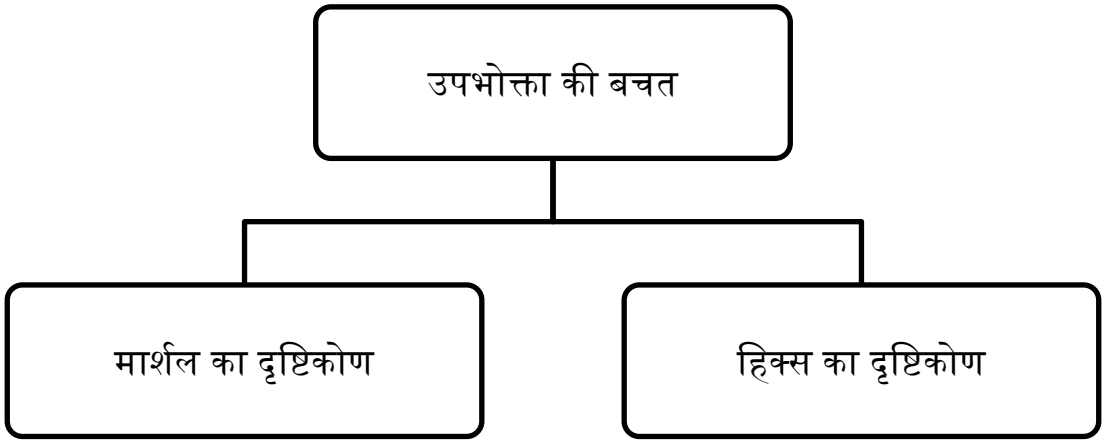

5.4 मार्शल का दृष्टिकोण (Marshall's Approach)

5.4.1 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा (Concept of Consumer Surplus)

मार्शल (Marshall) ने उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का प्रतिपादन दैनिक जीवन में होने वाले इस अनुभव पर किया कि प्रायः जब हमें किसी वस्तु के उपभोग की अत्यन्त तीव्र इच्छा रहती है अथवा जब कोई वस्तु कम मात्रा में उपलब्ध रहती है तो हम उस वस्तु को क्रय करने के लिए उससे अधिक पैसा खर्च करने के लिए तत्पर (ready) हो जाते हैं जितने मूल्य में वह वस्तु हमें मिल जाती है इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की है : ***"एक वस्तु के बिना रहने की अपेक्षा एक उपभोक्ता वास्तव में भुगतान की जाने वाली कीमत के ऊपर जितनी आधिक्य कीमत भुगतान करने का इच्छुक होगा, इस अतिरेक संतोष की आर्थिक माप है.. इसे उपभोक्ता की बचत कहा जा सकता है / (The excess of price which a consumer would be willing to pay rather than go without the thing over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus of satisfaction... It may be called consumer's surplus)"*** अर्थात् किसी वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता उसके लिए जो कीमत देने को तत्पर रहता है तथा जो कीमत वह वास्तव में अदा करता है। इन दोनों का अंतर ही उपभोक्ता की बचत है।

मान लीजिए आपको बहुत तेज प्यास लगी है और आप एक गिलास पानी के लिए 5 रूपए तक देने के लिए तैयार हैं, पर उसी समय यदि एक गिलास पानी केवल 50 पैसे में मिल जाए तो 5 रूपए जो आप देने के लिए तैयार थे तथा 50 पैसा जो आप वास्तव में देते हैं, इन दोनों का अन्तर 4.50 रूपए, उपभोक्ता की बचत कहलाएगी।

उपभोक्ता बचत की अवधारणा **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम** (Law of Diminishing Marginal Utility) पर आधारित है। हम जानते हैं कि किसी वस्तु का स्टॉक हमारे पास जितना ही कम होगा, हम उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक मूल्य देने के लिए तत्पर होंगे क्योंकि वस्तु की वह इकाई हमारे लिए उतनी ही अधिक उपयोगी होगी और जैसे-जैसे हम किसी वस्तु को अधिक प्राप्त करते जाएगे, उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती जाएगी। किसी वस्तु के बाजार मूल्य पर उस वस्तु की उपयोगिता का **आधिक्य** (Surplus) ही उपभोक्ता की बचत है अर्थात् कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए जितना मूल्य देने को तत्पर होगा वह उस वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता के बराबर होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बदले उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक मूल्य देने को तैयार नहीं होगा और दूसरी ओर वास्तव में जो मूल्य वह उस वस्तु के लिए देता है वही मूल्य उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उसका त्याग हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी गई उपयोगिता का अन्तर ही **उपभोक्ता की बचत** है।

सूत्र रूप में

$$\text{उपभोक्ता की बचत} = \text{सीमान्त उपयोगिता का योग} - (\text{खरीदी गई वस्तुओं की संख्या} * \text{कीमत})$$

$$Consumer\ Surplus = Sum\ of\ Marginal\ Utility - (number\ of\ purchased\ items * Price)$$

उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक (Positive) होती है, कभी भी ऋणात्मक (Negative) नहीं क्योंकि उपभोक्ता, उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देता हैं।

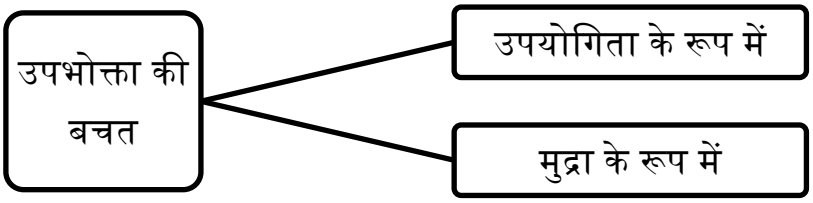

1. उपयोगिता के रूप में उपभोक्ता की बचत (consumer surplus in the form of utility)- उपयोगिता के रूप में उपभोक्ता की बचत की धारणा को चित्र 5.1 में प्रदर्शित किया गया हैं। चित्र में प्रत्येक इकाई से प्राप्त उपयोगिता विभिन्न आयतों के रूप में व्यक्त है। कुल उपयोगिता OABCDEFGHIJK क्षेत्र तथा त्यागी गई उपयोगिता JK गैर-छायांकित (non shaded) भाग के रूप में प्रदर्शित है। दोनों का अन्तर **उपभोक्ता की बचत** है जो छायांकित भाग के रूप में प्रदर्शित है।

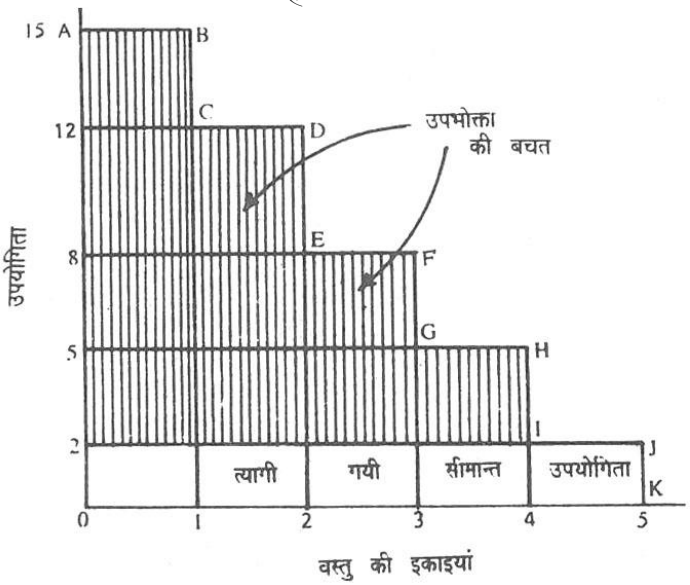

चित्र 5.1

सूत्र रूप में

उपभोक्ता की बचत

= वस्तु से मिलने वाली कुल उपयोगिता

– उस वस्तु पर व्यय किए हुए मुद्रा/द्रव्य के रूप मे कुल उपयोगिता का त्याग

2. मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत (consumer surplus in the form of Money)- मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत की माप को चित्र 5.2 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में खींची गयी DD रेखा वस्तु की विभिन्न इकाईयों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता (MU) पर आधारित **'व्यय की तत्परता (readiness to spend)'** प्रदर्शित करती हैं। चूँकि विभिन्न इकाईयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता (MU) गिरती हुई होती है, इसलिए यह नीचे गिरती हुई है। इस रेखा के विभिन्न बिन्दु यह प्रदर्शित करते हैं कि किसी वस्तु की विभिन्न इकाईयों के लिए कोई उपभोक्ता कितना मूल्य देने के लिए तैयार है।

वस्तु की OM इकाईयों से उपभोक्ता द्वारा प्राप्त कुल तुष्टिगुण बिंदु M तक सीमांत तुष्टिगुण वक्र के अंतर्गत क्षेत्रफल के बराबर होगा अर्थात चित्र 5.2 में OM इकाईयों का कुल तुष्टिगुण ODEM के बराबर है। अन्य शब्दों में, वस्तु की OM इकाईयों के लिए उपभोक्ता ODEM मात्रा के बराबर मुद्रा देने को तैयार होगा। किन्तु मूल्य (OP) के दिए होने पर वस्तु की OM इकाईयों के लिए उपभोक्ता वास्तव में OPEM के बराबर ही मुद्रा भुगतान करेगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ODEM – OPEM = DPE के बराबर अतिरिक्त तुष्टिगुण प्राप्त करता है।

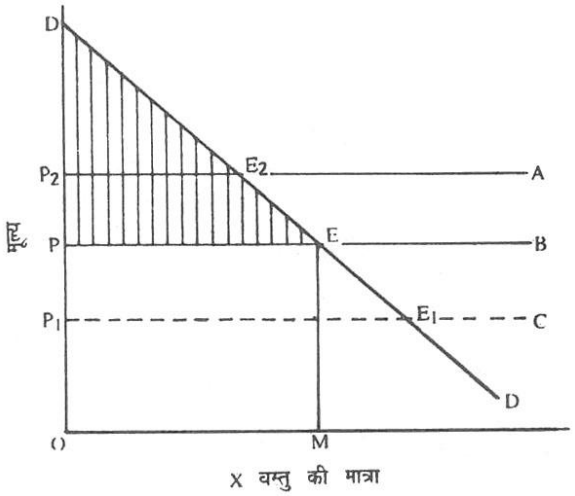

चित्र 5.2

चूँकि उपभोक्ता की बचत मूल्य के ऊपर निर्भर करती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत मूल्य के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होगी। यदि मूल्य घटकर OP_1 हो जाए तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर $DP_1 E_1$ हो जाएगी यदि मूल्य बढ़कर OP_2 हो जाए तो उपभोक्ता की बचत घटकर $DP_2 E_2$ हो जाएगी।

सूत्र रूप में

उपभोक्ता की बचत
= मुद्रा/द्रव्य की वह मात्रा जो उपभोक्ता देने के लिए तत्पर है
– वस्तु के क्रय पर खर्च की गई मुद्रा/द्रव्य की कुल मात्रा

5.4.2 मार्शल के दृष्टिकोण की आलोचनाएँ (Criticisms of Marshall's Approach)

इस सिद्धान्त की प्रायः जो आलोचनाएँ मिलती हैं उनमें से कुछ तो ऐसी हैं जो यह मानती हैं कि यह एक सैद्धान्तिक सत्य नहीं है। इस सिद्धान्त की आलोचनाओं का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के रूप में किया जा सकता है।

1. **वस्तु की उपयोगिता का माप सम्भव नहीं (Impossible to measure the utility of a commodity)-** मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त की नींव ही इस मान्यता पर खड़ी की गई है कि वस्तु की उपयोगिता को मापा जा सकता है। जबकि वास्तविक वस्तुस्थिति यह है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है। इसे मुद्रा के द्वारा मापना सर्वथा असम्भव है।
2. **मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बदलती रहती है (Marginal utility of money keeps changing)-** उपयोगिता की बचत को मापते समय मार्शल ने यह मान लिया कि मुद्रा से मिलने वाली उपयोगिता में

सम्पूर्ण विनिमय-क्रिया की अवधि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं क्योंकि जैसे-जैसे किसी वस्तु का क्रय बढ़ता जाता है, उपभोक्ता के पास मुद्रा की मात्रा कम होती जाती है परिणामस्वरूप मुद्रा की उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है।

3. **स्थानापन्न वस्तुओं के कारण कठिनाई (Difficulty due to substitute goods)-** मार्शल ने यह भी मान्यता रखी कि वस्तुएँ प्रतिस्थापित नहीं की जा सकतीं परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा होना संभव नहीं है। इन वस्तुओं के कारण उपभोक्ता पर मूल्य में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन ठीक-ठीक नहीं हो पाता। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की ठीक-ठीक माप सम्भव नहीं है।
4. **माँग की सारिणी का अनिश्चित होना (Uncertainty of demand schedule)-** उपभोक्ता की बचत का अनुमान माँग-रेखा (Demand Curve) के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि माँग की सारिणी (schedule) निश्चित हो। आलोचकों का यह कहना है कि माँग की सारिणी केवल काल्पनिक होती है तथा इसके सम्बन्ध में अनुमान लगाना सम्भव नहीं है।
5. **उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नता (Variation in consumer's income and tastes)-** आलोचकों का यह भी कहना है कि विभिन्न उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नता होती है जिसके कारण एक ही वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न हुआ करती है।
6. **वस्तुओं की उपयोगिता मापने योग्य नहीं है (Utility of goods is non measurable)-** जीवन रक्षक, परम्परागत तथा प्रतिष्ठात्मक (prestigious) वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत का माप सम्भव नहीं है क्योकि इस प्रकार की वस्तुओं की उपयोगिता अमापनीय होती है।
7. **उपभोक्ता की बचत परिवर्तित होती रहती है (consumer surplus keep changing)-** कुछ आलोचकों का यह मत है कि उपभोक्ता की बचत बाजार-मूल्य (market value) पर आधारित है परन्तु बाजार मूल्य में बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है।
8. **वस्तुओं के क्रय की वृद्धि के साथ-साथ पहले क्रय की गई इकाइयों की उपयोगिता में कमी (Decrease in utility of previously purchased units with increase in purchases of goods)-** वस्तुओं के क्रय की वृद्धि के साथ-साथ पहले क्रय की गई इकाइयों की उपयोगिता में कमी होना अथार्त जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास वस्तुओं की मात्रा बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे पहले क्रय की गई वस्तुओं की उपयोगिता में कमी होती जाएगी।
9. **काल्पनिक तथा अव्यावहारिक विचार (Imaginary and impractical)- निकलसन** (Nicholson) ने इस सिद्धान्त को एक काल्पनिक तथा अव्यावहारिक सिद्धान्त कहा। उनके मत में यह सिद्धान्त एक कोरी कल्पना है तथा जिसका व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

सैम्यूल्सन (Samuelson) के अनुसार ***"गणितीय पहेली के आकर्षण के साथ यह ऐतिहासिक और सैद्धांतिक रूचि का विषय है। अच्छा हो कि अर्थशास्त्री इसे छोड़ दे। यह ऐसा साधन हैं जिसे वही प्रयोग कर सकता है जो इसके प्रयोग के बिना रह सकता है और सभी ऐसा नहीं कर सकते। (The subject is of historical and doctrinal interest with a limited amount of appeal as a mathematical puzzel. The economist had best dispense with it. It is a tool which can be used only by one who can get along without its use, and not be all such.)"*** **श्रीमती जोन रॉबिन्सन** (Mrs. Joan Robinson) ने इसे '**उपयोगिताहीन अवधारणा (Useless Concept)**' कहा है। पर विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद भी **प्रो. पीगू** (Prof. Pigou) ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया।

5.5 हिक्स का दृष्टिकोण (Hicks's Approach)

5.5.1 उपभोक्ता की बचत की अवधारणा (Concept of Consumer Surplus)

आधुनिक अर्थशास्त्री **जे. आर. हिक्स** (J. R. Hicks) ने अनधिमान वक्र के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा मार्शल के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन जहाँ तक उपभोक्ता की बचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है।

जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) ने क्रमवाचक (Ordinal) उपयोगिता विश्लेषण को अनधिमान वक्र तकनीक की सहायता से माप कर उपभोक्ता की बचत के विचार को पुनः प्रतिष्ठित किया। अनधिमान वक्र विधि उपयोगिता की गणनावाचक मापनीयता की मान्यता को स्वीकार नहीं करती और ना ही यह कल्पना करती है कि मुद्रा का सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहता है। तथापि, हिक्स इन सामान्य मान्यताओं के बिना अपनी अनधिमान वक्र विधि की सहायता से उपभोक्ता की बचत को मापने में समर्थ हुए। उपभोक्ता की बचत के विचार की मुख्यतया इस आधार पर आलोचना की गयी कि इसे गणनावाचक उपयोगिता के रूप में मापना कठिन है।

1. मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की माप : दिए गए चित्र 5.3 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। इस चित्र में IC_1 मुद्रा (Y) तथा वस्तु (X) के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि उपभोक्ता वस्तु की ON मात्रा खरीदना चाहता है तो वह IC_1 वक्र पर T बिन्दु पर होगा, यह T बिन्दु यह प्रदर्शित करता है कि उपभोक्ता ON वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए PF या TK मुद्रा देने को तैयार है।

उपभोक्ता की बचत को ज्ञात करने के लिए अब हमें यह जानना है उसे वास्तव में कितनी मुद्रा देनी पड़ती है। यह चित्र में PL बजट रेखा प्रदर्शित है। यह IC_2 वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई मूल्य प्रदर्शित करता है। अब यदि दिए गए चित्र में उपभोक्ता ON वस्तुएं खरीदना चाहे तो बजट-रेखा के आधार पर उसकी संतुलन IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगी। वह ON वस्तुओं के लिए OC मुद्रा देगा।

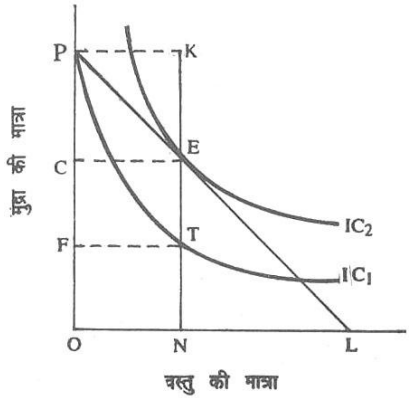

चित्र 5.3

स्पष्ट है कि पहले वह PF देने के लिए तत्पर था जबकि अब उसे केवल PC देना पड़ रहा है। अतः PF - PC = CF मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई। यहाँ एक बात और सामने आती है, और

वह यह कि मूल्य के ज्ञान के अभाव में वह IC_1 पर है जबकि मूल्य के ज्ञान के बाद IC_2 पर हैं IC_2 का सन्तुष्टि का स्तर निश्चय ही IC_1 के संतुष्टि के स्तर से अधिक हैं दोनों के सन्तुष्टि के स्तरों के बीच का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।

2. वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत की माप : चित्र 5.4 में X अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। उपभोक्ता AC मुद्रा व्यय करना चाहता है तथा वह IC_1 के D बिन्दु पर है जिस पर वह AC मुद्रा के बदले OM वस्तुएँ प्राप्त करने को सोचता है। परन्तु जब वह बाजार में जाता है तब उसे AB बजट-रेखा ज्ञात होती है। ऐसी परिस्थिति में वह AC मुद्रा से IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगा अर्थात अब जहाँ वह AC से OM वस्तुएँ खरीदने को तत्पर था अब उसे बाजार में ON वस्तुएँ मिल जाती हैं। फलस्वरूप ON- OM = MN वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई।

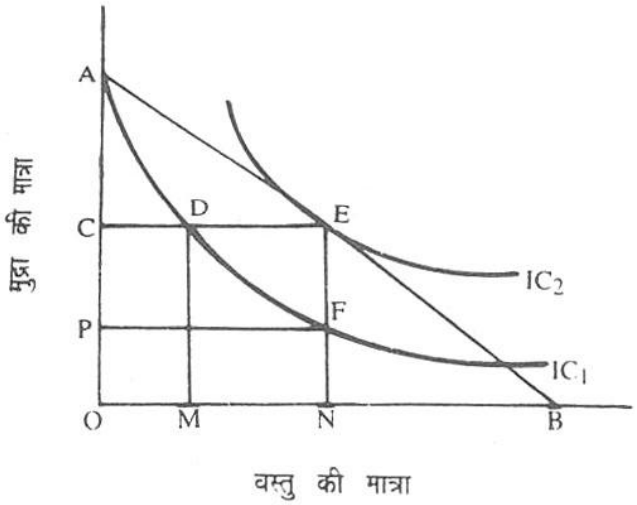

चित्र 5.4

5.5.2 मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव (Effects of Changes in Price and Income on Consumer Surplus)

वस्तु के मूल्य तथा आय में परिवर्तन का क्या प्रभाव उपभोक्ता की बचत पर पड़ता है इसे निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

1. मूल्य में कमी पर आय स्थिर रहे (Income remains stable even if prices fall)- चित्र 5.5 में आधार अक्ष पर (On base axis) वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर (on Vertical axis) आय की मात्रा प्रदर्शित है। मूल बजट-रेखा ST है तथा उपभोक्ता I_2 वक्र के E_2 बिन्दु पर है तथा उपभोक्ता की बचत E_1 E_2 या Y_1Y_2 है । यदि मूल्य गिर जाए जैसा ST_1 बजट-रेखा से स्पष्ट है तो उपभोक्ता अब उसी आय से अधिक वस्तुएं क्रय कर सकेगा। फलस्वरूप वह I_3 वक्र के E_3 बिन्दु पर है। फलस्वरूप अब उपभोक्ता की बचत बढ़कर E_1 E_3 या Y_1Y_2 हो जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे मूल्य में कमी होती जाएगी, उपभोक्ता की बचत में वृद्धि होती जाएगी। इसी प्रकार यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि जैसे-जैसे मूल्य में वृद्धि होती जाएगी उपभोक्ता की बचत में कमी होती जाएगी। चित्र 5.5 में यदि हम ST_1 को मूल मूल्य रेखा मान लें तथा ST_1 बढ़ा हुआ मूल्य प्रदर्शित करे तो देखा जा सकता है कि मूल्य रेखा ST होते ही उपभोक्ता की बचत कम हो जाएगी।

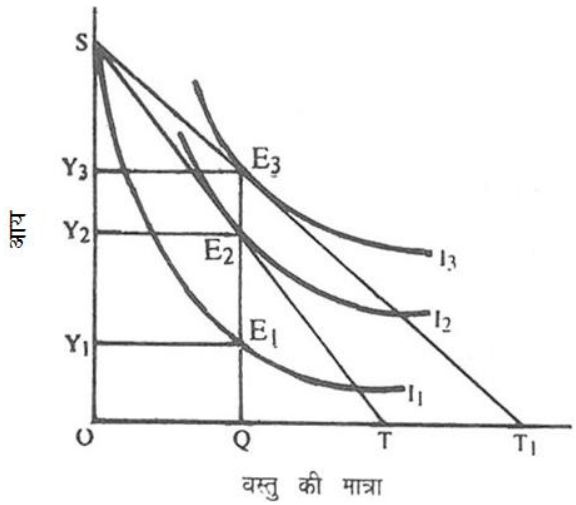

चित्र 5.5

2. आय में वृद्धि पर वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहे (The price of goods remains the same as income increases.)- चित्र 5.6 में आधार अक्ष पर (On base axis) वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर (on Vertical axis) मुद्रा के रूप में आय प्रदर्शित है। मूल अवस्था में उसकी आय OS है। वह ST बजट-रेखा पर है जो IC_2 के E2 बिन्दु पर स्पर्श करती है। उपभोक्ता की बचत E_1E_2 है। परन्तु यदि उसकी आय OS से बढ़कर OS_1 हो जाए तो नयी बजट-रेखा S_1T_1 होगी जो ST के समानान्तर है तथा यह प्रदर्शित करती है कि वस्तु का मूल्य यथास्थिर है। आय में वृद्धि होने के कारण, अब उसके लिए IC_1 वक्र बेकार हो जाता है और अब वह IC_3 के आधार पर अपनी उपभोक्ता की बचत का विश्लेषण करता है। आय में वृद्धि के कारण अब वह IC_4 के E_4 बिंदु पर संतुलन में होगा तथा उपभोक्ता की बचत अब E_3E_4 होगी। यह E_3E_4 बचत इससे पहली बचत E_1E_2 से अधिक होगी या कम होगी या बराबर होगी, यह सब कुछ IC_1 तथा IC_2 के ढाल पर ही निर्भर करेगा।

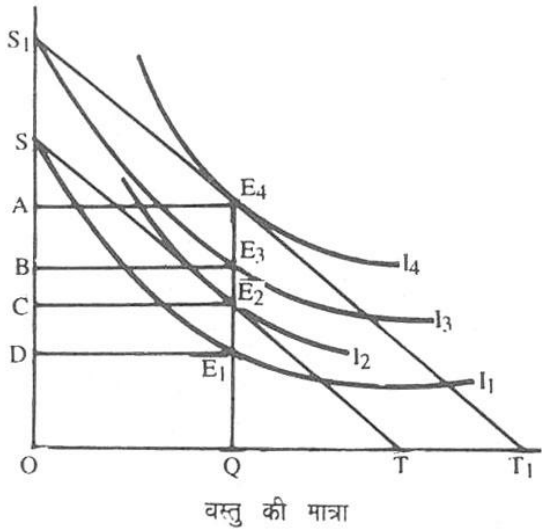

चित्र 5.6

5.6 उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व (Importance of Consumer Surplus)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता के बचत-सिद्धान्त की आलोचना की। **निकलसन** (Nicholson) की आपत्ति का प्रत्युत्तर देते समय **मार्शल** (Marshall) द्वारा दिए गए जिन उदाहरणों की चर्चा की गई है उससे इस सिद्धान्त के व्यावहारिक महत्व की झलक मिलती है। **प्रो. टामस** (Prof. Tomas) के अनुसार उपभोक्ता की बचत का विचार वास्तविकता से सम्बन्ध रखता है यद्यपि इसको मापने की पद्धति बिल्कुल काल्पनिक है, लेकिन हम सभी इसका अनुभव प्रतिदिन के व्यवहार में अनुभव करते हैं। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के महत्व का अध्ययन दिया जा सकता है:

(क) सैद्धान्तिक महत्व (Theoretical Importance)- इस सिद्धान्त का सैद्धान्तिक महत्व यह है कि इसके द्वारा किसी उपयोग-मूल्य (use value) तथा विनियम-मूल्य (Exchange Value) का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(ख) व्यावहारिक महत्व (Practical Importance) उपभोक्ता की बचत का व्यावहारिक महत्व उसके सैद्धान्तिक महत्व की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं।

1. **विभिन्न देशों तथा स्थानों और भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना (Comparison of economic conditions in different countries and places and at different times)-** इस सिद्धान्त की सहायता से यह तुलना सरलतापूर्वक की जा सकती है। उपभोक्ता की बचत के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी देश में आर्थिक विकास अधिक है तथा किसी देश में कम, किस जगह जीवन-स्तर नीचा है तथा किस जगह ऊँचा। जो देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत होगा, जहाँ सुविधाएं अधिक होगी वहाँ दूसरे देश की अपेक्षा जिसमें सुविधाएं ना हों, समान आय से अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी।
2. **राजस्व तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में महत्व (Importance in determining revenue and economic policy)-** राजस्व के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का प्रयोग कर नीति (Taxtation Policy) के निर्धारण तथा विभिन्न उद्योगों को दिए जाने वाले अनुदानों (subsidies) के सम्बन्ध से किया जा सकता है। सरकार को कर लगाते समय इस दिशा में दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहली बात यह है कि उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाया जाए जिनसे उपभोक्ता बचत मिल रही हो और उपभोक्ता का आकर्षण कर (Tax) लगने के फलस्वरूप मूल्यों में हुई वृद्धि के बाद भी उपभोक्ता उस वस्तु के लिए बना रहे। दूसरी बात यह है कि सरकार को उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना चाहिए जिन पर कर के कारण होने वाले उपभोक्ता बचत के त्याग से अधिक आय सरकार को प्राप्त हो तभी सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा।
3. **एकाधिकार के मूल्य-निर्धारण में सहायक (Helpful in pricing in monopoly)-** मूल्य निर्धारण करते समय एकाधिकारी वही मूल्य रखता है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो। मूल्य निश्चित करते समय उस वस्तु से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत का ध्यान रखना चाहिए। उसे मूल्य ऐसा रखना चाहिए जिसमें उपभोक्ता को कुछ-न-कुछ बचत मिलती रहे जिससे वह उपभोक्ता उस वस्तु को खरीदने के लिए तत्पर रहे।
4. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सिद्धान्त का महत्व (Importance of Theory in International Trade)- प्रो. मार्शल** (Prof. Marshall) ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में उपभोक्ता के बचत

सिद्धान्त के महत्व पर बल दिया। इस सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि जो व्यय हम किसी वस्तु को अपने देश में बनाने में करते तथा जो व्यय हम उसी वस्तु को दूसरे देश से माँगने पर करते, इन दोनों का अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उपभोक्ता की बचत कहलाएगी। इस प्रकार जिस वस्तु के आयात से उपभोक्ता की बचत अधिक होगी उसी वस्तु का आयात होगा अन्यथा नहीं। यह बचत जिस देश में जितनी अधिक होती है उतना ही वह देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभान्वित होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

5.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. उपभोक्ता की बचत की धारणा का सर्वप्रथम प्रयोग ..... ने किया।
2. उपभोक्ता की बचत की धारणा..... नियम पर आधारित है।
3. मूल्य में कमी के बाद उपभोक्ता की बचत ..... ।
4. किसी वस्तु को मिलने वाली उपयोगिता तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी गई..... का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।
5. उपभोक्ता की बचत सदैव ..... होगी।

5.8 सारांश (Summary)

उपरोक्त इकाई में सर्वप्रथम मार्शल द्वारा उपभोक्ता की बचत की धारणा को व्याख्यित करने का प्रयास किया गया हैं तत्पश्चात् उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है जिसमें उपयोगिता के रूप में तथा मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत को सम्मिलित किया गया है। अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है । **मार्शल** (Marshall) ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की है ***"किसी वस्तु को बिना प्राप्त किए हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य, जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने के लिए तैयार रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।"***उपभोक्ता बचत की धारणा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक होगी, कभी ऋणात्मक नहीं क्योंकि उपयोगिता से अधिक मूल्य वह देगा ही नहीं। मार्शल के उपभोक्ता की बचत सिद्धांत की आलोचना के पश्चात् उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के आधुनिक रूप की व्याख्या की गई है। आधुनिक अर्थशास्त्री **हिक्स** अनधिमान वक्र (IC) के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा **मार्शल** के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। परन्तु जहाँ तक उपभोक्ता की बचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी आय की बचत के रूप में करना चाहिये। मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव तथा उपभोक्ता की बचत के सिद्धांत का महत्व को भी इकाई में स्पष्ट किया गया है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

5.9 शब्दावली (Glossary)

- **उपभोक्ता की बचत (Consumer Surplus)-** किसी वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा वह मूल्य जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने को तत्पर रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1.मार्शल 2. समसीमान्त उपयोगिता 3. बढ़ेगी

4. उपयोगिता 5. धनात्मक,

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

5.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

5.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. उपभोक्ता की बचत से आप क्या समझते हैं? इसके मापने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?
2. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा स्पष्ट कीजिए तथा आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व बताइए।
3. उपभोक्ता की बचत के विचार का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. उपभोक्ता की बचत को मापने में कौन सी कठिनाईयाँ होती है? इसके माप की हिक्स विधि का वर्णन कीजिए।
5. उपभोक्ता की बचत के स्वभाव की व्याख्या कीजिए तथा सम-सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के साथ इसका सम्बन्ध बताइए।

इकाई – 6 अनधिमान वक्र विश्लेषण
(Indifference Curve Analysis)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 उद्देश्य (Objectives)

6.3 अनधिमान वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)

6.3.1 अनधिमान वक्र का अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप (Meaning, definitions and nature of Indifference Curve)

6.3.2 अनधिमान वक्र की मान्यताएं (Assumptions of Indifference Curve)

6.4 अनधिमान वक्रों की विशेषतायें (Characteristics of Indifference Curve)

6.5 उपभोक्ता का सन्तुलन (Consumer's Equilibrium)

6.6 अनधिमान वक्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Indifference Curve)

6.6.1 अनधिमान वक्र विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता (Properties of Indifference Curve Analysis and its superiority)

6.6.2 अनधिमान वक्र विश्लेषण के दोष (Demerits of Indifference Curve Analysis)

6.6.3 अनधिमान वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष (Conclusion of Indifference Curve Analysis)

6.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

6.8 सारांश (Summary)

6.9 शब्दावली (Glossary)

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

6.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन से आप यह बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है और कोई उपभोक्ता सन्तुलन की दशा में कैसे पहुँचता है।

अनधिमान वक्र विश्लेषण के अध्ययन में आप स्वयं एक उपभोक्ता है। क्या आप जानना नहीं चाहेंगे कि किसी वस्तु के उपभोग से उपयोगिता मिलती है या नहीं? अगर मिलती है तो कितनी मिलती है? यहां उपयोगिता का संख्यात्मक मापन अगर संभव नहीं हो तो उसका विकल्प क्या होगा? इस रूप में यह अर्थशास्त्र सिद्धान्त का रूचिकर एवं सरस विषय है। इस विश्लेषण के द्वारा आप जान सकेंगे कि उपभोक्ता सन्तुलन में कैसे आएगा और अनधिमान वक्र कैसे एवं किस तरह बनेगा और सबसे महत्वपूर्ण इसका स्वरूप कैसा होगा?

6.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ अनधिमान वक्र विश्लेषण, उद्गम विकास को समझ सकेंगे।
- ✓ अनधिमान वक्र का अर्थ, मान्यताएं एवं परिभाषा को समझ सकेंगे।
- ✓ अनधिमान वक्र विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- ✓ अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन समझ सकेंगे।
- ✓ अनधिमान वक्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

6.3 अनधिमान वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)

उपभोक्ता के संतुलन के लिए **प्रो. मार्शल** (Prof. Marshall) द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण उपयोगिता के 'संख्यात्मक दृष्टिकोण' (Cardinal Approach) पर आधारित है जिसके अनुसार उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता का ठीक-ठीक माप करना संभव है। मार्शल के विचार के अनुसार उपयोगिता को मुद्रा रूपी मापदण्ड से मापा जा सकता है परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता के संख्यात्मक दृष्टिकोण को अयथार्थवादी (unrealistic) मानते हैं।

6.3.1 अनधिमान वक्र का अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप (Meaning, definitions and nature of Indifference Curve)

यहाँ अब हम आपको **हिक्स (Hicks)** और **एलन (Allen)** के प्रमुख अवधारणा अनधिमान का अर्थ समझायेंगे। अनधिमान वक्र वह वक्र है जिस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है। इस वक्र पर अंकित प्रत्येक संयोग उपभोक्ता की दृष्टि में न तो एक दूसरे से अच्छे होते है न ही खराब। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समान अनुराग प्रदर्शित करने वाले वक्र अनधिमान वक्र कहलाते हैं। चूंकि इस वक्र पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के सभी संयोग समान संतुष्टि (या उपयोगिता) प्रदान करने वाले होते हैं अतः इन वक्रों को सम संतुष्टि वक्र (IsoSatisfaction Curve) भी कहा जाता है। अतः इसे 'तटस्थता वक्र' या 'उदासीनता वक्र' भी कहा जाता है।

आइए, अनधिमान वक्र की प्रमुख परिभाषाओं पर दृष्टि डालते हैं।

जे.के. ईस्थम (J.K. Eastham) के अनुसार ***'यह मात्राओं के जोड़ों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का पथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन होता है। इसलिए इसे उदासीनता वक्र नाम दिया गया हैं। (It is the locus of***

points representing pairs of quantities which the individual is indifferent, so it termed an indifference curve.)'

वाटसन (Watson) के अनुसार *'अनधिमान अनुसूची दो वस्तुओं के संयोगों की एक अनुसूची है जिसको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता उन संयोगों के सम्बन्ध में उदासीन होता है, किसी एक को दुसरे की अपेक्षा अधिमान नहीं देता। (An indifference schedule is a list of combinations of two commodities, the list being so arranged that a consumer is indifferent to the combination, preferring none of any other.) "*

अनधिमान वक्रों की उचित जानकारी में लिए अनधिमान तालिका की जानकारी होना आवश्यक है। **प्रो. मेयर्स (Prof. Meyers)** के अनुसार *'अनधिमान तालिका वह तालिका है जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान संतुष्टि प्राप्त होता है।'* निम्नलिखित तटस्थता सूची या अनधिमान तालिका में समान संतुष्टि प्रदर्शित करने वाले X और Y वस्तु के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित किया गया है। विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यहां केवल दो ही वस्तुएं लेंगे ।

सारिणी: 1 अनधिमान सूची या अनधिमान तालिका (indifference list or indifference table)

संयोग (Combination)	(X)	(Y)	X को प्राप्त करने के लिए Y की छोड़ी गयी मात्रा या Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{xy}) (Amount of Y given up to obtain X OR Marginal rate of substitution of X for Y)
A	1	15	-
B	2	8	1x = 7y
C	3	5	1x = 3y
D	4	3	1x = 2y
E	5	2	1x = 1y

यह सूची दो वस्तुओं X तथा Y के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जिसमें उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। प्रारम्भ में हम संयोग A को लेते हैं जबकि उपभोग के पास X की 1 तथा Y की 15 मात्रा है। अब यदि उपभोक्ता से पूछा जाए कि X की मात्र एक-एक इकाई बढ़ाई जाए तो आप Y की कितनी मात्रा छोड़ेगे जिससे संतुष्टि का स्तर वही रहे जोकि पहले 1x+15y से प्राप्त होता था तो हमें (2x + 8y), (3x + 5y), (4x +3y), (5x + 2y) संयोग प्राप्त हो सकते हैं तथा इसी प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास X की मात्रा बढ़ती जाती है वह X की एक अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति के लिए Y की मात्रा कम ही छोड़ता है पहले X की 1 इकाई के लिए 7y छोड़ता है, X की दूसरी इकाई के लिए 3y तीसरी के लिए 2y तथा चौथी के लिए 1y ही छोड़ता है क्योंकि एक ओर जैसे-जैसे X की मात्रा बढ़ती जाती है उसकी सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है, दूसरी ओर जैसे-जैसे y की मात्रा कम होती जाती है उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है। ऊपर दी गयी सारिणी में दिए गए विभिन्न संयोगों को चित्र सं. 6.1 में वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

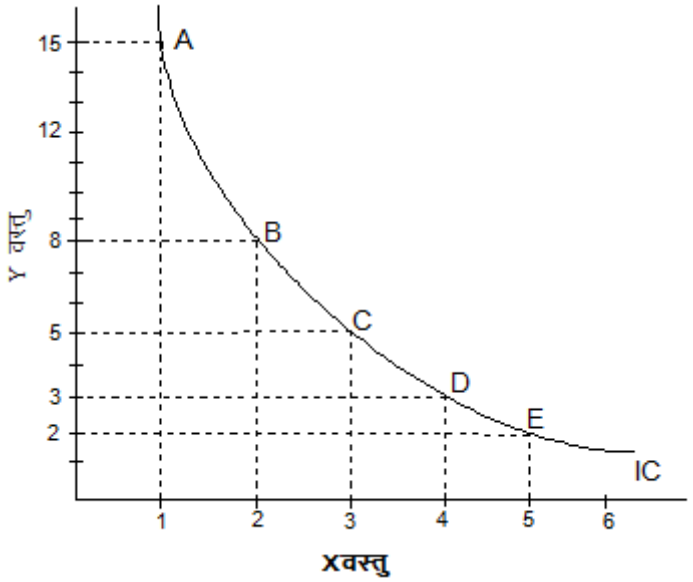

चित्र 6.1

चित्र 6.1 में अनाधिमान तालिका के आंकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। उन संयोगों को अंकित करने पर A,B,C,D तथा E उन संयोगों को प्रदर्शित करते है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। चित्र में प्रदर्शित IC वक्र से स्पष्ट है। A बिन्दु पर उपभोक्ता को जो सन्तुष्टि 1x+15y से प्राप्त होती है वही सन्तुष्टि B बिन्दु 2x+8y से तथा E पर 5x+2y से प्राप्त होती है।

जिस प्रकार X तथा Y वस्तुओं के समान संतुष्टि देने वाले विभिन्न संयोगों के आधार पर अनधिमान सारिणी का निर्माण किया गया हैं उसी प्रकार X तथा Y दोनों की ओर अधिक मात्रा से समान सन्तुष्टि देने वाले संयोगों के आधार पर तटस्थता सारिणियों तथा अनधिमान वक्रों के साथ अनधिमान वक्र मानचित्र का निर्माण किया जा सकता है।

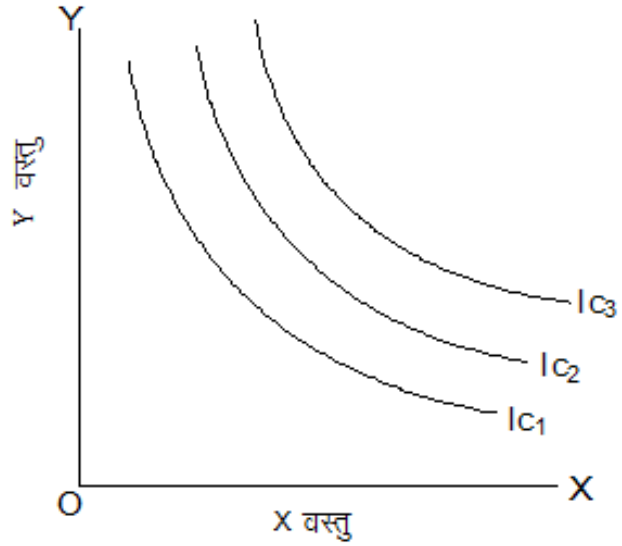

चित्र 6.2

जैसा चित्र 6.2 में प्रदर्शित है। प्रत्येक अनधिमान वक्र पर तो सन्तुष्टि का स्तर एक होगा पर चित्र में प्रदर्शित IC_1 की अपेक्षा IC_2 तथा IC_2 की अपेक्षा IC_3 सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर के प्रतीक हैं।

6.3.2 अनधिमान वक्र की मान्यताएं (Assumptions of Indifference Curve)

जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks) और **आर. जी. डी. एलन** (R. G. D. Allen) द्वारा प्रतिपादित अनधिमान वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1. **विवेकपूर्ण व्यवहार (Rational Behaviour):** अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता विवेक पूर्ण ढंग से व्यवहार करता है। इसका अभिप्राय यह है कि, वह वस्तुओं के विभिन्न संयोगों में से उस संयोग को चुनता है जो उसके सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि दे सके।
2. **वरीयता क्रम (Utility Preference):** इस विश्लेषण की एक मान्यता यह है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उपलब्ध संयोगों को अपनी वरीयता के अनुसार क्रम प्रदान कर सकता है। वस्तुओं के दो संयोगों के मध्य उपभोक्ता या तो तटस्थ (Neutral) रहेगा या किसी एक संयोग पर दूसरे को वरीयता देगा ।
3. **संगत व्यवहार (Compatible Behaviour):** यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता का व्यवहार संगत होता है। इसका अर्थ है कि यदि एक उपभोक्ता वस्तुओं के संयोग A और संयोग B के बीच तटस्थ या उदासीन (neutral) रहता है तो वह संयोग A और C के मध्य भी तटस्थ रहेगा।
4. **सकर्मकता की मान्यता (Transitivity):** इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं के एक समूह में संयोगों का जो वरीयता क्रम (preference order) निर्धारित करता है वही वरीयता क्रम उन संयोगों को अलग-अलग प्रस्तुत करने पर भी निर्धारित करता है।
5. **ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर (Dimnishing Marginal Rate of Substitution):** यह विश्लेषण ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर की मान्यता पर भी आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास एक वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे वह उस वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की घटती मात्राओं का त्याग करने को तैयार होता है।
6. **वस्तुओं की समरूप और विभाज्य इकाइयां (Homogenous and Divisible units of Goods):** इस विश्लेषण में यह मान्यता निहित है कि प्रत्येक वस्तु की सभी इकाइयां समरूप और पूर्ण रूप से विभाज्य होती हैं। इसके कारण वस्तु की प्रत्येक इकाई से मिलने वाली सन्तुष्टि समान होती है।

6.4 अनधिमान वक्रों की विशेषताएं (Characterstics of Indifference Curve)

अनधिमान वक्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं ऐसी होती हैं जिनका अध्ययन इन वक्रों की प्रकृति समझने के लिए आवश्यक होता है। इनकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **अनधिमान वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ, निचे की और ऋणात्मक होता है** (The slope of an indifference curve is negative, downward sloping from left to right) अर्थात् इनका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका सरल कारण यह है कि एक संयोग से दूसरे संयोग पर जाने से उपभोक्ता की सन्तुष्टि तभी समान रह सकती है जब वह एक वस्तु के उपयोग में वृद्धि करने के साथ-साथ दूसरी वस्तु के उपभोग में कमी करें। दिए हुए चित्र 6.3 में यह प्रदर्शित किया गया है कि उपभोक्ता जब संयोग बिंदु R से बिंदु S पर जाता है तब वह X अक्ष पर प्रदर्शित वस्तु B के उपभोग को OM से बढ़ाकर OM_1 करता है तो साथ ही वह वस्तु A के उपभोग को OP से घटाकर OP_1 कर देता है। इसी प्रकार संयोग S से T पर जाने पर वस्तु B के उपभोग में वृद्धि होती है और A के उपभोग में कमी होती है। एक वस्तु की अधिक मात्रा दूसरी वस्तु की कुछ मात्रा का त्याग किए बिना नहीं प्राप्त हो सकती है। इसलिए अनधिमान वक्र बायी से दाहिनी ओर नीचे गिरते हुए होते हैं।

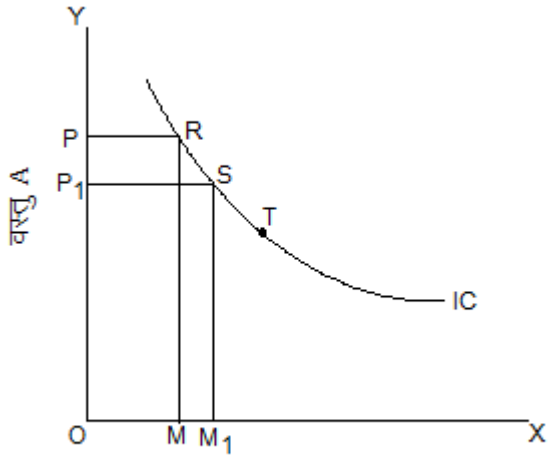

चित्र 6.3

यदि अनधिमान वक्रों का स्वरूप इससे भिन्न हुआ तो वक्र द्वारा प्रदर्शित सभी संयोगों से समान सन्तुष्टि की संकल्पना सत्य नहीं होगी।

2. **एक अनधिमान वक्र के दाई ओर अधिक ऊँचा दूसरा अनधिमान वक्र संतुष्टि के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर और दो वस्तुओं के श्रेष्ट संयोग को व्यक्त करता है (A higher indifference curve ti the right of another represent a higher level of satisfaction and preferable combination of the two goods)** इसे चित्र 6.4 में प्रदर्शित किया गया है ।

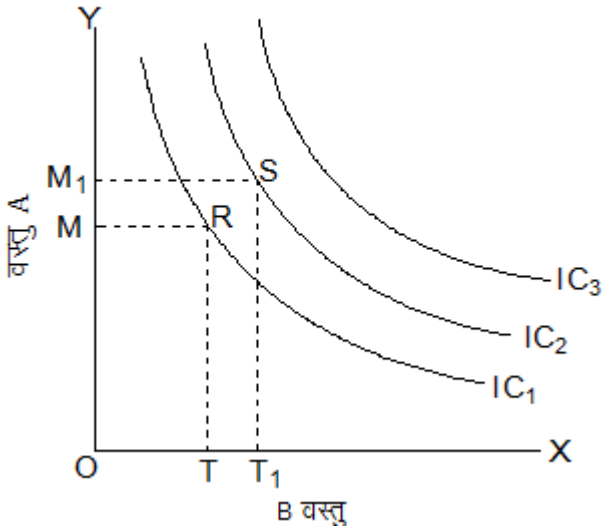

चित्र 6.4

चित्र 6.4 में तीन अनधिमान वक्र IC_1, IC_2, IC_3 प्रदर्शित किए गए हैं। बिन्दु R अनधिमान वक्र IC_1 पर और बिन्दु S अनधिमान वक्र IC_2 पर स्थित है। चित्र से यह स्पष्ट है कि बिन्दु S पर R की तुलना से अधिक संतुष्टि मिल रही है। इसी प्रकार IC_3, के प्रत्येक बिन्दु पर सन्तुष्टि IC_1 एवं IC_2 की तुलना में अधिक प्राप्त होगी। अतः अनधिमान वक्र पर हम जैसे-जैसे दाहिनी ओर बढ़ते जाएगे वैसे-वैसे प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को प्रदर्शित करेगा।

2. **दो अनधिमान वक्र ना तो एक को छू सकते है और ना ही काट सकते हैं (Indifference curves can nither touch nor intersect each other)।** हम जानते है कि प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को प्रदर्शित करते है। इसलिए यदि दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को किसी भी बिन्दु पर काटेगें तो दोनों वक्रों पर समान सन्तुष्टि की स्थिति को सिद्ध किया जा सकता है परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते। इसे निम्न चित्र 6.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

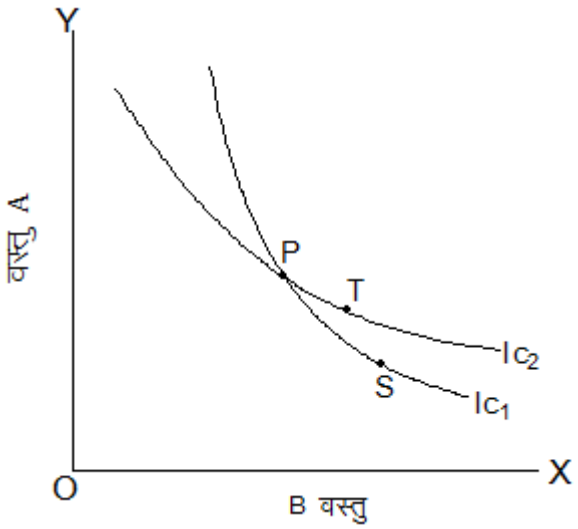

चित्र 6.5

चित्र में दो अनधिमान वक्र IC_1 तथा IC_2 एक दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं। IC_1 पर बिंदु P तथा बिंदु S दोनों ही स्थित हैं जो समान सन्तुष्टि को व्यक्त करते है। इसी प्रकार IC_2 पर बिंदु P तथा बिंदु T पर सन्तुष्टि का स्तर समान होगा। इसलिए बिंदु S और बिंदु T का सन्तुष्टि स्तर समान होगा परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि S और T के दोनों संयोग सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को बताते है। बिंदु T पर सन्तुष्टि का स्तर बिंदु S से अधिक होगा।

4. **अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं (Indifference curves are convex to the origin)।** इसका तात्पर्य है कि मूल बिन्दु की ओर से देखें तो यह वक्र उभरा हुआ प्रतीत होगा। अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होने का कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर को दर्शाता है।

वस्तु की प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर के अनुसार उपभोक्ता के पास जैसे-जैसे किसी वस्तु की इकाइयां बढ़ती जाती है वैसे-वैसे वह दूसरी वस्तु की मात्रा का त्याग घटती दर से करता जाता है। प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को पूर्व में अनधिमान तालिका एवं प्रतिस्थापन की सीमान्त दर द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र 6.6 में भी प्रदर्शित है। चित्र में अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर के साथ-साथ घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन की दर को भी प्रदर्शित करता है।

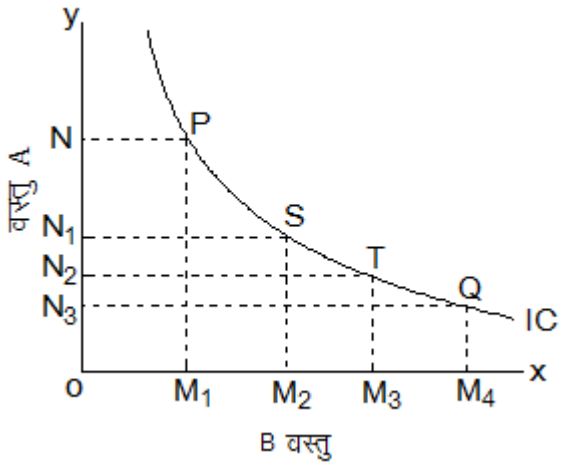

चित्र 6.6

5. **अनधिमान वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नही कर सकता (An Indifference curve cannot touch either axis)।** अनधिमान वक्र यह X अक्ष को स्पर्श करता हैं जैसा की चित्र 6.7 में दिखाया गया हैं, I_1 वक्र X अक्ष को M बिंदु पर स्पर्श कर रहा हैं यहाँ उपभोक्ता को X वस्तु की OM मात्रा मिलेगी परन्तु Y की कोई भी मात्रा नहीं मिलेगी। इसी प्रकार यदि I_2 वक्र L बिंदु पर Y अक्ष को स्पर्श करता हैं, तो उपभोक्ता को Y वस्तु की OL मात्रा मिलेगी और X की कोई भी मात्रा नहीं मिलेगी।

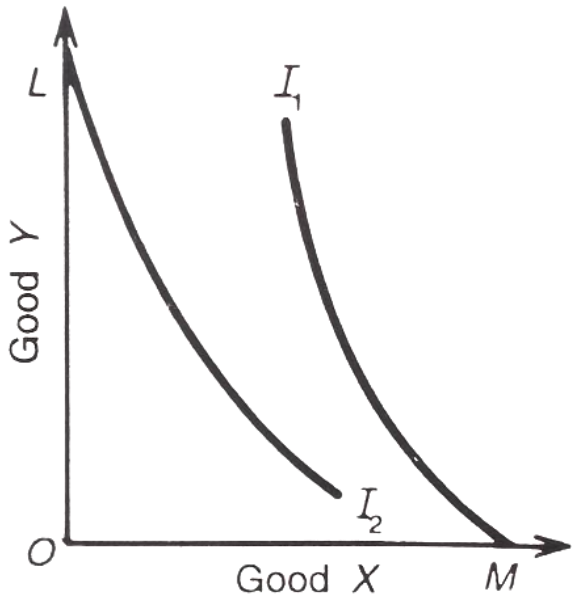

चित्र 6.7

6. **यह आवश्यक नहीं कि अनधिमान वक्र आपस में समानांतर हों (Indifference curves are not necessarily parallel to each other)।** यद्यपि अनधिमान वक्र दाई ओर को ऋणात्मक झुकाव के साथ नीचे की ओर को जाते हैं तो ऐसा आवश्यक नहीं है कि सभी अनधिमान वक्रों के गिरने की दर

समान हो। अर्थात्: सब अनधिमान वक्रो में दो वस्तुओ की स्थानापन्नता की घटती सीमांत दर का नितान्त समान होना आवश्यक नहीं। चित्र 6.8 में I_1 और I_2 वक्र एक दुसरे के समानांतर नहीं हैं।

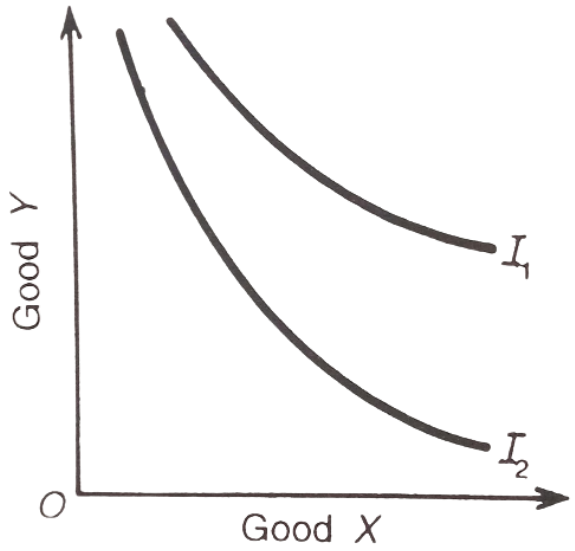

चित्र 6.8

6.5 उपभोक्ता का सन्तुलन (Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र और कीमत रेखा की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय का व्यय करके अनधिमान वक्र के उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जिस पर उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। दी हुई आय के व्यय से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि उस बिन्दु पर मिलेगी जहाँ कीमत रेखा उसके अनधिमान मानचित्र में सर्वोच्च संभव अनधिमान वक्र पर स्पर्श करेगी। यह स्पर्श बिन्दु ही उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु होगा।

उपभोक्ता के संतुलन की इस स्थिति को नीचे दिए चित्र 6.9 में दिखाया गया है। चित्र में Y अक्ष पर वस्तु A और अक्ष X पर वस्तु B प्रदर्शित की गयी है। ST कीमत रेखा है तथा विभिन्न अधिमान स्तरों को सूचित करने वाले IC_1, IC_2, IC_3 तथा IC_4 अनाधिमान वक्र हैं। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय और चालू कीमत स्तरों पर ST कीमत रेखा पर दिखाए गए किसी भी एक संयोग को खरीद सकता है।

हम यह जानते हैं कि किसी अनधिमान वक्र के दाहिनी ओर स्थित अनधिमान वक्र क्रमशः अधिक संतुष्टि के सूचक होते हैं। अनधिमान वक्र जितना ऊँचा होगा, उतने ही ऊँचे सन्तुष्टि स्तर का द्योतक होगा। अतः अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुँचनें का प्रयास करेगा परन्तु सीमित आय और बाजार में वस्तुओं की प्रचलित कीमत रेखा उसकी क्रय सामर्थ्य को सीमित करेगी। चित्र 6.9 में कीमत रेखा ST, उपभोक्ता के क्रय क्षमता का द्योतक है। इस चित्र में अनधिमान वक्र IC_4 सर्वाधिक सन्तुष्टि का द्योतक है परन्तु उपभोक्ता अपने सीमित क्रय क्षमता के कारण अनधिमान वक्र IC_4 तक पहुँचनें में असमर्थ होगा। अतः उपभोक्ता अपनी सीमित आय और दी हुई कीमतों द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर ही अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

चित्र 6.9 में कीमत रेखा ST पर दिखाए गए संयोग R को खरीदने पर उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 और संयोग P को खरीदने पर उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_2 पर होगा। इस प्रकार संयोग R की तुलना में संयोग P श्रेयस्कर होगा। पुनः यदि उपभोक्ता संयोग K खरीदता है तो वह अनधिमान वक्र IC_3 पर होगा जो ऊँचे अनधिमान वक्र पर स्थापित होने के कारण संयोग R और संयोग P की तुलना में अधिक सन्तुष्टि का सूचक है। दी हुई आय और चालू कीमतों की स्थिति में संयोग K उपभोक्ता को ST कीमत रेखा पर दिखाए गए अन्य

सभी संयोगों की तुलना में अधिक सन्तुष्टि देने वाला है क्योंकि उपभोक्ता का संयोग K से कीमत रेखा पर दाहिनी ओर या बाई ओर विचलन सन्तुष्टि के अपेक्षपाकृत निम्न स्तर का सूचक है।

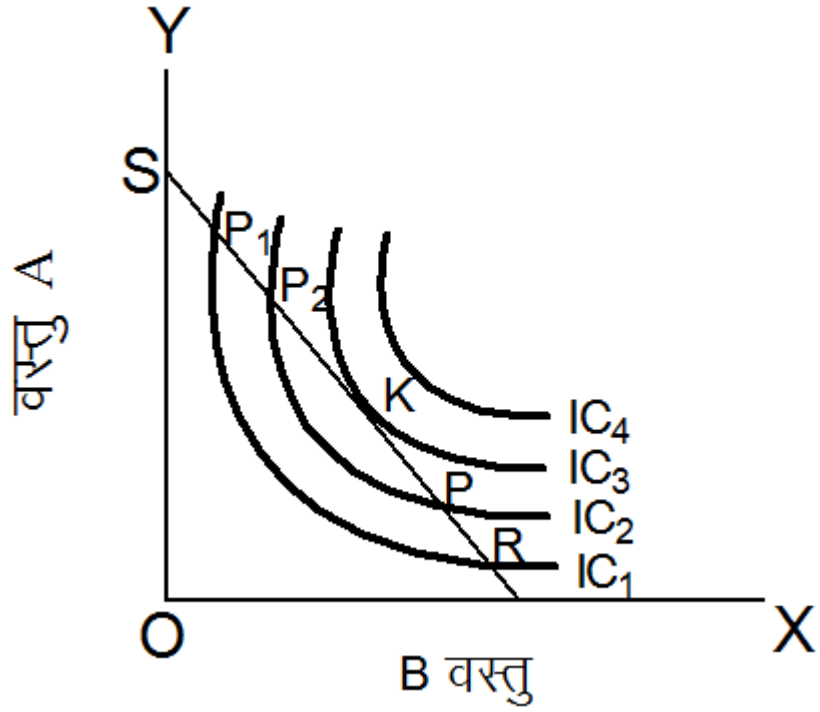

चित्र 6.9

स्पष्टतः उपभोक्ता कीमत रेखा ST पर संयोग K से भिन्न P_2 या P_1 या कोई अन्य संयोग नहीं चुनेगा। यदि कीमत रेखा पर K संयोग के अतिरिक्त किसी अन्य संयोग को चुन भी लेता है तो भी उसकी प्रवृत्ति K संयोग की ओर लौटने की होगी क्योकि उसका व्यवहार विवेकपूर्ण है और वह अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है।

अनधिमान वक्र IC_4 कीमत रेखा के बाहर दाहिनी ओर स्थित है। अतः अनधिमान वक्र IC_4 पर दिखाया गया कोई भी संयोग उपभोक्ता की क्रय शक्ति के सामर्थ्य के बाहर है जिस कारण उनको खरीदने में वह असमर्थ है। इस प्रकार दी हुई आय और वर्तमान कीमत स्तर के आधार पर उपभोक्ता K संयोग खरीदेगा। K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा ST को स्पर्श करता है। अन्य संयोगों पर अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श नहीं करता, अपितु काटता है (यथा बिन्दु R,P.P_2 P_1पर)। K संयोग उसे अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने वाला है। अब उपभोक्ता की आय व वस्तुओं की कीमत में जब तक परिवर्तन नहीं होगा, उपभोक्ता A और B वस्तु के संयोग K से प्रदर्शित मात्राएँ ही खरीदता रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं करेगा और परिवर्तन का अभाव ही संतुलन है।

अनधिमान वक्र प्रतिस्थापन की ह्रासमान सीमान्त दर को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर कीमत रेखा का ढाल दोनों वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करती है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि उपभोक्ता उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जहाँ दोनों वस्तुओं की ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर, उसके कीमत के बराबर होती है। उपर्युक्त चित्र में K बिन्दु पर, जहाँ अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा को स्पर्श करता है, वह शर्त पूरी होती है। K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 के ढाल से प्रदर्शित ह्रासमान प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ST कीमत रेखा के ढाल द्वारा प्रदर्शित A और B वस्तुओं के कीमत अनुपात के बराबर है।

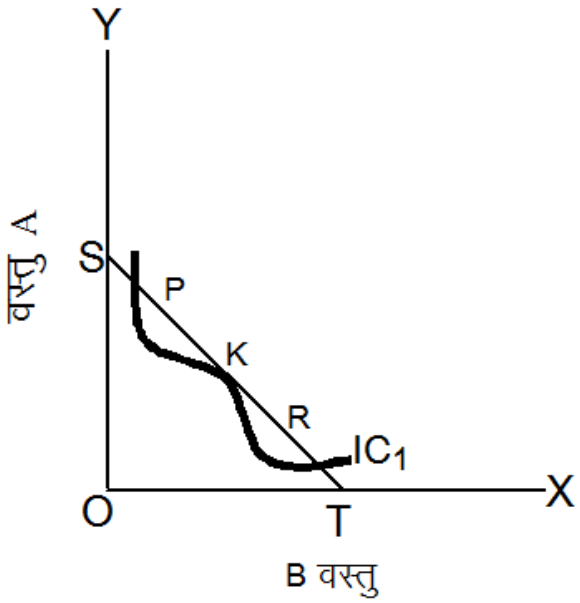

चित्र 6.10

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सन्तुलन के लिए अनधिमान वक्र का कीमत रेखा से स्पर्श होना ही काफी नहीं है अपितु यह भी आवश्यक है कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्रासमान हो अथवा अनधिमान वक्र मूल बिंदु के प्रति उन्नतोदर (Convex) हो । चित्र 6.10 में K बिन्दु पर अनधिमान वक्र, कीमत रेखा को स्पर्श करता है लेकिन ST कीमत रेखा पर K बिन्दु से दाहिनी ओर बिन्दु R या बायीं ओर बिन्दु P पर विचलन अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का द्योतक होगा क्योंकि बिन्दु R और बिन्दु P अनधिमान वक्र IC_1 के आगे की ओर स्थित है जोकि अपेक्षाकृत ऊँचे अनधिमान वक्र पर होगा। अतः यहाँ स्पर्श बिन्दु अधिकतम सन्तुष्टि का सूचक नहीं है।

अतः सन्तुलन के लिए दोहरी शर्तों का पूरा होना आवश्यक है। **प्रथम** अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करे और **द्वितीय,** प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्रासमान हो या अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (Convex) है।

6.6 अनधिमान वक्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Indifference Curve)

हम आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव को समझने के बाद ही अनधिमान वक्र विश्लेषण का समुचित मूल्यांकन कर सकेंगे। **हिक्स** (Hicks) के अनधिमान वक्र विश्लेषण ने **मार्शल** (Marshall) के उपयोगिता विश्लेषण के दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुनर्निमाण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित तथा वैज्ञानिक रूप दिया। यदि आपसे यह प्रश्न पूछा जाए कि क्या अनधिमान -विश्लेषण उपयोगिता-विश्लेषण के ऊपर सुधार है अथवा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम तटस्थता विश्लेषण के गुण तथा दोष दोनों का अध्ययन करें और तत्पश्चात निष्कर्ष पर पहुँचे।

6.6.1 अनधिमान वक्र विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता (Properties of Indifference Curve Analysis and its superiority)

1. मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन पर आधारित है, जबकि अनधिमान विश्लेषण के अन्तर्गत उपयोगिता जैसे मनोवैज्ञानिक विचार को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह

विश्लेषण तो केवल यह बताता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं के एक संयोग को, दूसरे संयोग की अपेक्षा कम, बराबर या अधिक पसन्द करता है परन्तु उपभोक्ता यह नहीं कह सकता कि वह एक संयोग को दूसरे की अपेक्षा कितना पसन्द करता है।

2. **प्रो. हिक्स** ने दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम दिया जिसे वह प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर कहते हैं। यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से स्वतंत्र है। यह विचार **मार्शल** के अस्पष्ट विचार को अधिक निश्चित रूप में रखता है और इसलिए प्रो. हिक्स अपने विचार को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।
3. मार्शल की उपयोगिता-विश्लेषण उपभोक्ता के लिए मुद्रा/द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलती है जबकि अनधिमान विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नहीं है। दूसरे शब्दों में, अनधिमान विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ हैं।
4. तटस्थता विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने पर उस वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करने में 'आय प्रभाव (Income Effect)' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव(Substitution Effect)' दोनों को ध्यान में रखता है। अतः यह उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है। वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन (Substitution)' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय **हिक्स** को जाता है।
5. अनधिमान विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं अर्थात् स्थानापन्न (Substitute) तथा पूरक (complementary) वस्तुओं का भी अध्ययन करता है जबकि मार्शल ने ऐसा नहीं किया। अतः यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही अध्ययन किया, जैसे कि एक वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो। वास्तव में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।
6. अनधिमान विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में भी किया जाता है। अतः प्रो. हिक्स ने अनधिमान विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

6.6.2 अनधिमान वक्र विश्लेषण के दोष (Demerits of Indifference Curve Analysis)

1. प्रो. हिक्स के अनुसार एक उपभोक्ता दो वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करते समय एक वस्तु में हुई थोड़ी वृद्धियों की सापेक्षिक तुलना दूसरी वस्तु की थोड़ी वृद्धियों से करता है परन्तु **प्रो. नाइट** तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि व्यवहार में उपभोक्ता तो परिमाणात्मक उपयोगिता तथा कुल सन्तुष्टि की वृद्धि के शब्दों में सोचता है इसलिए माँग- सिद्धान्त को इन बातों पर आधारित ना करके हिक्स ने गलती की है।
2. आलोचकों द्वारा बताया गया है कि अनधिमान विश्लेषण भी उपयोगिता विश्लेषण की भाँति बहुत सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे:
   (क) उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील से प्रभावित होता है तथा सोच-समझ कर व्यय करता है परन्तु व्यवहार में उपभोक्ता व्यय करते समय प्रायः आदतों, रीति रिवाजो, परिस्थितियों द्वारा भी प्रभावित होता है ना केवल विवेकशीलता से।
   (ख) उपभोक्ता को अपने अनधिमान मानचित्र की पूर्ण जानकारी होती है परन्तु ऐसा मानना भी गलत है। उपभोक्ता एक या दो संयोगों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी रख सकता है परन्तु उसके लिए बहुत-से संयोगों के बीच चुनाव करना बहुत कठिन तथा अव्यावहारिक है। **प्रो. बोल्डिंग** (Prof. Boulding) ने ठीक ही कहा है कि ***'हम कुछ निश्चित स्थितियों में चुनाव कर सकते हैं परन्तु हमारे लिए स्थितियों को बहुत अधिक संख्या के बीच चुनाव करना सम्भव नहीं है।'***

(ग) अन्य मान्यताएं है: वस्तु का प्रमापित होना, पूर्ण प्रतियोगिता का पाया जाना, बाजार में उपभोक्ता के चुनाव पर संस्थात्मक नियंत्रण का ना होना परन्तु यह सभी मान्यताएं अवास्तविक हैं।

3. तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि यह कोई आधारभूत नवीनता लिए हुए नहीं है, पुराने विचारों को केवल नए शब्दों में व्यक्त कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' के एक, दो, तीन, इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' के पहला, दूसरा, तीसरा, इत्यादि का प्रयोग, 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अनधिमान क्रम' 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर' तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति $\frac{\text{MU of X}}{\text{Price of X}} = \frac{\text{MU of Y}}{\text{Price of Y}} = \frac{\text{MU of Z}}{\text{Price of Z}}$ इत्यादि, समीकरण द्वारा बतायी जाती जबकि अनधिमान विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर = वस्तुओं का कीमत अनुपात का यह समीकरण दिया जाता है। अतः कहा जाता है कि अनधिमान विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नए शब्दों में व्यक्त करता है।

परन्तु प्रो. हिक्स इस विचार से सहमत नहीं है। सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो. हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते है जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं।

4. जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो अनधिमान रेखाएं अपनी सरलता को खो देती हैं। तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप चाहिए, तीन वस्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित विफल हो जाती है तथा हमें बीजगणित का सहारा लेना पड़ता है।
5. वास्तव में, अनधिमान वक्र विश्लेषण रीति बहुत जटिल होती है। इसका प्रयोग केवल वे ही अर्थशास्त्री कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।
6. **शुम्पीटर** (Schumpeter) तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि अनधिमान विश्लेषण रीति का प्रयोग व्यावहारिक अनुसंधान में नहीं किया जा सकता है यद्यपि काल्पनिक अनधिमान वक्र रेखाएं खीचीं जा सकती हैं परन्तु वास्तविक अनधिमान रेखाओ को खींचना सम्भव नहीं है।

6.6.3 अनधिमान वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष (Conclusion of Indifference Curve Analysis)

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति, उपयोगिता विश्लेषण रीति से एकदम नयी या सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो अनधिमान विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टिकोणों से अनधिमान विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

6.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मार्शल निम्नलिखित में से किसके समर्थक थे?

क. गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के ख. क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के
ग. क और ख दोनों के घ. उपर्युक्त में से किसी के नहीं

2. निम्न में से किसको उपयोगिता विश्लेषण का प्रतिपादक कहा जाता हैं?

क. मार्शल ख. परेटो
ग. हिक्स घ. ऐलन

3. उपभोक्ता की अनधिमान वक्र का ढाल किस प्रकार का होता है?
क. धनात्मक ख. समानान्तर
ग. ऋणात्मक घ. लम्बवत्

4. उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है इसलिए इसकी -
क. गणना वाचक माप की जा सकती है।
ख. गणना वाचक माप नहीं की जा सकती है।
ग. क्रम वाचक माप नहीं की जा सकती है।
घ. तुलनात्मक माप के साथ साथ गणना वाचक माप की जा सकती है।

5. जब दो वस्तुएं पूर्ण प्रतिस्थानापन्न होती है तो तटस्थता वक्र -
क. मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है।
ख. मूल बिन्दु के नतोदर होता है।
ग. एक सरल रेखा के रूप में होता है।
घ. नीचे से ऊपर धनात्मक ढाल लिये होता है।

6.8 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि अर्थजगत् में उपभोक्ता का व्यवहार अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। उपभोक्ता के संतुलन को जानने के लिए मार्शल के उपयोगिता के मापन सम्बन्धी विचारों की आलोचना के बाद एक नई तकनीकी 'अनधिमान वक्र विश्लेषण' वर्तमान समय में अति विशिष्ट विश्लेषण माना जाता है क्योंकि इस विश्लेषण में मापन सम्बन्धी समस्या की कठिनाई को दूर कर दिया गया है। इस वक्र पर उपभोक्ता को दो वस्तुओं के उपभोग करने में समान संतुष्टि मिलती है। वह किसी भी संयोग को चुन सकता है। यदि वह एक का उपभोग बढ़ाना चाहता है तो उसे दूसरे का उपभोग कम करना पड़ेगा। इस रूप में बायें से दायें, नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र जो मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) है वह अनधिमान वक्र विश्लेषण का रूप ग्रहण कर लेता है। विश्लेषण में घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है। उपभोक्ता का संतुलन जानने के लिए बजट रेखा या कीमत रेखा महत्वपूर्ण है। जहाँ कीमत रेखा, अनधिमान वक्र को स्पर्श करती है वही उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु निर्धारित होगा। संतुलन बिन्दु ही सुनिश्चित करता है कि दो वस्तुओं में से उपभोक्ता X वस्तु की कितनी मात्रा और Y वस्तु की कितनी मात्रा का वास्तव में उपभोग करता है। उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से अनधिमान विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

6.9 शब्दावली (Glossary)

- **अनधिमान वक्र (Indefference Curve) -** अनधिमान वक्र, दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिस पर उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।
- **उपभोक्ता संतुलन (Consumer's Equilibrium) -** अनधिमान वक्र का वह बिन्दु जहाँ उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है उस बिंदु को उपभोक्ता संतुलन कहते है।
- **उपयोगिता की संख्यात्मक दृष्टिकोण (Numerical Approach to Utility) -** उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता की संख्यात्मक माप करना संभव है, इस विचार को उपयोगिता की संख्यात्मक दृष्टिकोण कहते है।

- **उपयोगिता की क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach to Utility) -** उपयोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता को मात्र क्रम दे सकते है, इस विचार को उपयोगिता की क्रमवाचक दृष्टिकोण कहते है।
- **सीमान्त प्रतिस्थापन दर (Marginal Rate of Substitution) -** वह दर जिस पर कोई उपभोक्ता एक वस्तु की निश्चित मात्रा के बदले में दूसरी वस्तु को लेने अथवा परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है उसे सीमान्त प्रतिस्थापन दर कहते है।
- **कीमत रेखा या बजट रेखा (Price or Budget Line) -** उपभोक्ता का क्रय सामर्थ की द्योतक रेखा जो दो वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है उसे कीमत रेखा कहते है।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क 2. क 3. ग
4. ख 5. ग

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

6.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

6.13 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अनधिमान वक्र से आप क्या समझते हैं? इनकी सहायता से यह स्पष्ट कीजिए कि उपभोक्ता संतुलन की अवस्था को कैसे प्राप्त करता है?
2. अनधिमान वक्र विश्लेषण को सचित्र समझाईए। अनधिमान वक्रों के स्वरूप एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. सीमान्त प्रतिस्थापन दर से क्या आशय है? अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है, समझाइये।

इकाई – 7 लागत एवं आगम वक्र
(Cost and Revenue Curve)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)
7.2 उद्देश्य (Objective)
7.3 लागत वक्र (Cost Curves)
7.3.1 लागत की अवधाणाएं (Concepts of Cost)
7.3.2 लागत को मापने की विभिन्न अवधाणाएं (Different Concepts of measuring Cost)
7.4 दीर्घकालीन लागत वक्र (Long-run Cost Curves)
7.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long run Average Cost Curve)
7.4.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve)
7.5 आगम वक्र (Revenue Curve)
7.5.1 आगम की विभिन्न अवधारणाएं (Different Concepts of Revenue)
7.5.2 औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र (Average Revenue Curve and Marginal Revenue Curve)
7.5.3 औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध (Relationship between Average Revenue and Marginal Revenue)
7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
7.7 सारांश (Summary)
7.8 शब्दावली (Glossary)
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
7.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्व के अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि बाजार में उपभोक्ता का क्या उद्देश्य होता है तथा वह किस प्रकार से व्यवहार करता है। साथ ही आपने विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से यह भी अध्ययन किया कि उपभोक्ता अपने साम्य को किस प्रकार प्राप्त करता है।

इस खण्ड में हम उत्पादक अथवा फर्म के व्यवहार का अध्ययन करेंगे। जिस प्रकार एक उपभोक्ता का उद्देश्य अधिकतम संतुष्टि (Maximum Satisfaction) प्राप्त करना होता है उसी प्रकार उत्पादक अथवा फर्म का मौलिक उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम (Profit Maximization) करना माना गया है। फर्म के लाभ उसके कुल आगम (Total Revenue) तथा कुल लागत (Total Cost) के अन्तर के बराबर होता है।

अतः किसी फर्म की उत्पादन की मात्रा के निर्धारण में उत्पादन लागत व आपेक्षित आगम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। फर्म द्वारा लिये गए उत्पादन सम्बंधी निर्णय एक ओर इस बात पर निर्भर करते हैं कि प्रति इकाई लागत कितनी आ रही है और दूसरी ओर इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार में प्रति इकाई कीमत कितनी प्राप्त हो रही है। इस इकाई में हम फर्म के लागत तथा आगम वक्रों का अध्ययन करेंगे। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागत वक्रों की विवेचना करने से पूर्व हमें लागत की विभिन्न अवधारणाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य (Objective)

इस अध्ययन के पश्चात आप यह समझने में सक्षम होंगे कि:-

- ✓ लागत की विभिन्न धारणाएं कौन सी हैं?
- ✓ लागत क्या प्रदर्शित करती है?
- ✓ लागत वक्रों की प्रवृति क्या होती है?
- ✓ आगम की विभिन्न धारणाएं क्या हैं?
- ✓ सीमान्त व औसत सम्बन्ध किस प्रकार के होते हैं।

7.3 लागत वक्र (Cost Curves)

7.3.1 लागत की अवधाणाएं (Concepts of Cost)

समयान्तराल में अर्थशास्त्रियों द्वारा लागत की विभिन्न प्रकार की धारणाएं प्रतिपादित की गयी। इनमें से प्रमुख अवधारणाएं निम्नवत रही हैं:

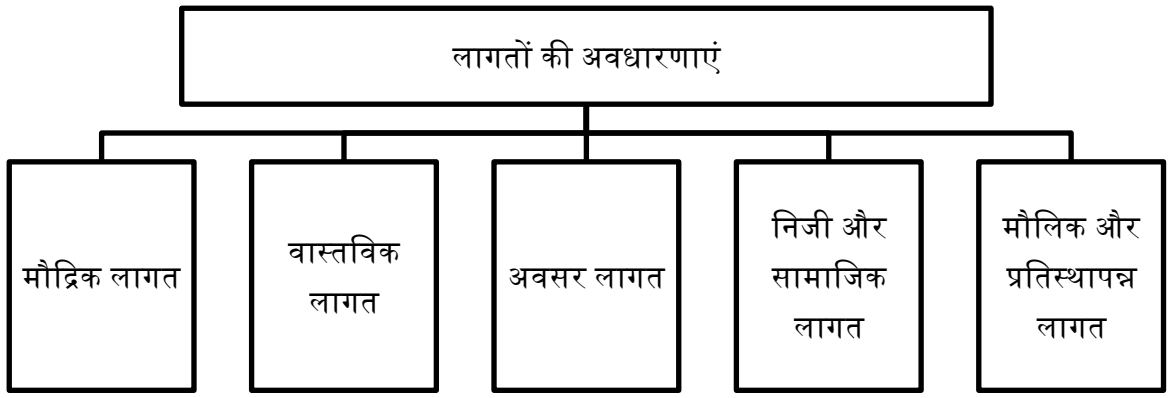

1 मौद्रिक लागत (Money Cost)

सामान्य रूप से किसी वस्तु के उत्पादन प्रक्रिया में उद्यमी द्वारा जो विभिन्न प्रकार के व्यय किए जाते हैं वही उत्पादन की **मौद्रिक लागतें** (Money/Monetary Cost) कहलाती है। मौद्रिक लागतों से आशय उन सब खर्चों से होता है, जोकि किसी फर्म/उत्पादक को उत्पादन करने के लिए उत्पादन के साधनों को खरीदने एवं किराए पर लेने के लिए किए जाते है। इस लागत में मुख्यतयाः निम्न तीन प्रकार की मदें सम्मिलित होती हैं:

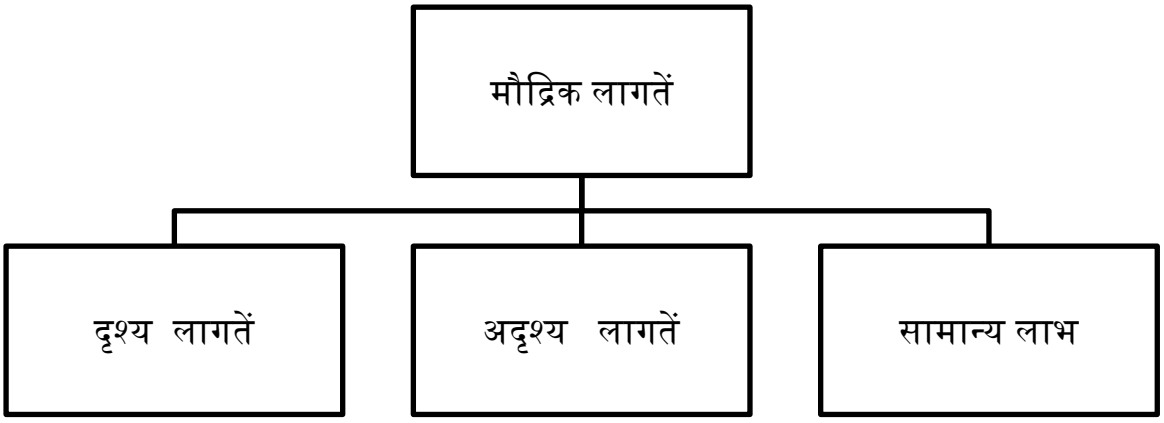

(अ) दृश्य लागतें (Explicit Cost) - दृश्य लागतों के अन्तर्गत उत्पादक के वित्तीय लेखा-जोखा (financial accounting) व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। अतः इसे **लेखांकन लागत (Accounting Cost)** एवं **बाह्य लागत (External Cost)** भी कहते हैं। इस दृश्य लागत में मुख्यतयाः तीन मदें सम्मिलित होती हैं:

(1) उत्पादन लागत (Production Cost) - इसमें कच्चे माल पर व्यय, मजदूरी वेतन, ब्याज, लगान, मशीन, उपकरण, रख-रखाव पर व्यय इत्यादि सम्मिलित होते है।

(2) बिक्री लागत (Sales Cost) - इसमें पैकिंग, विज्ञापन, परिवहनीकरण तथा अन्य बिक्री सम्बन्धी व्यय सम्मिलित होते है।

(3) अन्य लागत (Other Cost) - जैसे बीमा, ब्याज, सरकार को दिये जाने वाला कर, विधुत इत्यादि पर हुआ व्यय

(ब) अदृश्य लागत (Implicit Cost) – एक फर्म उत्पादन के सभी साधनों को बाजार से नहीं खरीदती। कुछ साधन इसके स्वयं के होते है जिनका प्रयोग उत्पादन करने में किया जाता है। इन साधनों (स्वयं के साधनों Self owned resources) की लागत को **अदृश्य लागत** (Implicit Cost) कहते है। अदृश्य लागतों को अस्पष्ट लागतें, अथवा अव्यक्त लागतें भी कहते है। उदाहरणार्थ उद्यमी की स्वतः की भूमि का लगान, स्वतः की पूँजी का ब्याज, इत्यादि।

(स) सामान्य लाभ (Normal Profit)- सामान्य लाभ को अर्थशास्त्र में किसी उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप मे देखा जाता है। लाभ दो प्रकार के होते है- **अतिरिक्त लाभ** तथा **सामान्य लाभ**। यदि वस्तु की बिक्री से इतना अधिक आगम प्राप्त हो कि उद्यमी की लागत, वेतन इत्यादि तो निकले ही साथ में कुछ अतिरिक्त राशि बच जाए तो उसे उद्यमी के **अतिरिक्त लाभ** कहेंगे। परन्तु यदि मात्र इतना आगम प्राप्त हो कि केवल उसका वेतन व लागते निकल पाए तो उसे उद्यमी का **सामान्य लाभ** कहा जाएगा। अतिरिक्त लाभ में लागतों से कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु सामान्य लाभ को लागतों के अंश के रूप में देखा

जाता है। ऐसा माना जाता है कि सामान्य लाभ भी ना मिल पाने की दशा में उद्यमी उत्पादन बन्द कर देता है।

2 वास्तविक लागत (Real Cost)

वास्तविक लागत से अभिप्राय उस सभी कष्टों, कठिनाईयों, प्रयासों, मेहनत एवं त्याग से है जो उत्पादन के साधनों को किसी वस्तु का उत्पादन करते समय सहन करने पड़ते है। यदि किसी वस्तु X के उत्पादन में वस्तु Y की तुलना में दुगना अधिक कष्ट, प्रयास अथवा त्याग करना पड़ा है तो X का मूल्य Y की तुलना में दुगना होना चाहिए।

प्रो. मार्शल (Prof. Marshall) ने वास्तविक लागत की परिभाषा देते हुए कहा कि ***"किसी वस्तु के उत्पादन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लगे श्रमिकों के प्रयास तथा उत्पादन में लगी पूँजी को बढ़ने के लिए जो उपभोग का स्थगन करना पड़ता है अथवा अन्य सभी त्यागों का योग उस वस्तु की वास्तविक लागत कहलाएगा। (The exertion of all the different kinds of labour that are directly or indirectly involved in making it, together with the abstinences or rather the waiting required for saving and capital used in making it, all these efforts and sacrifices together will be callled the real cost of production of a commodity.)"***

परन्तु वास्तविक लागत की इस विचारधारा के बाद, अर्थशास्त्रियों द्वारा तीखी आलोचना की गयी और कहा गया कि कष्ट अथवा त्याग मनोवैज्ञानिक धारणाएं हैं जिन्हें सही प्रकार से मापा नहीं जा सकता। साथ ही इस सिद्धान्त में व्यावहारिक भी नहीं पाया जाता क्योंकि एक डाक्टर, वकील इत्यादि की सेवाओं का मूल्य सामान्यतया कुली, श्रमिक इत्यादि से ज्यादा पाया जाता है जोकि इस सिद्धान्त का विरोधाभाष है।

3 अवसर लागत (Opportunity Cost)

अर्थशास्त्र की मौलिक मान्यता यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होती है। अतः किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है - दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना। अत: किसी वस्तु की अवसर लागत सर्वोतम विकल्प त्यागने की लागत है। अवसर लागत की धारणा को एक सरल उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

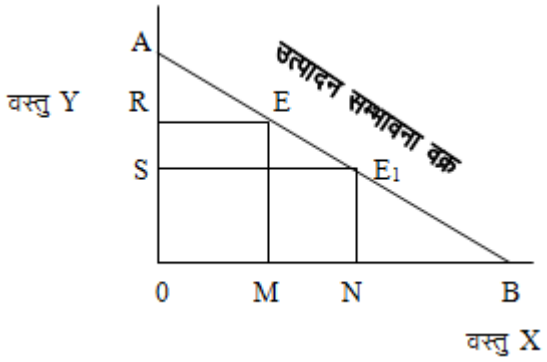

चित्र 7.1

माना AB रेखा दो वस्तुओं X और Y के उत्पादन की विभिन्न सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक वस्तु X का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे उस वस्तु Y के उत्पादन में कमी करनी पड़ेगी। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु X की MN मात्रा में वृद्धि करने के लिए वस्तु Y की RS मात्रा का

उत्पादन घटाना पड़ता है, यही **अवसर लागत** (opportunity cost) है। अतः वस्तु X की मात्रा MN की अवसर लागत = वस्तु Y की RS मात्रा है। दूसरे शब्दों में वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने की अवसर लागत वस्तु Y की वह मात्रा है जिसके उत्पादन का परित्याग करना पड़ा।

4 निजी और सामाजिक लागत (Private and Social Cost)

निजी-लागत से अभिप्राय उन सब खर्चों से होता है जो किसी फर्म द्वारा वस्तु का उत्पादन करने हेतु किए जाते हैं। वास्तव में, निजी लागत मौद्रिक लागत ही होती है। एक फर्म को उत्पादन के साधनों को खरीदने एवं किराये या भाड़े पर लेने हेतु जो खर्चे करने पड़ते हैं, उसे ही निजी लागत कहते हैं।

सामाजिक- लागत से अभिप्राय वस्तु के उत्पादन के दौरान समाज द्वारा चुकाई गई लागत से है। यह मौद्रिक लागत से सर्वथा भिन्न है। जब वस्तुओं का उत्पादन होता है तो समाज को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कुछ लागत वहन करनी पड़ती है, जिसे **सामाजिक लागत** कहा जाता है।

5 मौलिक और प्रतिस्थापन लागत (Original and Replacement Cost)

मौलिक लागत अथवा प्रारम्भिक लागत से हमारा अभिप्राय मशीन व उपकरण की उस कीमत से है जो फर्म द्वारा प्रारम्भ में अदा की गयी है, अर्थात् मशीन का क्रय मूल्य। मौलिक- लागतों को 'ऐतिहासिक लागत (Historical Cost)' भी कहा जाता है।

उत्पादन के दौरान जब पुरानी पूँजीगत परिसम्पत्ति, प्रचलन से बाहर हो जाने पर फर्म द्वारा जो नई पूँजीगत परिसम्पत्ति पर व्यय करना पड़ता है, उसे ही 'प्रतिस्थापन्न लागत ' कहा जाता है।

7.3.2 लागत को मापने की विभिन्न अवधाणाएं (Different Concepts of measuring Cost)

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु को पूर्ति की परिवर्तित माँग दशाओं के अनुसार समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों में समायोजन कर सके। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। स्थिर साधनों में सामान्यतया भूमि, पूँजी, मशीन, संगठन, प्रबन्ध इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। स्थिर साधनों के अतिरिक्त कुछ परिवर्तनशील साधन भी होते हैं जिनकी पूर्ति को आवश्यकतानुसार अल्पकाल में भी समायोजित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों की मात्रा, कच्चा माल, ईधन इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इन साधनों में उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तन होता है।

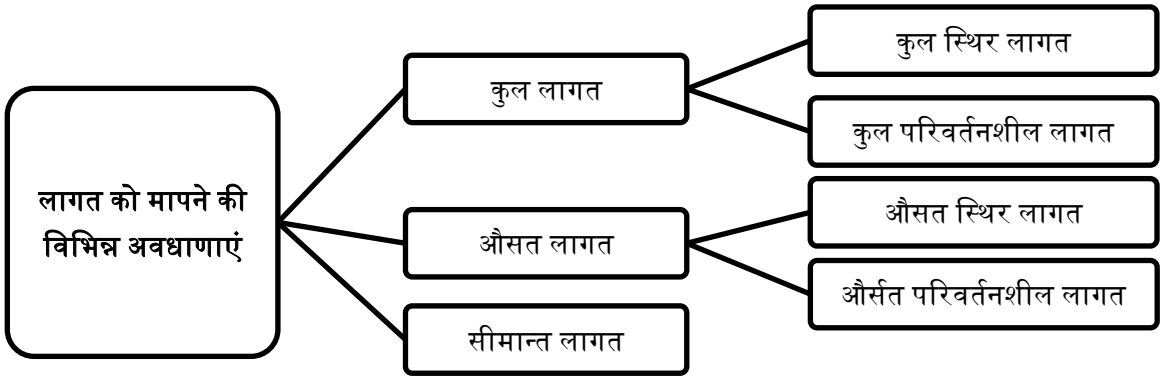

1. कुल लागत (Total Cost)

स्थिर साधनों का जो भुगतान किया जाता है उसे स्थिर लागत कहा जाता है। परिवर्तनशील साधनों का जो भुगतान किया जाता है उसे **परिवर्तनशील लागत** कहा जाता है। स्थिर लागतों की एक विशेषता यह भी है कि उत्पादन बन्द हो जाने की दशा में भी उद्यमी को इनका वहन करना पड़ता है परन्तु परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार बढ़ती व घटती रहती है।

अतः अल्पकाल में -

$$\text{कुल उत्पादन लागत} = \text{कुल स्थिर लागत} + \text{कुल परिवर्तनशील लागत}$$

$$TC = TFC + TVC$$

चित्र में कुल लागत वक्र (TC) को कुल स्थिर लागत (TFC) तथा कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) वक्रों के रूप में स्पष्ट किया गया है। कुल स्थिर लागत (TFC) रेखा Y अक्ष के एक बिन्दु (R) से प्रारम्भ होती है तथा इसे X अक्ष के समानान्तर दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि उत्पादन बढ़ने पर भी स्थिर लागतों में परिवर्तन नहीं होता है। और यदि उत्पादन शून्य भी हो जाए तब भी उत्पादक को OR मात्रा की स्थिर लागतों को वहन करना पडेगा। दूसरी ओर परिवर्तनशील लागत वक्र (TVC) का अर्थ है की उत्पादन के बढ़ने के साथ परिवर्तनशील लागतें बढ़ती जाती हैं अर्थात **कुल परिवर्तनशील लागतें** उत्पादन की मात्रा का फलन होती है। अर्थात

$$TVC = f(Q)$$

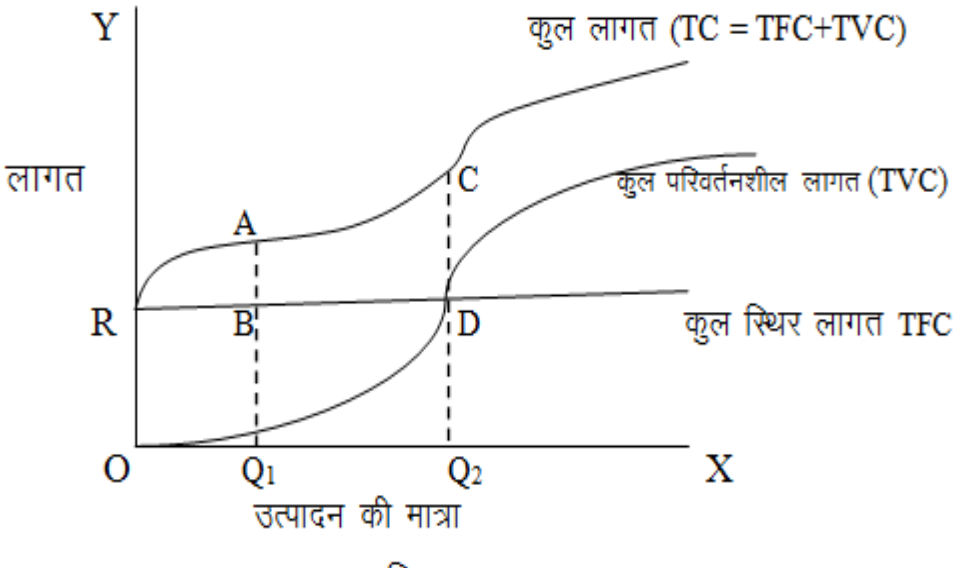

चित्र 7.2

चित्र से स्पष्ट है OQ_2 उत्पादन स्तर पर कुल लागतें CQ_2 आ रही हैं जिसमें CD परिवर्तनशील लागतें तथा DQ_2 स्थिर लागतें हैं। स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता एवं परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के मध्य यह अन्तर मात्र अल्पकाल में ही क्रियाशील होता है। दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।

2. औसत लागत (Average Cost)

प्रति इकाई कुल उत्पादन-लागत को औसत लागत कहते है। उत्पादन की कुल लागत को उसकी मात्रा से भाग देकर औसत उत्पादन लागत की जा सकती है।

सूक्ष्मगत आर्थिक विश्लेषण में कुल उत्पादन लागत की धारणा का जितना महत्व है उतना ही महत्व प्रति इकाई अथवा औसत लागत का है। कुल लागत, स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत की उपयुक्त व्याख्या को औसत लागत, औसत स्थिर लागत तथा औसत परिवर्तनशील लागत के रूप में भी देखा जा सकता है।

A. औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost)

यदि निश्चित उत्पादन में आई कुल स्थिर लागत (TFC) को उसकी उत्पादित मात्रा में भाग दें तो औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है।

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{कुल उत्पादन (Q)}}$$

चित्र 7.3

औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र सदैव बाएं से दाएं नीचे गिरता हुआ होता है क्योंकि कुल स्थिर लागत (TFC) अपरिवर्तनीय रहती है और जैसे जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है औसत स्थिर लागत (AFC) घटती जाती है। परन्तु औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र कभी भी X अक्ष को छू नहीं सकता अर्थात कुल स्थिर लागत (TFC) कभी भी शून्य नहीं हो सकती। इसका आकार **आयताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbola)** के समान होता है।

B. औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost)

औसत परिवर्तित लागत प्रति इकाई कुल परिवर्तित लागत है। औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) कुल परिवर्तनशील लागत तथा उत्पादन की मात्रा का भागफल होता है। दूसरे शब्दों में यदि कुल परिवर्तनशील लागत को उत्पादित मात्रा से भाग दें तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होगी।

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Q)}}$$

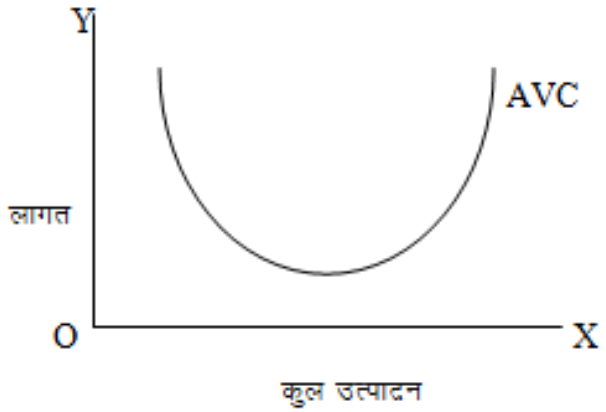

चित्र 7.4

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की प्रवृति उत्पादन में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों की उत्पादकता पर निर्भर करती है। **प्रतिफल के नियमों** के अनुसार जब परिवर्तनशील साधनों की मात्राओं को लगातार बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में उत्पादन बढ़ता है फिर स्थिर हो जाता है तथा तत्पश्चात घटने लगता है। चूँकि बढ़ते हुए उत्पादन का अर्थ घटती हुई लागत से है। अतः यदि लागत की दृष्टिकोण से देखें तो उत्पादन में लगातार वृद्धि होने पर प्रारम्भ में लागत गिरती है फिर स्थिर हो जाती है तत्पश्चात बढ़नें लगती है।

C. औसत कुल लागत (Average Total Cost/ Average Cost)

औसत कुल लागत, कुल लागत तथा कुल उत्पादन मात्रा का भागफल होती है अर्थात यदि वस्तु की निश्चित मात्रा को उत्पादित करने में आयी कुल लागत को उत्पादित मात्रा से भाग दें तो औसत लागत प्राप्त होती है। औसत लागत को प्रति इकाई लागत भी कहते हैं।

$$\text{औसत लागत (AC)} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{उत्पादित मात्रा (Q)}}$$

अल्पकाल में

$$TC = TFC + TVC$$

अतः

अतः $AC = AFC + AVC$

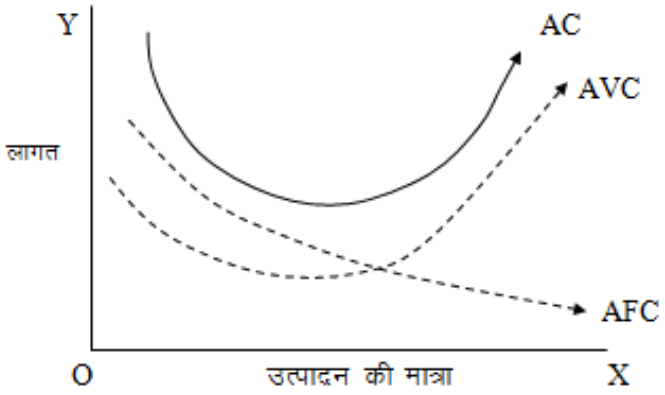

चित्र 7.5

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की भांति औसत लागत वक्र भी U आकार कां होता है। उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग है। उत्पादन में जैसे जैसे वृद्धि होती है कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता तथा परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। औसत स्थिर लागत की प्रवृति लगातार गिरने की होती है जबकि औसत परिवर्तनशील लागत पहले गिरती है और फिर एक न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के पश्चात पुनः बढ़ने लगती है। जब तक यह दोनों वक्र गिरते है औसत लागत वक्र भी गिरती है और न्यूनतम परिवर्तनशील लागत बिन्दु के पश्चात औसत लागत भी औसत परिवर्तनशील लागत की भांति ऊपर बढ़ने लगती है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है कुल लागतों में परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता व स्थिर लागत का अंश घटता जाता है।

3 सीमान्त लागत (Marginal Cost)

एक सीमान्त इकाई अर्थात अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में जो लागत आती है उसे **सीमान्त लागत** (Marginal Cost) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जितनी वृद्धि होती है उसे उस इकाई विशेष की **सीमान्त लागत** (Marginal Cost) कहा जाता है।

$$MC_n = TC_n - TC_{n-1}$$

जहाँ

MC_n = n इकाई की सीमान्त लागत, TC_n = nइकाईयों की कुल लागत, TC_{n-1} = n-1इकाईयों की कुल लागत

सीमान्त लागत (Marginal Cost), परिवर्तनशील लागत (Variable Cost) पर निर्भर करती है न कि स्थिर लागत (Fixed Cost) पर। अल्पकाल में सीमान्त लागत को कुल लागत में परिवर्तन की दर के रूप में भी देखा जा सकता है।

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

जहाँ

ΔTC = कुल लागत में परिवर्तन, ΔQ = कुल उत्पादन में परिवर्तन

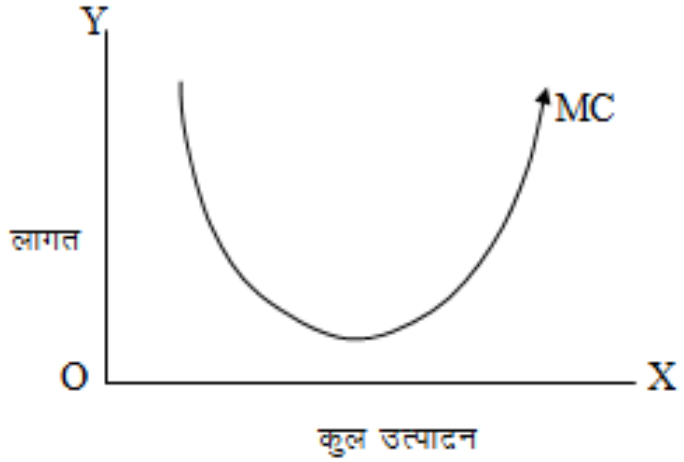

चित्र 7.6

सीमान्त लागत वक्र (Marginal Cost Curve) भी औसत लागत वक्र (Average Cost Curve) की भांति U आकार का होता है। इस आकार का मुख्य कारण परिवर्तनशील अनुपात नियम (Law of Variable Proportion) है। इस नियम के अनुसार प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि करने पर उस परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity-MP) बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, सीमान्त लागतें (Marginal Costs-MC) घटती हैं क्योंकि सीमान्त उत्पादकता एवं सीमान्त लागत दोनों के मध्य व्युत्क्रम (Reciprocal) सम्बन्ध पाया जाता है। उसके पश्चात उसी साधन में और अधिक वृद्धि करने पर साधन की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होकर स्थिर हो जाती है अर्थात सीमान्त लागत न्यूनतम होकर स्थिर हो जाती है। तत्पश्चात सीमान्त उत्पादकता घटने लगती है अर्थात सीमान्त लागत बढ़ने लगती है।

सीमान्त लागत व औसत लागत में सम्बन्ध (Relationship between Marginal Cost and Average Cost)

मूल्य सिद्धान्त में औसत लागत (Average Cost) तथा सीमान्त लागत (Marginal Cost) के मध्य का सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। औसत लागत (Average Cost) तथा सीमान्त लागत (Marginal Cost) दोनों की ही गणना कुल लागत (Total Cost) के आधार पर होती है। जहाँ औसत लागत प्रति इकाई की औसत लागत को प्रदर्शित करता है। वहीं सीमान्त लागत, सीमान्त इकाई (अन्तिम इकाई) की लागत को प्रदर्शित करता है।

सामान्य तर्क से समझा जा सकता है कि यदि सीमान्त लागत गिर रही है अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत आ रही है तो औसत लागत भी गिरती जाएगी और यदि सीमान्त लागतें बढ़ रही हैं अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में अधिक लागतें आ रही हैं तो औसत लागतें भी बढ़ने लगेंगी।

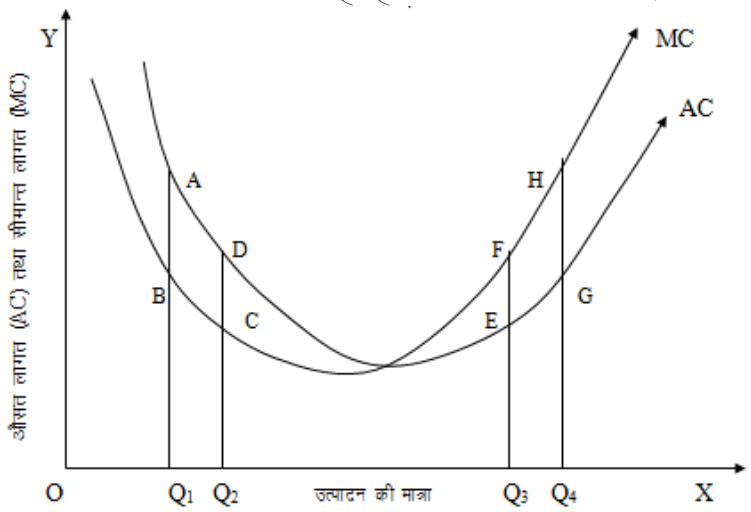

चित्र 7.7

चित्र के माध्यम से सीमान्त औसत सम्बन्ध को समझा जा सकता है। उत्पादन स्तर OQ_1 पर सीमान्त लागत BQ_1 तथा औसत लागत AQ_1 है। यदि उत्पादन स्तर को बढ़ाकर OQ_2 तक लाया जाए तो सीमान्त लागतें घट कर CQ_2 हो जाती है (अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत लगेगी) और फलस्वरूप औसत लागतें भी घटकर DQ_2 पर आ जाएगी। यह औसत लागत के घटने की प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि सीमान्त लागतें घटती रहेगी हैं। जैसे ही सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होगी, औसत लागतें बढ़ने लगेंगी।

उत्पादन स्तर OQ_3 पर सीमान्त लागत FQ_3 है जबकि औसत लागत EQ_3 है। उत्पादन स्तर यदि बढ़ाकर OQ_4 किया जाता है तो सीमान्त लागत HQ_4 हो जाती है (यानि अतिरिक्त इकाईयों के निर्माण में अधिक लागत लगी) फलस्वरूप औसत लागत भी बढ़ जाता है। स्पष्टतया जब तक सीमान्त लागतें गिरती हैं औसत लागत भी गिरती है और जब सीमान्त लागत, औसत लागत से अधिक होने लगती है तो औसत लागतें बढ़ने लगती है।

7.4 दीर्घकालीन लागत वक्र (Long-run Cost Curve)

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनशील होता है। फलस्वरूप दीर्घकाल में लागत को स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत के रूप में विखण्डित नहीं कर सकते।

7.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long run Average Cost Curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long run Average Cost Curve) की दीर्घकालीन कुल लागत वक्र (Long run Total Cost Curve)) की सहायता से प्राप्त किया जाता है। दीर्घकालीन औसत लागत कुल लागत तथा उत्पादित मात्रा का भागफल है।

$$LAC = \frac{LTC}{q}$$

जहाँ LAC = दीर्घकालीन औसत लागत

LTC = दीर्घकालीन कुल लागत

q = उत्पादन की मात्रा

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long run Average Cost Curve- LAC) उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की माँग बढ़ जाती है तो उत्पादक बढ़ी माँग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट में विस्तार कर सकते हैं अथवा बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी होता है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

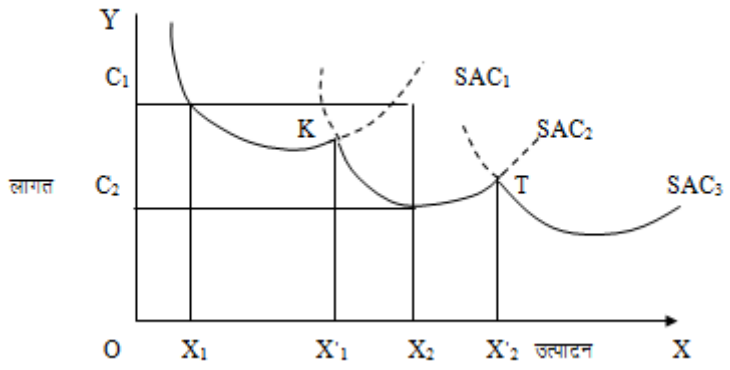

चित्र 7.8

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) की व्याख्या सबसे सरल परिस्थित में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों (सूक्ष्म, मध्यम तथा वृहत) के रूप में विद्यमान रहता हैं। चित्र में इस स्थिति की व्याख्या की गयी है। सूक्ष्म आकार के प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC_1, मध्यम आकार प्लाण्ट का SAC_2 तथा दीर्घ आकार का SAC_3 द्वारा प्रदर्शित है।

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों में से किसी एक को चुन सकता है। चित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीन प्लाण्ट में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करेगा। यदि फर्म OX_1 मात्रा उत्पादित करती है तब **न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट** का चुनाव किया जाएगा। यदि मात्रा OX_2 हो जाए तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर **मध्य आकार वाले प्लाण्ट** पर पहुँच जाएगा क्योंकि यदि वह OX_2 उत्पादन पहले प्लाण्ट पर करता तो औसत लागत अधिक आती व उसे हानि होती। OX'_1 तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। इसके पश्चात इस प्लाण्ट पर लागतें ज्यादा आएगी और वह अगले प्लाण्ट की ओर हस्तांतरित हो जाएगा। OX'_2 उत्पादन के पश्चात वह **वृहत प्लाण्ट** (SAC_3) की और हस्तांतरित होगा क्योंकि अब उस पर लागत कम आएगी।

अतः दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार को बदलने की स्वतंत्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी, जो न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन दे सके। परन्तु दीर्घकाल में उद्यमी का चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न आकार वाले प्लाण्ट उपस्थित रहते हैं तथा उसे उनमें से किसी एक का चुनाव करना होता है।

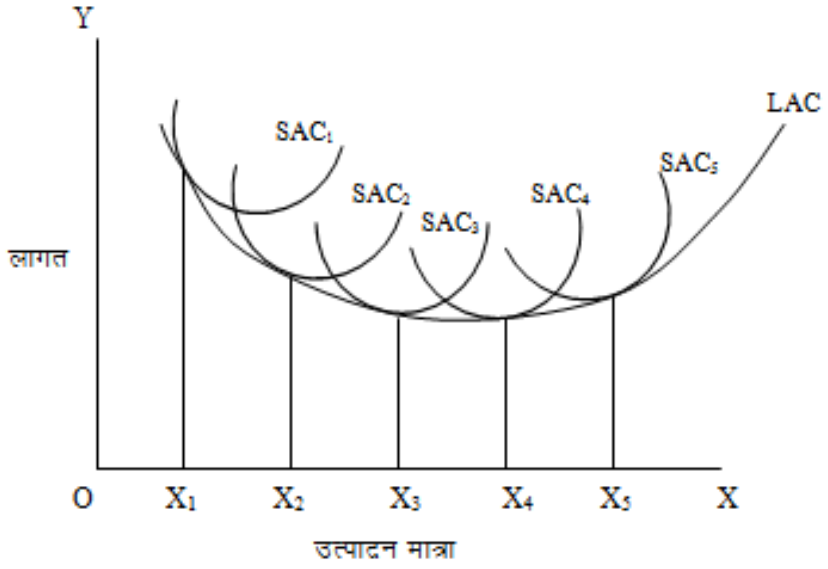

चित्र 7.9

चित्र में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को प्रदर्शित किया गया है जोकि कई अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं का बिन्दु पथ (locus) है। चित्र में अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से दर्शाया गया है कि जैसे-जैसे उत्पादन का स्तर बढ़ता है, उत्पादक एक प्लाण्ट से दूसरे प्लाण्ट पर हस्तांतरित होता जाता है। अतः दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को **आवरण वक्र (envelope curve)** भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक औसत लागत वक्रों को घेरता है।

7.4.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long-run Average Cost Curve) की सहायता से की जा सकती है। जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) एवं अल्पकालीन औसत लागत (SAC) के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं औसत लागत के मध्य होता है।

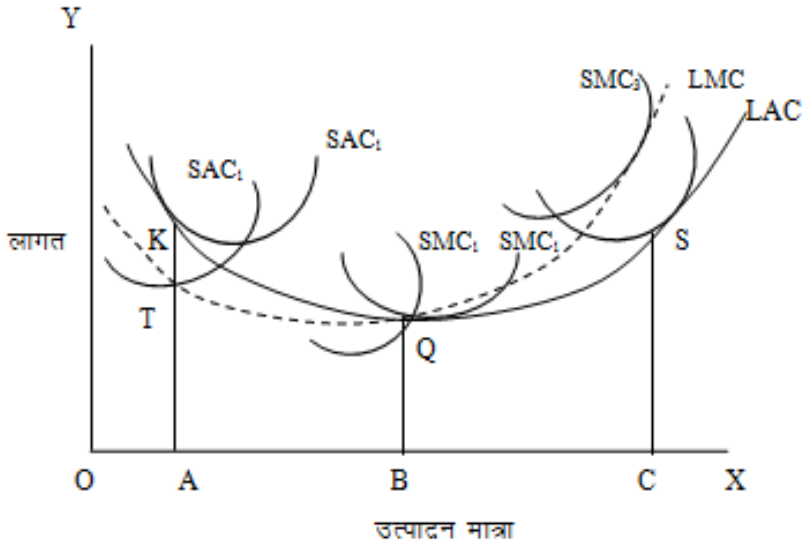

चित्र 7.10

चित्र में इस सम्बन्ध को दर्शाया गया है। जहाँ कहीं भी अल्पकालीन औसत लागत (SAC) वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long-run Average Cost Curve) वक्र का स्पर्श करता है वहां उससे सम्बंधित क्रमशः SMC तथा दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve)परस्पर बराबर होते हैं। जब तक दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) तथा दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) की यह समानता अल्पकालीन औसत लागत (SAC) तथा दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है (बिन्दु K तथा T)। प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार पर, जहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) तथा अल्पकालीन औसत लागत (SAC) दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं (minimum points) पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहां दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) तथा अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि $\text{LMC} = \text{SMC} = \text{LAC} = SAC$ (बिन्दु Q पर)। इस प्रकार दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long-run Average Cost Curve) तथा दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve) में वही सम्बन्ध पाया जाता है जो अल्पकालीन औसत लागत (SAC) तथा अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) में है।

7.5 आगम वक्र (Revenue Curve)

एक उत्पादक अपने उत्पादन के बाजार में बिक्री से जो धनराशि प्राप्त करता है उसे **आगम** (Revenue) कहते हैं। प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना होता है। उत्पादन के साम्य बिन्दु पर पहुँचने के लिए वह आगम व लागत दोनों के मध्य तुलना करता है। अतः उत्पादक के लिए जितनी महत्वपूर्ण लागत पक्ष है उतना ही महत्वपूर्ण आगम पक्ष भी है।

7.5.1 आगम की विभिन्न अवधारणाएं (Different Concepts of Revenue)

फर्म को सही आर्थिक निर्णय लेने के लिए निम्न तीन प्रकार की आगम धारणाओं की जानकारी रखनी पड़ती है।

1. **कुल आगम (Total Revenue- TR) -** कुल आगम, उत्पादित मात्रा की बेची गयी इकाइयों से प्राप्त कुल धनराशि है। यदि कीमत P तथा बेची गयी मात्रा Q है तो **कुल आगम** प्राप्त होती है।

$$\text{कुल आगम (Total Revenue)} = \text{मूल्य x बेची गयी मात्रा}$$

$$TR = P \times Q$$

2. **औसत आगम (Average Revenue or AR) -** यदि वस्तु की निश्चित मात्रा की बिक्री से प्राप्त कुल आगम को बेची गयी मात्रा से भाग दें तो **औसत आगम** प्राप्त होती है।

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (q)}}$$

औसत आगम को प्रति इकाई आगम भी कहते हैं। स्पष्ट है कि औसत आगम का अभिप्राय वस्तु के प्रति इकाई मूल्य से है।

3. **सीमान्त आगम (Marginal Revenue)-** सीमान्त आगम, अतिरिक्त बेची गयी इकाईयों का औसत आगम (Average Revenue) होता है। यदि अतिरिक्त कुल आगम TR है तथा अतिरिक्त इकाईयाँ Q हैं तो:

$$\text{सीमान्त आगम (MR)} = \frac{\Delta TR}{\Delta Q}$$

दूसरे शब्दों में सीमान्त आगम का अभिप्राय एक अतिरिक्त इकाई की बिक्री से प्राप्त आगम से है।

जहाँ

$$MR_n = TR_n - TR_{n-1}$$

MR_n = n इकाई की सीमान्त लागत

TR_n = n इकाईयों की कुल लागत

TR_{n-1} = n -1 इकाईयों की कुल लागत

7.5.2 औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र (Average Revenue Curve and Marginal Revenue Curve)

अब तक की व्याख्या से स्पष्ट है कि औसत आगम (Average Revenue) का अभिप्राय प्रति इकाई आगम से होता है। उत्पादक को प्राप्त होने वाला औसत आगम अथवा मूल्य वस्तु की माँग दशा पर निर्भर करता है। सामान्यतया माँग वक्र को ही **औसत आगम वक्र** (Average Revenue Curve) के रूप में देखा जाता है।

चित्र 7.11 से स्पष्ट है कि माँग वक्र बाएं से दाएं गिरती हुई होती है जो इस मान्यता पर आधारित है कि यदि वस्तु की कम मात्रा बिक्री हेतु लाई जाती है तो औसत आगम अधिक और यदि अधिक मात्रा लायी

जाती है तो औसत आगम कम प्राप्त होगी। स्पष्ट है कि Q_1 मात्रा की बिक्री करने पर औसत आगम P_1 प्राप्त होगा। परन्तु यदि बिक्री की मात्रा बढ़ाकर Q_2 कर दी जाए तो मूल्य घटकर P_2 हो जाएगा।

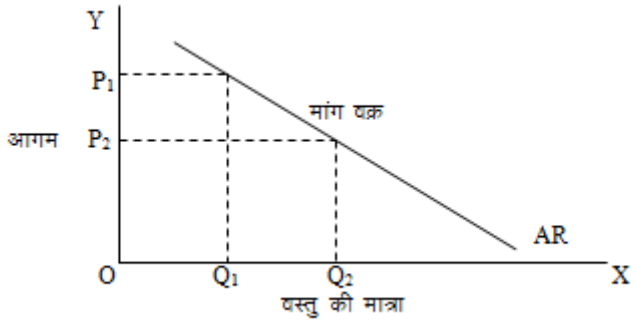

चित्र 7.11

7.5.3 औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध (Relationship between Average Revenue and Marginal Revenue)

औसत आगम उसी दिशा में परिवर्तित होगा जिस दिशा में सीमान्त आगम परिवर्तित हो रहा है। इस संदर्भ में तीन स्थितियां उल्लेखनीय हो सकती है-

1. यदि अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से औसत आगम के बराबर ही कुल आगम प्राप्त हो रहा है अर्थात अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री न तो अधिक और न ही कम मूल्य पर हो रही है तो औसत आगम व सीमान्त आगम बराबर रहेगा और औसत आगम व सीमान्त आगम वक्र एक X अक्ष के समानान्तर सीधी रेखा के रूप में होगा।

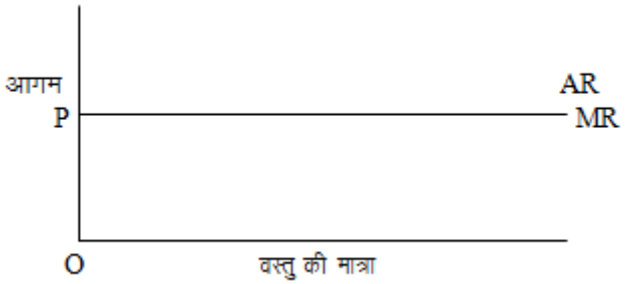

चित्र 7.12

चित्र 7.12 में इस स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। औसत आगम P प्राप्त हो रहा है और अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से भी P मूल्य ही प्राप्त हो रहा है। अतः AR व MR रेखा एक ही होगी जोकि X के समानान्तर होगी।

2. यदि अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से पिछले औसत आगम (AR) से अधिक औसत आगम अर्थात मूल्य प्राप्त हो रहा है तो सीमान्त आगम (MR) वक्र औसत आगम वक्र के ऊपर स्थित होगा तथा औसत आगम वक्र (AC) बाएं से दाएं ऊपर उठेगी।

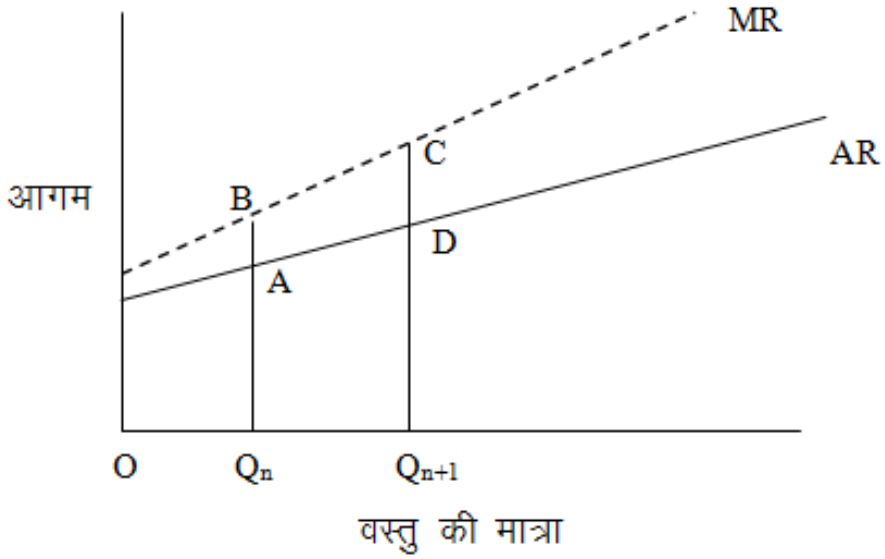

चित्र 7.13

चित्र 7.13 से स्पष्ट है कि n इकाइयों के उत्पादन पर औसत आगम AQ_n तथा सीमान्त आगम BQ_n प्राप्त हो रहा है। अब यदि Q_{n+1} इकाई बेची जाती है तो सीमान्त आगम CQ_{n+1} प्राप्त होता है। इसके कारण औसत आगम भी AQ_n से बढ़कर DQ_{n+1} हो जाएगा।

3. यदि 7.14 अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से पिछले इकाइयों की तुलना में कम औसत आगम/मूल्य (Average Revenue = Price) प्राप्त होता है तो सीमान्त आगम (MR) वक्र औसत आगम वक्र (AC) के नीचे स्थित होगी तथा औसत आगम वक्र (AC) बांए से दाएं नीचे झुकती हुई होगी।

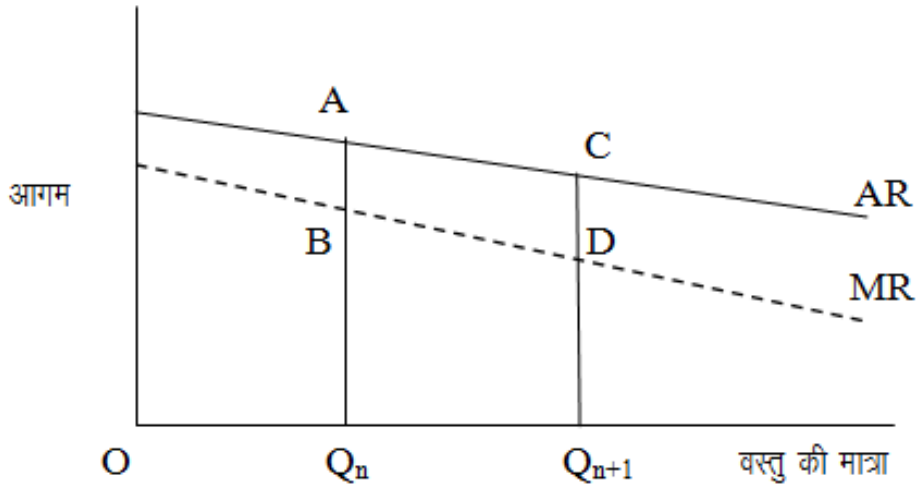

चित्र 7.14

चित्र 7.14 से स्पष्ट है कि Q_n मात्रा की बिक्री पर औसत आगम AQ_n तथा सीमान्त आगम BQ_n प्राप्त हो रहा है। अब यदि एक अतिरिक्त इकाई Q_{n+1} की बिक्री होती है तो सीमान्त आगम तुलनात्मक रूप से कम यदि DQ_{n+1} ही प्राप्त होगी। फलस्वरूप औसत आगम वक्र भी गिरेगा।

7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. निम्नांकित में से कौन सा वक्र U आकार का नहीं होता है?

a. AVC वक्र b. AFC वक्र

c. AC वक्र d. MC वक्र

2. कुल लागत निम्नांकित में से किसके बराबर होती है?

a. स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत b. औसत + सीमान्त लागत

c. कच्चे माल की लागत + श्रम लागत d. यातायात व्यय + स्थापित लागत

3. निम्नलिखित में से कौन स्थिर लागत से सम्बंधित है?

a. कच्चे माल की कीमत b. सम्पत्ति का बीमा शुल्क

c. मजदूरी d. यातायात व्यय

7.7 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि मौद्रिक लागतों से अभिप्राय उस मौद्रिक व्यय से है जो उत्पादक द्वारा उत्पादन क्रिया के दौरान किया जाता है। मौद्रिक लागतों के तीन भाग - दृश्य लागतें, अदृश्य लागतें तथा सामान्य लाभ होते हैं। वास्तविक लागतों से अभिप्राय उस मेहनत, प्रयास, त्याग व श्रम से है जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है। किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई में उत्पादित करने में आने वाली अवसर लागत से अभिप्राय दूसरे वस्तु की उस उत्पादन मात्रा से है जिसके उत्पादन का परित्याग किया जा रहा है। कुल लागत के दो खण्ड स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत है। उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता व परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। सीमान्त लागत का अभिप्राय वस्तु की अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत से है। कुल आगम का अर्थ वस्तु की बिक्री से प्राप्त कुल धनराशि से है। सीमान्त आगम का अर्थ अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से प्राप्त आगम से है।

7.8 शब्दावली (Glossary)

- **लाभ (Profit) -** उत्पादक के कुल आगम व कुल लागत के मध्य के अन्तर को लाभ कहते हैं।
- **सीमान्त (Marginal) –** एक अतिरिक्त इकाई
- **अल्पकाल (Short run) -** वह समयावधि जिसमें साधनों के मध्य समायोजन एक निश्चित स्तर तक ही सम्भव होता है उसे अल्पकाल कहते हैं।
- **दीर्घकाल (Long run) -** वह समयावधि जिसमें साधनों में यथावांछित समायोजन किया जा सकता है उसे दीर्घकाल कहते हैं।
- **सामान्य लाभ (Normal profit) -** लागत का वह अंश जिसे उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने के लिए किया जाता है।
- **अतिरिक्त लाभ (Super normal Profit) -** सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो भी लाभ प्राप्त होता है उसे अतिरिक्त लाभ कहते हैं।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. b 2.a 3. a

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद ।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

7.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. औसत लागत क्या है? औसत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
2. "अल्पकाल में सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करेगी" - व्याख्या कीजिए।
3. अवसर लागत की धारणा को समझाइए। अवसर लागत का अर्थशास्त्र में क्या महत्व है?
4. फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम की धारणाओं के बीच अन्तर बताइए। औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य किस प्रकार का सम्बन्ध होता है?

इकाई - 8 उत्पादन फलन और परिवर्तनशील अनुपातों का नियम
(Production Function and Law of Variable Proportions)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)
8.2 उद्देश्य (Objective)
8.3 उत्पादन फलन (Production Function)
8.3.1 उत्पादन फलन का अर्थ (Meaning of Production Function)
8.3.2 उत्पादन फलन की परिभाषा (Definition of Production Function)
8.3.3 उत्पादन फलन की विशेषताएं (Characteristics of the Production Function)
8.3.4 उत्पादन फलन में परिवर्तन (Change in Production Function)
8.3.5 उत्पादन फलन के नियम के अध्ययन की विधियाँ (Methods of Study the Law of Production Function)
8. 4 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions)
8.4.1 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम का अर्थ (Meaning of Law of Variable Proportions)
8.4.2 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की परिभाषा (Definition of Law of Variable Proportions)
8.4.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की व्याख्या (Explaination of Law of Variable Proportions)
8.4.4 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्यावहारिकता (Applicability of the (Law of Variable Proportions)
8.4.5 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व (Importance of Law of Variable Proportions)
8.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
8.6 सारांश (Summary)
8.7 शब्दावली (Glossary)
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
8.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

एक उत्पादक का उद्देश्य अपने उत्पादन से अधिकतम लाभ कमाना होता है। इस दृष्टिकोण से वह आगतों का श्रेष्ठतम व अनुकूलतम तरीके से प्रयोग करके अधिकतम निर्गत (output) प्राप्त करना चाहता है। वह आगतों का विभिन्न संयोगों में प्रयोग कर सकता है। आगतों के संयोगों में यदि परिवर्तन किया जाता है तो उसका निर्गत की मात्रा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह आगत-निर्गत के बीच के प्राविधिक (technical) सम्बन्ध उत्पादक के लिए सदैव रोचक विषय सामग्री होते हैं। इस अध्याय में हम इसी आगत-निर्गत सम्बन्ध का विश्लेषण करेंगे तथा उत्पादन के नियमों का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य (Objective)

यह इकाई आपको उत्पादन के विभिन्न पहलुओं विशेषकर आगत-निर्गत सम्बन्धों व आगत में परिवर्तन के प्रभावों से आपको अवगत कराएगी। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :-

- ✓ आगत व निर्गत के मध्य किस प्रकार के तकनीकी सम्बन्ध पाए जाते हैं।
- ✓ आगत में वृद्धि निर्गत को किस प्रकार से प्रभावित करेगी।
- ✓ आगत में वृद्धि किस प्रकार से की जा सकती है।
- ✓ उत्पादन के नियम क्या हैं और इसका अध्ययन कैसे किया जाता है?
- ✓ परिवर्तनशील अनुपात नियम (Law of Variable Proportions) क्या है?

8.3 उत्पादन फलन (Production Function)

उत्पादन के सिद्धान्त का प्रथम स्तम्भ उत्पादन फलन है। उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के सामुहिक प्रयत्नों का परिणाम है। उत्पत्ति के चार आधारभूत साधन- भूमि, पूँजी, श्रम एवं साहसी परस्पर विभिन्न अनुपात में एकत्रित एवं कार्यशील होकर उत्पादन करते हैं। उत्पादन फलन एक प्राविधिक अथवा तकनीकी सम्बन्ध है जो यह बताता है कि आगतों (साधनों) की निश्चित मात्राओं का प्रयोग करके निर्गत (उत्पादन) की अधिकतम कितनी मात्रा प्राप्त की जा सकती है। उत्पादन फलन यह भी बताता है कि निर्गत (उत्पादन) की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने के लिए आगतों (साधनों) की कितनी मात्राओं की आवश्यकता होती है।

8.3.1 उत्पादन फलन का अर्थ (Meaning of Production Function)

उत्पादन फलन, आगतों एवं निर्गतों की मात्राओं के फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह बताता है कि समय की एक निश्चित अवधि में आगतों के परिवर्तन से निर्गतों में किस प्रकार और कितनी मात्रा में परिवर्तन होता है।

मान लें, श्रम को L, पूँजी को K, उद्यमी को E, तथा उत्पादन (निर्गत) को Q से व्यक्त करें तो उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा-

$$Q = f(L, K, E)$$

उपरोक्त उत्पादन फलन यह व्यक्त करता है कि यदि आगतों में, श्रम की L, पूँजी की K तथा साहसी की E मात्रा का प्रयोग किया जाए तो अधिकतम निर्गत (उत्पादन) Q प्राप्त किया जा सकता है। यदि इसी उत्पादन फलन को अन्य शब्दों में व्यक्त करें तो निर्गत अर्थात उत्पादन की Q मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रम की न्यूनतम L, पूँजी की K तथा उद्यम की E मात्रा की आवश्यकता होगी।

8.3.2 उत्पादन फलन की परिभाषा (Definition of Production Function)

प्रो. स्टिगलर (Prof. Stigler) के शब्दों में, ***"उत्पादन फलन उत्पादकीय सेवाओं की आगत की दरों और वस्तु के उत्पादन की दर के बीच संबंध को दिया गया नाम है। यह अर्थशास्त्री के तकनीकी ज्ञान का सारांश है। (The production function is the name given to the relationship between rates of input of productive services and the rate of output of product. It is the economist's summary of technical knowledge.)"***

8.3.3 उत्पादन फलन की विशेषताएं (Characteristics of the Production Function)

1. उत्पादन फलन, उत्पत्ति के साधनों की मात्रा एवं उत्पादित वस्तु की मात्रा के भौतिक संबंधों को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार उत्पादन फलन शुद्धतः एक तकनीकी अथवा अभियन्त्रिक धारणा है।
2. उत्पादन फलन का सम्बन्ध उत्पत्ति साधनों की कीमतों एवं उत्पादित वस्तुओं की कीमतों से नहीं बल्कि साधनों एवं उत्पादन की मात्रा से है।
3. उत्पादन फलन का सम्बन्ध समयावधि से है अर्थात उत्पादन की समयावधि के अनुसार उत्पादन फलन का स्वरूप बदलता रहता है।
4. उत्पादन फलन में साधनों से स्थानापन्नता का गुण विद्यमान होता है अर्थात एक ही उत्पादन फलन के लिए एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का कम अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। वस्तुतः एक ही उत्पादन मात्रा को प्राप्त करने के लिए परिवर्तनशील साधनों के कई संयोगों को प्रयोग किया जा सकता है।

8.3.4 उत्पादन फलन में परिवर्तन (Change in Production Function)

उपयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उत्पादन फलन साधनों एवं उत्पादन के मध्य का एक प्राविधिक सम्बन्ध है। स्पष्टतया यदि साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होगा। मान लें कि एक उत्पादन फलन निम्नवत दिया है

$$Q = f(L, K, T, E)$$

जहाँ L श्रम, K पूँजी, T तकनीकी, E उद्यम एवं Q उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित कर रहा है।

अब मान लें कि साधनों की मात्रा में A गुना वृद्धि की जाती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में B गुना वृद्धि हो जाती है। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा।

$$B\,Q = f\,A\,(L, K, T, E)$$

उत्पादन के नियम के अन्तर्गत B तथा A के मध्य के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।

1. यदि B > A है तो इसका अर्थ है कि साधनों को A गुना बढ़ाने पर उत्पादन में A गुना से अधिक वृद्धि हुई। इसे वर्धमान अथवा बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing returns) की स्थिति अथवा ह्रासमान लागत (Diminishing cost) की स्थिति कहा जाएगा।
2. यदि B < A है तो इसका अर्थ है कि साधनों में A गुना वृद्धि होने पर उत्पादन में उससे कम मात्रा में वृद्धि होगी। इसे ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing returns) की स्थिति अथवा वर्द्धमान लागतों (Increasing cost) की स्थिति कहा जाएगा।

8.3.5 उत्पादन फलन के नियम के अध्ययन की विधियाँ (Methods of Study the Law of Production Function)

आगतों (Inputs) में वृद्धि का उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन उत्पादन के नियम (Law of Production) के अन्तर्गत होता है। इन आगतों की मात्रा को निम्न दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है।

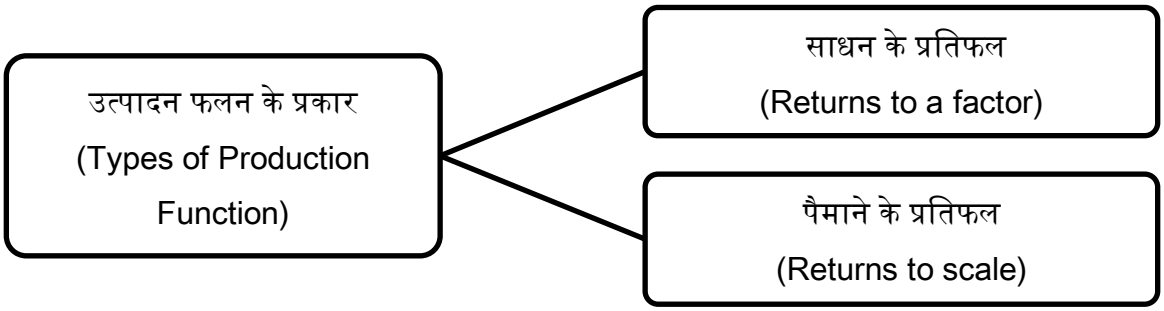

प्रथम विधि के अन्तर्गत जब उत्पादक अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए, उत्पादन के एक ही साधन में परिवर्तन करके, उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करना चाहता है, तो उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन के इस सम्बन्ध को **साधन के प्रतिफल (Return to a factor)** कहते है। इस अध्ययन को **परिवर्तनशील अनुपात नियम (Law of Variable Proportions)** भी कहते हैं।

उदाहरण उपरोक्त वर्णित उत्पादन फलन Q = *f* A (L, K, T, E) में यदि हम K, T व E की मात्रा को स्थिर रखते हुए मात्र L की मात्रा को बढ़ाकर इसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करें तो इसे अनुपात में परिवर्तन की संज्ञा दी जाएगी। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त करेगा

$$Q = f(L, K, T, E)$$

उत्पादन के नियम के अध्ययन की **दूसरी विधि** यह है कि उत्पादन फलन में स्थित समस्त आगतों में एक साथ परिवर्तन किया जाए। इसे **पैमाने के प्रतिफल (Returns to Scale)** कहा जाता है। यह अध्ययन **पैमाने के प्रतिफल नियम (Law of Returns to Scale)** में होता है। जिसको आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

उत्पादन के नियम की एक विशेषता यह भी है कि यह नियम अल्पकाल (Short Run) व दीर्घकाल (Long Run) में भिन्न प्रकार से क्रियान्वित होते है। अल्पकाल में चूँकि अधिकतर साधन स्थिर होते हैं। जिसके कारण मात्र कुछ साधनों में ही परिवर्तन कर पाना सम्भव होता है। अतः यह कहा जाता है कि अल्पकाल में केवल साधनों के अनुपात में ही परिवर्तन सम्भव है। लेकिन दीर्घकाल में समस्त साधनों को परिवर्तित करना सम्भव होता है अर्थात दीर्घकाल में उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन किया जा सकता है।

8. 4 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने तीनों नियमों (वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम) को मिलाकर एक नये नियम की रचना की है, जिसे **परिवर्ती अनुपातों के नियम** (**Law of Variable Proportions**) के नाम से जाना जाता है। यदि एक आगत परिवर्तनशील हो और अन्य सब आगत स्थिर, तो फर्म का उत्पादन फलन परिवर्तनशील अनुपात के नियम को प्रकट करता है। यदि अन्य साधनों को स्थिर रखकर

एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ा दी जाए, तो उत्पादन किस प्रकार परिवर्तित होता है यही इस नियम की विषय वस्तु है।

8.4.1 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम का अर्थ (Meaning of Law of Variable Proportions)

इस नियम के अनुसार, जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्ती साधनों की मात्रा बढ़ायी जाती है तो आरम्भ में कुल उत्पाद में वृद्धि बढ़ते अनुपात से होती है, किन्तु एक सीमा के बाद उत्पादन घटते अनुपात में बढ़ता है।

मान लीजिए कि भूमि, प्लांट और उपकरण स्थिर साधन हैं और श्रम परिवर्तनशील साधन है। जब अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मजदूरों की मात्रा लगातार बढ़ाई जाती है, तब स्थिर और परिवर्तनशील साधनों में अनुपात बदलता जाता है और परिवर्तनशील अनुपात का नियम (Law of Variable Proportions) लागू होने लगता है।

8.4.2 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की परिभाषा (Definition of Law of Variable Proportions)

प्रो. सेम्यूलसन (Prof. Samuelson) के शब्दों में, ***"यह नियम बतलाता है कि कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि से, तकनीक को स्थिर रहते हुए कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। परन्तु एक बिन्दु के बाद परिवर्ती साधनों की मात्रा में उतनी ही वृद्धि से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन कम होता जाएगा। (An increase in some inputs relative to the other comparatively fixed inputs will cause output to increase; but after a point, the extra output resulting from the same additions of inputs will become less and less.)"***

स्टिगलर (Stigler) के अनुसार, ***"जब कुछ साधनों को स्थिर रखकर एक साधन में समान वृद्धियाँ की जाती हैं, तो एक सीमा के बाद उत्पादन में होने वाली वृद्धियाँ कम हो जाएँगी अर्थात् सीमान्त उत्पादन घटने लगेगा। (As equal increments of one input are added the inputs of other productive services being held constant, beyond a certain point, the resulting increments of product will decrease, i.e., Marginal product will diminish.)"***

8.4.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की व्याख्या (Explanation of Law of Variable Proportions)

नियम यह है, ***"अन्य आगतों की मात्रा को स्थिर रखकर जब एक परिवर्तनशील आगत की मात्रा को समान मात्रा में लगातार बढ़ाया जाता है, तो कुल उत्पादन बढ़ता है, परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटती दर पर दूसरे शब्दों में अपरिवर्तनशील साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तन साधनों की और अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, तो एक ऐसा बिन्दु आता है जिसके बाद पहले सीमान्त उत्पादन,***

फिर औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घट जाएगा। (As the quantity of a variable input is increased by equal doses keeping the quantities of other inputs constant, total product will increase, but after a point at a diminishing rate. When more and more units of the variable factor are used, holding the quantities of fixed factors constant, a point is reached beyond which the marginal product, then the average and finally the total product will diminish.)"

हम निम्न तालिका (8.1) की सहायता से नियम को स्पष्ट कर सकते हैं, जहाँ स्थिर साधन 4 एकड़ भूमि पर श्रम की इकाईयाँ (परिवर्तनशील साधन) लगातार बढ़ाई जाती हैं और परिणामी उत्पादन प्राप्त होता है। उत्पादन फलन की पहले दो स्तम्भों में दिखाया गया है। कुल उत्पादन (Total Product) के स्तम्भ से औसत उत्पादन (Average Product) और सीमान्त उत्पादन (Marginal Product) निकाला गया है। स्तम्भ (2) को स्तम्भ (1) से विभाजित करके प्रति श्रमिक औसत उत्पादन (Average Product of Labour) प्राप्त होता है। सीमान्त उत्पादन (Marginal Product) एक अतिरिक्त श्रमिक लगाने से कुल उत्पादन में होने वाला परिवर्तन है। 3 श्रमिक 36 इकाइयों का उत्पादन करते हैं और 4 श्रमिक 48 का इस प्रकार सीमान्त उत्पादन 12 अर्थात 48-36 इकाइयां होगा।

तालिका 8.1 परिवर्तनशील अनुपात नियम

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पादन (AP)	सीमांत उत्पादन (MP)	उत्पादन की अवस्था (Stage)
1	8	8/1 = **8**	**8**	I (वृद्धमान/बढ़ते प्रतिफल)
2	20	20/2=**10**	20-8= **12**	
3	36	36/3= **12**	36-20= **16**	
4	48	48/4=**12**	48-36= **12**	II (ह्रासमान/घटते प्रतिफल)
5	55	55/5=**11**	55-48= **7**	
6	60	60/6=**10**	60-55= **5**	
7	60	60/7= **8.57**	60-60= **0**	
8	50	50/8= **6.25**	50-60= **-10**	III (ऋणात्मक प्रतिफल)

तालिका से यह स्पष्ट है कि पहले कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन बढ़ते हैं, फिर अधिकतम हो जाते हैं और अन्त में घटने लगते हैं। कुल उत्पादन तब अधिकतम होता है जब श्रम की 7 इकाइयों का प्रयोग किया जाता है और इसके बाद घट जाता है। औसत उत्पादन चौथीं इकाई तक बढ़ता जाता है जबकि सीमान्त उत्पादन श्रम की तीसरी इकाई पर अधिकतम है और इसके बाद वह भी गिरने लगता है। यह ध्यान रहे कि घटते उत्पादन का बिन्दु, कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन के लिए एक ही नहीं होता। सीमान्त उत्पादन पहले घटने लगता है, औसत उत्पादन उसके बाद और अन्त में कुल उत्पादन घटता है। इस निरीक्षण से स्पष्ट है कि घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति अन्त में तीनों उत्पादकता सिद्धान्तों में पाई जाती है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम को चित्र 8.1 में दर्शाया गया है। पहले कुल उत्पाद (TP) वक्र बढ़ती दर से बिन्दु A तक ऊपर की ओर बढ़ता है, जहाँ इसकी ढ़लान सबसे अधिक होती है। बिन्दु A के बाद कुल

उत्पादन घटती दर से बढ़ता है, जब तक कि यह उच्चतम बिन्दु C तक नहीं पहुँच जाता है और फिर यह गिरना शुरू कर देता है। कुल उत्पाद (TP) वक्र पर स्थित बिन्दु A को **मोड बिन्दु (Point of Inflexion)** कहते है जहाँ तक कुल उत्पादन में बढती दर से वृद्धि होती है और इस बिन्दु के पश्चात यह घटती दर से वृद्धि करने लगता है। कुल उत्पाद (TP) के साथ सीमान्त उत्पादन (MP) तथा औसत उत्पादन (AP) वक्र भी बढते है जब कुल उत्पाद (TP) की ढाल A बिन्दु पर अधिकतम होती है तो सीमान्त उत्पादन (MP) वक्र भी अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुँच जाता है और उसके बाद गिरने लगता है। औसत उत्पादन (AP) वक्र का उच्चतम बिन्दु E है जहाँ यह सीमान्त उत्पादन (MP) वक्र से मिलता है और जिस बिन्दु से कुल उत्पादन (TP) धीमी गति से बढ़ता है। जब कुल उत्पाद (TP) वक्र अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुँच जाता है तो बिन्दु F पर सीमान्त उत्पादन (MP) शून्य हो जाता है, और जब कुल उत्पाद (TP) गिरना शुरू करता है तो सीमान्त उत्पादन (MP) ऋणात्मक हो जाता है। यह कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन के बढ़ते, घटते और ऋणात्मक पक्ष वास्तव में परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएं हैं।

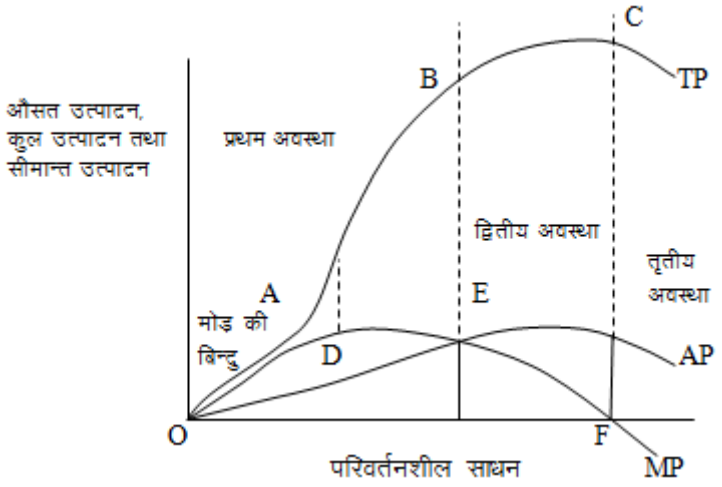

चित्र 8. 1

8.4.3.1 पहली अवस्था (बढ़ते प्रतिफल की अवस्था) (First stage (Stage of increasing returns)

इस अवस्था में औसत उत्पादन (AP) अधिकतम और सीमान्त उत्पादन (MP) के बराबर पहुँच जाता है। इस अवस्था को चित्र में मूल बिन्दु O से E तक व्यक्त किया गया है, जहाँ सीमान्त उत्पादन (MP) और औसत उत्पादन (AP) वक्र मिलते हैं। इसमें कुल उत्पाद (TP) वक्र भी तेजी से बढ़ता है। इस प्रकार इस अवस्था का सम्बन्ध बढ़ते प्रतिफलों से है।

प्रथम अवस्था में बढ़ते हुए प्रतिफल का मुख्य कारण यह है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जब स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाईयों को लगाया जाता है तो स्थिर साधनों का अधिक गहन (intensive) प्रयोग होता है जिससे उत्पादन तेजी से बढ़ता है। इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त इकाईयाँ ना लगने से स्थिर साधन का अधिकतम प्रयोग नहीं होता परन्तु जब परिवर्तनशील साधन की उचित मात्रा में इकाईयाँ लगाई जाती है तब श्रम विभाजन (Division of Labour) तथा विशिष्टीकरण (Specialization) के कारण प्रति इकाई उत्पादन में वृद्धि होती है और बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है। बढ़ते प्रतिफल का एक कारण यह भी होता है कि स्थिर साधन अविभाज्य (indivisible) होते है। जब ऐसे स्थिर

साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयां लगाई जाती है, तो उत्पादन लगाए गए साधनों के अनुपात से अधिक बढ़ता है। यही कारण **बढ़ते प्रतिफल के नियम (Law of Increasing Returns)** की ओर संकेत करते हैं।

8.4.3.2 दूसरी अवस्था (घटते प्रतिफल की अवस्था) (Second stage (Stage of diminishing returns))

इसके पश्चात प्रथम अवस्था के समाप्त होते ही स्थिर साधन (Fixed Factor) अपनी पूर्ण क्षमता (full capacity) पर कार्य करने लगते हैं। तत्पश्चात जब परिवर्तनशील साधन अर्थात श्रम को पुनः बढ़ाया जाता है तब स्थिर साधन की उत्पादकता स्थिर होने के कारण मात्र लागत बढ़ती जाती है और प्रतिफल घटने लगते हैं।

इस अवस्था में स्थिर साधनों और परिवर्ती साधनों के बीच आदर्श संयोग भंग हो जाता है। इनमें समन्वयता बिगड़ जाती है। इसके फलस्वरूप औसत उत्पाद व सीमान्त उत्पाद गिरने लगते हैं और कुल उत्पाद में वृद्धि कम अनुपात में ही संभव हो पाती है।

घटते प्रतिफल के नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the law of diminishing returns)

1. साधनों के संयोग के अनुपातों का परिवर्तन किया जा सकता है।
2. एक साधन परिवर्तनशील होता है जबकि अन्य स्थिर है।
3. परिवर्तनशील साधनों की सब इकाइयां समरूप होती है।
4. तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता यदि उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन हो जाता है, तो उत्पादन वक्र उसी के अनुसार सरक जाएंगे। परन्तु अन्त में नियम तो लागू होता ही है।
5. नियम यह मानकर चलता है कि स्थिति अल्पकालीन है क्योंकि दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।
6. वस्तु को भौतिक इकाइयों में मापा जाता है। यदि वस्तु को मुद्रा में मापा जाए तो कीमत बढ़ जाने पर उत्पादन में कमी होने पर भी घटते प्रतिफल की अपेक्षा बढ़ते प्रतिफल होंगे।

घटते प्रतिफल के नियम की व्यावहारिकता (Practicality of the law of diminishing returns)

घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति पुराना आर्थिक सिद्धान्त जिसे फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **टर्गट** (Turgat) ने 18वीं शताब्दी में प्रारम्भ किया था। **माल्थस** (Malthus) और **रिकार्डो** (Ricardo) ने इसका आगे विकास किया और मार्शल ने इस सिद्धान्त को बहुत ही परिष्कृत और उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया। **मार्शल** (Marshall) के शब्दों में ***"भूमि को जोतने में लगाई गई पूँजी और श्रम की मात्रा में वृद्धि से सामान्य रूप से उत्पादन की मात्रा में वृद्धि अनुपात में कम होती है, जब तक कि ऐसा न हो कि उसके साथ ही कृषि की कलाओं में भी सुधार हो जाए। (An increase in the capital and labour applied in the cultivation of land causes in general a less than proportionate increase in the amount of produce raised, unless it happens to coincide with an improvement in the arts of agriculture.)"***

घटते प्रतिफल का नियम सामान्य रूप से केवल कृषि और निस्सारक (extractive) उद्योगों पर ही लागू नहीं होता बल्कि इसका व्यवहार तो सार्वभौमिक है। यदि उत्पादन के साधनों के संयोग के अनुपातों को बदल दिया जाए तो उस साधन का औसत और सीमान्त उत्पादन घट जाएगा।

उदाहरणार्थ, यदि और मशीनें लगाकर एक प्लांट बढ़ा दिया जाए तो वह संभालना कठिन हो जाता है। उद्यमीय नियंत्रण और देखभाल शिथिल हो जाती है और घटता प्रतिफल शुरू हो जाता है। या फिर प्रशिक्षित श्रम या कच्चे माल की कमी हो सकती है जिससे उत्पादन घट जाता है। वास्तव में अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी घटते प्रतिफल के नियम का मूल कारण है। दुर्लभता का तत्व साधनों में पाया जाता है, क्योंकि उन्हें एक-दूसरे के स्थान पर स्थानापन्न नहीं किया जा सकता।

श्रीमती जोन राबिन्सन (Mrs Joan Robinson) इसकी व्याख्या इस प्रकार करती है, ***"घटते प्रतिफल का नियम वास्तव में जो व्यक्त करता है वह यह है कि उत्पादन के एक साधन को अन्य के स्थान पर स्थानापन्न करने की एक निश्चित सीमा है। दूसरे शब्दों में, साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत होती है। (What the Law of Diminishing Returns really states is that there is a limit to the extent to which one factor of production can be substituted for another, or, in other words, that the elasticity of substitution between factors is not infinite.)"***

मान लीजिए कि पटसन की कमी है। क्योंकि पटसन को किसी अन्य वस्तु से स्थानापन्न नहीं किया जा सकता, इसलिए लागत बढ़ जाएगी और घटता प्रतिफल शुरू हो जाएगा। इसका कारण यह है कि उद्योग के लिए पटसन की पूर्ति पूर्णलोचदार (Perfectly elastic supply) नहीं है। यदि दुर्लभ साधन कठोरता से स्थिर है और किसी अन्य साधन से बिल्कुल भी स्थानापन्न (subsitute) नहीं किया जा सकता, तो घटता प्रतिफल तुरन्त शुरू हो जाएगा। यदि कोई फैक्टरी बिजली की शक्ति से चलती है और उसका कोई स्थानापन्न नहीं है, तो बार-बार बिजली फेल होने से उत्पादन घट जाएगा और लागत अनुपात में बढ़ जाएगी क्योंकि फैक्टरी के पहले से कम घंटे चलने पर भी स्थिर लागतों पर खर्च होता ही रहेगा। यदि साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत (infinity) हो. तो स्थिर लागतों से अन्नत (infinity) उत्पादन किया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह होगा कि सब साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitute) हैं और घटते प्रतिफल का नियम बिल्कुल भी लागू नहीं होगा। भूमि के बजाय सरलता से श्रम और पूँजी को स्थानापन्न करके इन समस्याओं को हल कर लिया जाता है। परन्तु वास्तव में कोई दो साधन पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitute) नहीं होते। यही कारण है कि घटते प्रतिफल का नियम सब उद्योगों पर लागू होता है।

घटते प्रतिफल के नियम का महत्व (Importance of the law of diminishing returns)

विक्स्टीड (Wicksteed) के शब्दों में घटते प्रतिफल का नियम ***"उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम (the law of diminishing returns is as universal as the law of life itself)"*** इस नियम की सार्वभौमिक व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुंचा दिया है। यह नियम अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है। माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त इस तथ्य से ही निकलता है कि जनसंख्या में वृद्धि की अपेक्षा खाद्य सामग्री की पूर्ति अधिक तेजी से नहीं बढ़ती। इसका कारण यह है कि कृषि के क्षेत्र में घटते प्रतिफल का नियम कार्यशील रहता है। वास्तव में, माल्थस के नैराश्य (pessimism) के लिए ही यही नियम उत्तरदायी है। **रिकार्डो** (Ricardo) का **लगान सिद्धान्त** (Theory of Rent) भी इस नियम पर आधारित है। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अनुसार भूमि के विषय में घटते प्रतिफल के नियम

की क्रियाशीलता के कारण भूमिपति घटिया भूमि जोतने को विवश होते हैं जिससे लगान बढ़ता है। गहन खेती में भूमि के एक निश्चित टुकड़े पर श्रम और पूँजी की मात्राओं को लगाने से, इस नियम के क्रियाशील होने के कारण, उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता। इसी प्रकार माँग सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम और वितरण के सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

8.4.3.3 तीसरी अवस्था (ऋणात्मक सीमांत प्रतिफल की अवस्था) (Third Stage (Stage of negative marginal returns))

कोई भी उत्पादक उत्पादन की तीसरी अवस्था में उत्पादन करने को तैयार नहीं होगा, क्योंकि इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) घटने लगता है और सीमान्त उत्पादन (MP) ऋणात्मक हो जाता है। आठवां श्रमिक लगाने पर वास्तव में कुल उत्पादन 60 इकाइयों से घटकर 50 इकाइयां हो जाती हैं और सीमान्त उत्पादन (-) 10 इकाइयां चित्र में यह अवस्था बिन्दुकित रेखा CF से शुरू होती है जहाँ सीमान्त उत्पादन (MP) वक्र, अक्ष X के नीचे है। यहां भूमि के अनुपात में श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक है जिसके कारण खेती करना असंभव है। जब बिन्दु E के बाएँ को उत्पादन होता है, तो परिवर्तनशील आगत के अनुपात में स्थिर साधन अधिक मात्रा में है। बिन्दु F के दाईं ओर परिवर्तनशील साधन अधिकता से प्रयोग किया जा रहा है। इसलिए उत्पादन हमेशा इन अवस्थाओं के बीच की अवस्था में होगा।

इंस अवस्था में स्थिर साधनों एवं परिवर्ती साधनों में समन्वयता अत्यधिक खराब हो जाती है। स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि कुल उत्पाद की मात्रा गिरने लगती है अर्थात् सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। हाँ, यदि उत्पादन तकनीक में सुधार कर लिया जाए अथवा स्थिर साधनों के किसी स्थानापन्न की खोज कर ली जाए, तो इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय तक के लिए स्थगित किया जा सकता है।

8.4.4 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्यावहारिकता (Applicability of the Law of Variable Proportions)

अविभाज्यताओं (indivisibility) के कारण ही बढ़ते तथा घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। बढ़ते प्रतिफल उत्पादन की प्रथम अवस्था में इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि आरम्भ में परिवर्तनशील साधन (variable factor) की मात्रा में वृद्धि, स्थिर साधनों का पूर्ण उपभोग सम्भव बनाती है। परिवर्तनशील साधन (variable factor) की मात्रा की निरन्तर वृद्धि एक बिन्दु पर स्थिर साधन का पूर्ण विदोहन (full exploitation) कर लेती है। इस बिन्दु पर परिवर्तनशील साधन (variable factor) तथा स्थिर साधन (Fixed factor) का संयोग अनुपात अनुकूलतम (optimum) होता है। यदि इस अनुकूलतम बिन्दु के बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो स्थिर साधन अति उपयोग होने के कारण परिवर्तनशील साधन (variable factor) का औसत उत्पादन (AP) घटने लगता है। यही घटते प्रतिफल का नियम (law of diminishing returns) है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री **रिकार्डों (Ricardo)** एवं **माल्थस (Malthus)** ने इस सिद्धान्त को कृषि क्षेत्र पर लागू किया था। उनके अनुसार कृषि क्षेत्र तथा उससे सम्बंधित व्यवसाय में कुछ समय बाद घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। रिकार्डों (Ricardo) के अनुसार भूमि की सीमित मात्रा तथा ह्रासमान उर्वरा शक्ति के कारण कृषि क्षेत्र में घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने घटते प्रतिफल नियम को केवल कृषि क्षेत्र में लागू करके इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। परन्तु आधुनिक अर्थशात्रियों ने इस नियम को उद्योग उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू करके इस सिद्धान्त की व्यावहारिकता को स्वीकार करते हैं। यह एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। चाहे कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी सदैव घटते प्रतिफल को जन्म देगी।

श्रीमती जॉन राबिन्सन (Mrs Joan Robinson) उत्पत्ति के साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को घटते प्रतिफल का कारण मानती है। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न (imperfect substitute) होते है जिसके कारण स्थिर साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, **श्रीमती राबिन्सन** (Mrs Joan Robinson) के अनुसार साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत (infinity) नहीं है जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

8.4.5 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व (Importance of Law of Variable Proportions)

1. **अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम (Basic law of economics) -** यह नियम मात्र कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, मछली पालन, मकान निर्माण इत्यादि सभी उत्पादन क्षेत्रों में लागू होता है। अतः इसे एक सार्वभौमिक नियम कहा जाता है।
2. **माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार (Basis of Malthus population theory) -** माल्थस का सिद्धान्त यह बताता है कि देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि से कम होती है। खाद्यान्नों में कम वृद्धि का प्रमुख्य कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है।
3. **सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार (Basis of marginal productivity theory) -** इस सिद्धान्त में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार (reward) दिया जाता है। उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।
4. **रिकार्डों के लगान सिद्धान्त का आधार (Basis of Ricardo's rent theory)-** रिकार्डों की गहन एवं विस्तृत दोनों ही प्रकार की खेती में लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है। शहरी खेती में जब दिए गए भूखण्ड पर श्रम व पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग होता है तो उत्तरोत्तर (gradually) इकाइयों की उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई की तुलना में पहले की इकाइयों से जो बचत प्राप्त होती है। उसे ही रिकार्डों ने लगान कहा। इस प्रकार यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का परिणाम है।

8.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. उत्पादन फलन से क्या अभिप्राय है?
   (a) उत्पादन के बढ़ने के तरीके (b) साधन व उत्पादन की मात्रा
   (c) उत्पत्ति के साधनों का विस्तार (d) सीमान्त उपयोगिता का ह्रास
2. उत्पादन फलन निम्न में से किस प्रकार के सम्बन्ध को बताता है?
   (a) एक भौतिक सम्बन्ध (b) एक मौद्रिक सम्बन्ध
   (c) एक तकनीकी सम्बन्ध (d) कोई नहीं
3. अल्पकालीन उत्पादन फलन में साधनों का क्या बदलता है?
   (a) पैमाना (b) अनुपात
   (c) दोनों (d) कोई नहीं

4. दीर्घकालीन उत्पादन फलन में क्या बदलता है?

(a) पैमाना (b) अनुपात

(c) दोनों (d) कोई नहीं

5. परिवर्तनशील अनुपात के नियम का सम्बन्ध किस काल से है?

(a) अल्पकाल से है। (b) दीर्घकाल से है।

(c) दोनों से है। (d) किसी से नहीं है।

8.6 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि उत्पादन फलन एक तकनीकी विचार है जोकि आगतों और उत्पादन (निर्गत) के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। उत्पादन फलन में परिवर्तन करके ही उत्पादन के नियमों का अध्ययन किया जाता है। अल्पकाल में उत्पादन फलन में परिवर्तन साधनों का अनुपात परिवर्तित करते हैं जबकि दीर्घकाल के परिवर्तन उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। परिवर्तनशील अनुपात नियम के अन्तर्गत उत्पादन फलन के सभी साधनों को स्थिर रखते हुए मात्र एक साधन को परिवर्तित कर के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। यदि मात्र एक साधन को बढ़ाया जाता है तो कुल उत्पादन में तीन प्रकार की अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं। प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन बढ़ते हुए दर से बढ़ता है इसे वर्द्धमान प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। द्वितीय अवस्था में कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है इसे स्थिर प्रतिफल की अवस्था कहते हैं। तृतीय अवस्था में कुल उत्पादन घटने लगता है जिसे ह्रासमान उत्पादन की अवस्था कहा जाता है।

8.7 शब्दावली (Glossary)

- **उत्पादन फलन (Production Function) -** आगत और निर्गत के मध्य का तकनीकी सम्बन्ध
- **अनुपात में परिवर्तन (Change in ratio) -** उत्पादन फलन में एक साधन परिवर्तनशील परन्तु अन्य सभी साधनों को स्थिर मान कर जो उत्पादन में परिवर्तन आता है उसे अनुपात में परिवर्तन कहा जाता है।
- **पैमाने में परिवर्तन (Change in Scale) -** उत्पादन फलन में सभी साधन परिवर्तनशील
- **मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) -** वह बिन्दु जहाँ से सीमान्त लागत (MP) घटने लगती है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. b 2. b 3. b

4. a 5. a

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद ।

- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

8.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. उत्पादन फलन क्या है? इसकी सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. परिवर्तनशील अनुपात नियम की सचित्र व्याख्या कीजिए ।
3. अनुपात एवं पैमाने में परिवर्तन के मध्य क्या अन्तर है? उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से व्याख्या कीजिए।

इकाई – 9 समोत्पाद वक्र, साधनों का न्यूनतम लागत संयोग एवं पैमाने के प्रतिफल (Iso-Quants, Least Cost Combination of Factors and Returns to Scale)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)
9.2 उद्देश्य (Objectives)
9.3 समोत्पाद वक्र (Iso-Quant Curve)
9.3.1 समोत्पाद वक्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Iso-Quant Curve)
9.3.2 समोत्पाद वक्र की मान्यताएं (Assumptions of Iso-Quant Curve)
9.3.3 समोत्पाद वक्र की विशेषताएं (Characteristics of Iso-Quant Curve)
9.4 सम लागत रेखा (Iso Cost Line)
9.5 साधनों का अनुकूलतम संयोग (Optimum combination of factors)
9.6 पैमाने के प्रतिफल का नियम (Law of Returns to Scale)
9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
9.8 सारांश (Summary)
9.9 शब्दावली (Glossary)
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस खण्ड के पूर्व के अध्यायों में आप उत्पादन की लागत व आगम से सम्बंधित विभिन्न धारणाओं का अध्ययन कर चुके हैं। साथ ही आप उत्पादन फलन का अध्ययन भी कर चुके हैं। आपने देखा कि उत्पादन फलन एक तकनीकी धारणा है जो आगत व निर्गत (Input and Output) के मध्य के भौतिक सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। अल्पकाल में उत्पादन फलन के सभी साधनों में एक साथ परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है। वस्तुतः अल्पकाल में कुछ साधन स्थिर रहते हैं तथा कुछ ही परिवर्तित होते हैं। अर्थशास्त्री इसे साधनों के अनुपातों में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं परन्तु दीर्घकाल में समय पर्याप्त होता है तथा उत्पादन फलन में उपस्थित सभी साधनों को एक साथ बढ़ाया या घटाया जा सकता है। इसे अर्थशास्त्री पैमाने में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं।

इस अध्याय में हम पैमाने में परिवर्तन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करेंगे। पैमाने के प्रतिफलों का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ नए आर्थिक उपकरणों जैसे समोत्पाद वक्र (Iso Quant Curve) और सम लागत वक्र (Iso Cost Curve) जैसे उपकरणों की आवश्यकता होगी। अतः इस अध्याय के प्रारम्भ में हम इन धारणाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि

- ✓ सम उत्पाद वक्र की धारणा क्या है?
- ✓ सम उत्पाद वक्र की विशेषताएं क्या हैं?
- ✓ सम लागत रेखा क्या है?
- ✓ साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का सिद्धान्त क्या है?
- ✓ पैमाने के प्रतिफलों का उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से क्या महत्व है?
- ✓ पैमाने में परिवर्तन से कैसे प्रतिफल प्राप्त होते हैं?

9.3 समोत्पाद वक्र (Iso-Quant Curve)

समोत्पाद वक्र (Iso-Quant Curve), माँग सिद्धान्त के तटस्थता वक्र (Indifference Curve) के जैसा ही होता है। जिस प्रकार तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, ठीक उसी प्रकार **"समोत्पाद वक्र उत्पत्ति के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उत्पादन की एक समान मात्रा प्राप्त की जा सकती है।"**

9.3.1 समोत्पाद वक्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Iso-Quant Curve)

समोत्पाद-वक्र (Iso-Quant Curve) वह वक्र है जिस पर श्रम और पूँजी के विभिन्न संयोग समान उत्पादन प्रकट करते हैं।

कोहेन (Cohen) एवं **साइर्ट** (Cyert) के अनुसार ***एक समोत्पाद-वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त-योग्य दर स्थिर होती है। (An isoproduct curve is a curve along which the maximum achievable rate of production is constant.)"*** इसे उत्पादन उदासीनता वक्र (production indifference curve) या स्थिर उत्पादन वक्र भी कहते हैं।

उत्पादक, उत्पादन की एक निश्चित मात्रा दो साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा उत्पादित कर सकता है। जैसे - यदि 100 कुन्तल चावल श्रम की 1 इकाई तथा पूँजी की 15 इकाइयों द्वारा उत्पादित किया जा सकता है, उतना ही चावल 2 इकाई श्रमिक तथा 12 इकाई पूँजी द्वारा भी उत्पन्न किया जा सकता है, इसी प्रकार उतना ही चावल 3 श्रमिक व 10 इकाई पूँजी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार 100 कुन्तल चावल उत्पन्न करने वाले श्रम व पूँजी के बहुत से संयोग हो सकते हैं जैसा कि सारणी 9.1 से स्पष्ट है।

सारणी 9.1 - समोत्पाद अनुसूची एवं तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
(Iso-Quant Schedule and Marginal Rate of Technical Substitution- MRTS)

संयोग (Combination)	श्रम इकाइयाँ (Labour's Unit)	पूँजी इकाइयाँ (Capital's Unit)	कुल उत्पादन (Total Production)	पूँजी के लिए प्रतिस्थापन सीमान्त दर
A	1 +	15	100	-
B	2 +	12	100	3 : 1
C	3 +	10	100	2 : 1
D	4 +	9	100	1 : 1

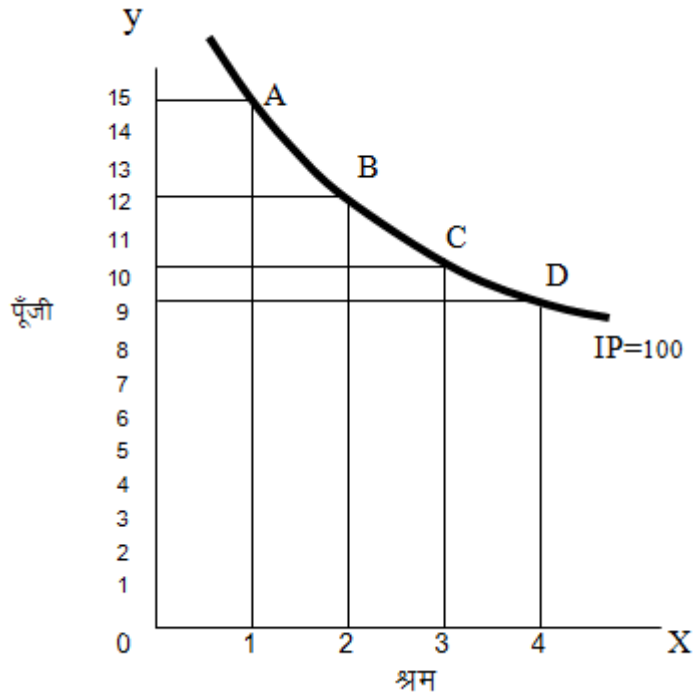

चित्र 9.1

अब यदि इन संयोगों को एक चित्र के माध्यम से व्यक्त करें तो हमें समोत्पाद वक्र (Iso-Quant Curve) प्राप्त होगा। चित्र 9.1 में OX अक्ष पर श्रम की इकाइयां और OY अक्ष पर पूँजी की इकाइयां प्रदर्शित की गई है। A, B, C, D बिन्दु पूँजी और श्रम के विभिन्न संयोगों को व्यक्त करते हैं। A बिन्दु पर उत्पादक 1

श्रमिक तथा पूँजी की 15 इकाइयों से जितना उत्पादन (100 कुन्तल चावल) प्राप्त करता है, उतना ही उत्पादन B बिन्दु पर 2 श्रमिक व पूँजी की 12 इकाइयों से प्राप्त करता है अथवा उतना ही उत्पादन उसे C बिन्दु पर 3 श्रमिक व पूँजी की 10 इकाइयों अथवा D बिन्दु पर 4 श्रमिक व पूँजी की 9 इकाइयों से मिलेगा। यदि हम A, B, C, D बिन्दुओं को जोड़ दें तो हमें एक समोत्पाद वक्र (IP = 100) मिल जाता है। इसका प्रत्येक बिन्दु उत्पादक को समान उत्पादन देता है। इसलिए उत्पादक विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन (neutral) रहता है। अतः इसे उत्पादन की उदासीनता रेखा भी कहा जा सकता हैं। अतः समोत्पादक वक्र दो उत्पत्ति के साधनों के अविभिन्न संयोग को प्रदर्शित करते हैं जो कि एक निश्चित मात्रा का उत्पादन प्रदान करते हैं। समोत्पाद वक्रों को अंग्रेजी में कई नामों से सूचित किया जा सकता है, जैसे - Equal Product Curves, Iso-product Curves और Iso-quant Curves.

9.3.2 समोत्पाद वक्र की मान्यताएं (Assumptions of Iso-Quant Curve)

समोत्पाद वक्रों की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. **उत्पादन के दो साधन (Two means of production) -** इन वक्रों के चित्रों को बनाते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि उत्पादन के मात्र दो साधन ही किसी वस्तु का उत्पादन करने में सक्षम हैं।
2. **स्थिर तकनीक (Constant technology) -** यह मान लिया जाता है कि उत्पादन तकनीक पहले से ज्ञात है तथा वह स्थिर रहती है।
3. **विभाज्य साधन (Divisible factor) -** समोत्पाद वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि साधन को छोटे- छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है।
4. **कुशल संयोग (Optimum Combination) -** यह मान लिया जाता है कि दी हुई तकनीक के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों का अधिकतम कुशलता से प्रयोग किया जाता है।

9.3.3 समोत्पाद वक्र की विशेषताएं (Characteristics of Iso-Quant Curve)

समोत्पाद वक्रों की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. **समान उत्पादन के संयोग (Combination of Equal Output) -** समोत्पाद वक्र के सभी बिन्दु समान उत्पादन प्रदान करने वाली वस्तुओं के संयोगों को प्रदर्शित करते हैं।
2. **समोत्पाद वक्र दायी ओर नीचे को झुका होता है (The isoproduct curve slopes downward to the right) -** सामान्यतः समोत्पाद वक्र का ढाल बायें से दाहिनी ओर नीचे की ओर होता है अर्थात ऋणात्मक होता है। इसका आशय यह है कि एक फर्म यदि एक समान उत्पादन रखते हुए एक साधन का क्रय बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन की कम इकाइयों का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसा कि चित्र 9.1 में दिये हुए समोत्पाद वक्र में हम देख चुके हैं कि जब तक उत्पादन A बिन्दु से B बिन्दु की ओर जाता है, तब तक वह पहले से अधिक श्रम की इकाइयों का प्रयोग करता है लेकिन पूँजी की इकाइयों का प्रयोग कम हो जाता है। यही स्थिति B से C और C से D की ओर होती है। इस प्रकार उत्पादन के एक साधन में वृद्धि तथा दूसरे साधन में कमी किए जाने के कारण समोत्पाद वक्र बायें से दाहिने नीचे की ओर झुका हुआ होता है।
3. **समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है (The isoproduct curve is convex to the origin) -** समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है। इसका अभिप्राय यह है कि एक साधन

की बढ़ती हुई मात्रा को दूसरे साधन की घटती मात्रा में प्रतिस्थापित किया जाता है। सारणी 9.1 से ज्ञात होता है कि श्रम की 2 इकाई का प्रयोग करने के लिए पूँजी की 3 इकाइयों का प्रतिस्थापन किया गया है। परन्तु श्रम की 3 इकाई का प्रयोग करने के लिए पूँजी की केवल 2 इकाइयों का प्रतिस्थापन किया गया है। समोत्पाद वक्र की यह विशेषता 'घटती हुई सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर (Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution)' पर आधारित है। चित्र 9.1 से स्पष्ट होता है कि समोत्पाद वक्र के B बिन्दु पर श्रम की एक इकाई का अधिक प्रयोग करने के लिए पूँजी की 3 इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा। इसलिए श्रम की पूँजी के लिए सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर (marginal rate of technical substitution) 3 : 1 हो गयी। D बिन्दु पर यह कम होकर 1 : 1 हो गयी अर्थात् सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर (marginal rate of technical substitution) घटती जा रही है। समोत्पाद वक्र का ढ़ाल इसी सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर को प्रदर्शित करता है।

4. समोत्पाद वक्र कभी एक-दूसरे को काटती नहीं है (Iso-product curves never intersect each other) - विभिन्न समोत्पाद वक्र विभिन्न उत्पादन के स्तर को प्रदर्शित करते हैं। सबसे नीचे का वक्र सबसे कम और सबसे ऊपर का वक्र सबसे अधिक उत्पादन प्रदान करने वाला होता है। यदि एक वक्र दूसरे वक्र को काटता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक ऊंचे समोत्पाद वक्र तथा एक नीचे समोत्पाद वक्र द्वारा एक समान उत्पादन मिलता है परन्तु यह सम्भव नहीं है। इसे चित्र 9.2 से समझा जा सकता है। समोत्पाद वक्र IP_1 उत्पादन की 100 इकाईयों को और समोत्पाद वक्र IP_2 उत्पादन की 150 इकाईयों को प्रदर्शित करते है। यदि ये दोनों एक दूसरे को किसी बिंदु पर काटें तो इसका अर्थ होगा कि जिस बिंदु पर यह परस्पर एक दुसरे को काटते है, उस बिंदु द्वारा प्रदर्शित साधनों के संयोजन से 100 और 150 इकाईयां दोनों उत्पादित हो सकती है जोकि संभव नहीं है।

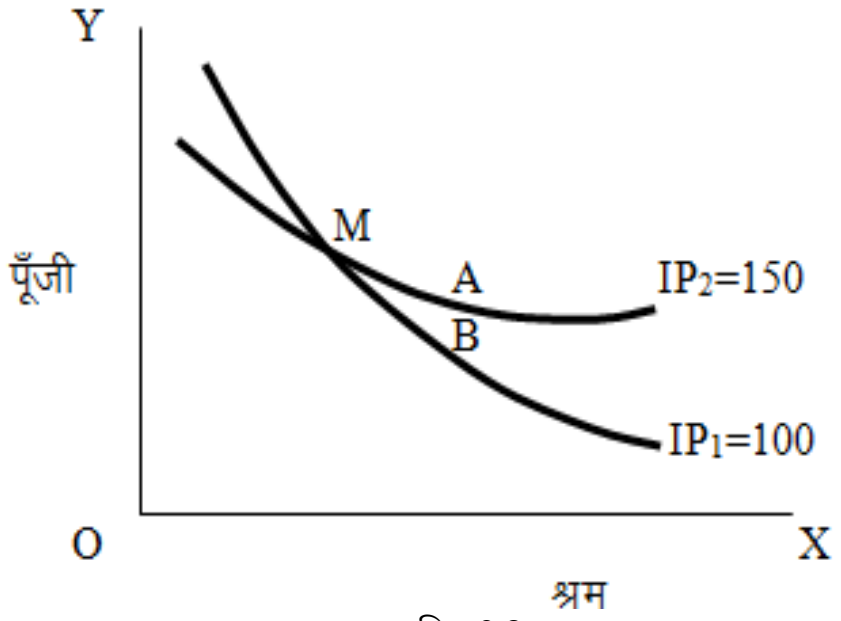

चित्र 9.2

5. ऊँचा समोत्पाद वक्र ऊँची उत्पादन मात्रा का प्रतिनिधित्व करता है (Higher Iso-Quant represent higher level of output)- मूल बिन्दु से कोई समोत्पाद वक्र जितना दूर होता जाता है अर्थात् दायें की ओर बढ़ता जाता है, वह उत्पादन की उतनी ही अधिक मात्रा को दिखाता है।

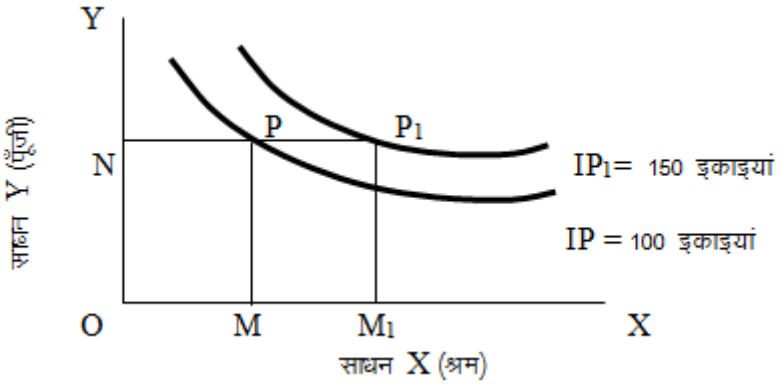

चित्र 9.3

इस बात को चित्र 9.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र 9.3 में दो समोत्पाद वक्र IP तथा IP_1 लिये गए हैं। पहले वक्र IP पर स्थित P बिन्दु श्रम की OM मात्रा तथा पूँजी की ON मात्रा के संयोग से बना है जिससे वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित होती हैं। इसके विपरीत, दायें हाथ वाले वक्र IP_1 पर P_1 बिन्दु, श्रम की OM_1 मात्रा तथा पूँजी की ON मात्रा को बताता है। चूँकि साधनों के संयोग में (OM_1 + ON) से पहले वाले संयोग (OM + ON) की अपेक्षा अधिक उत्पादन मात्रा पैदा की जा सकती है इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि दायीं ओर का समोत्पाद वक्र बायीं ओर के वक्र की तुलना में उत्पादन की अधिक मात्रा का प्रतीक है।

6. दो समोत्पाद वक्रों के बीच में अनेक समोत्पाद वक्र हो सकते हैं (There can be many Iso-Quant curves between two Iso-Quant curves) - विभिन्न समोत्पाद वक्र, उत्पादन के उन विभिन्न स्तरों को जो साधनों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होते हैं उनको प्रदर्शित करते हैं। दो समोत्पाद वक्रों (IP तथा IP_1) 100 तथा 150 के बीच कई समोत्पाद वक्र हो सकते हैं, जैसे- 110, 115, 120, 135 इत्यादि ।

7. समोत्पाद वक्रों पर दिखाई गई उत्पादन इकाइयां काल्पनिक होती हैं (The production units shown on the Iso-Product curves are imaginary.) - समोत्पाद वक्रों पर उत्पादन की 100, 150, 200 इत्यादि इकाइयां काल्पनिक होती हैं।

8. कोई समोत्पाद वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता (An Iso-Product cannot touch any of the axes) - यदि एक समोत्पाद वक्र X अथवा Y अक्ष को स्पर्श करता है तो इसका अभिप्राय है कि मात्र एक साधन की सहायता से उत्पादन किया जा सकता है जोकि तार्किक दृष्टि से असंगत है ।

9.4 सम लागत रेखा (Iso Cost Line)

कोई उत्पादक साधनों का कौन-सा संयोग चुनेगा, यह केवल उसके पास व्यय करने हेतु उपलब्ध धनराशि तथा साधनों की कीमत पर ही निर्भर करता है। सम लागत रेखा (Iso Cost Line) इन दो तत्वों अर्थात् उत्पादन साधनों (factors of Production) की कीमतों तथा कुल उपलब्ध मुद्रा जिसको उत्पादक

साधन खरीदने पर व्यय करना चाहता है, उसको प्रकट करता है। मान लीजिए की कोई उत्पादक दो साधनों (श्रम व पूँजी) पर 80 रुपया व्यय करना चाहता है और साथ ही यह भी मान ले कि श्रम की कीमत 1 रुपया और पूँजी की कीमत 2 रुपया प्रति इकाई है तो ऐसी स्थिति में उत्पादक के समक्ष उपलब्ध सम्भावनाओं को निम्न सारणी से स्पष्ट कर सकते हैं।

सारणी 9.2 सम्भावित क्रय संयोग (Potential Purchasing Combination)

संयोग (Combination)	श्रमिक (प्रति इकाई) (Labour (Per Unit))	पूँजी (प्रति इकाई) (Capital (Per Unit))	कुल व्यय (लागत)= श्रमिक + पूँजी Total Expenditure (Cost) = Labour + Capital
A	80*1 = 80	0*2 = 0	80+0 =80
B	60*1 = 60	10*2 = 20	60+20 = 80
C	40*1 = 40	20*2 = 40	40+ 40 = 80
D	20*1 = 20	30*2 = 60	20+60 = 80
E	0*1 = 0	40*2 = 80	0+ 80 = 80

सारणी 9.2 में दी गई वैकल्पिक सम्भावनाओं को चित्र 9.4 में स्पष्ट किया गया है। AE रेखा समान लागत रेखा है। जो 80 रुपया की लागत द्वारा खरीदी जाने वाली श्रम और पूँजी के विभिन्न संयोगो को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए, इस रेखा पर D बिन्दु यह बताता है कि दी हुई कीमतों पर उत्पादक पूँजी की 30 इकाई और श्रमिक की 20 इकाई खरीद सकता है अथवा C बिन्दु के अनुसार वह 20 इकाई पूँजी व 40 इकाई श्रमिक खरीद सकता है। अतः इस रेखा पर यदि हम कोई भी बिन्दु लें तो वह श्रम व पूँजी के उस संयोग को दिखाएगा जोकि दी हुई मुद्रा राशि से प्राप्त किया जा सकता है।

दूसरे शब्दों में सम-लागत रेखा (Iso Cost Line) एक उत्पादक की उपलब्ध मुद्रा राशि को दो साधनों पर व्यय करने की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। सम-लागत रेखा (Iso Cost Line) को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे साधन कीमत रेखा (Factor Price Line), व्यय रेखा (Expenditure Line) अथवा फर्म की बजट रेखा (Budget Line)।

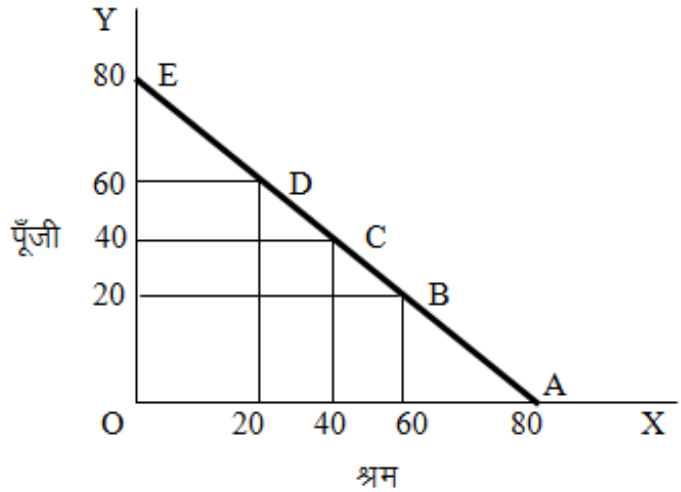

चित्र 9.4

एक सम लागत रेखा का ढ़ाल दोनों साधनों की कीमत अनुपात को व्यक्त करता है अर्थात् यहाँ पर इस रेखा का ढ़ाल श्रमिकों एवं पूँजी के अनुपात को व्यक्त करता है। सम-लागत रेखा का ढ़ाल ऋणात्मक होता है। इसका कारण यह है कि यदि फर्म एक साधन को अधिक खरीदना चाहती है तो उसे दूसरे साधनों की कम मात्रा खरीदनी पड़ेगी। सम-लागत रेखा में परिवर्तन केवल दो कारणों से ही सम्भव होता है **पहला** जब उत्पादक द्वारा किए जाने वाले कुल व्यय में परिवर्तन हो जाए। **दूसरा** या फिर जब साधन की कीमतों में परिवर्तन हो जाए।

9.5 साधनों का अनुकूलतम संयोग (Optimum combination of factors)

समोत्पाद वक्र (Iso Quant Curve) साधनों के उन सभी संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित होती है। इसके विपरीत, सम लागत वक्र (Iso Cost Line) साधनों के क्रय की सम्भावनाओं को प्रकट करता है।

उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए उत्पादक वस्तु का अधिकतम मात्रा में उत्पादन को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करना चाहता है। दूसरे शब्दों में उत्पादक उत्पादन के साधनों के अनुकूलतम संयोग (Optimum Combination) को चुनना चाहेगा जो उसे अधिकतम लाभ प्रदान कर सके। दो साधनों की अनुकूलतम मात्राओं या दो साधनों के न्यूनतम लागत संयोग (Minimum Cost Combination) का चुनाव करने के लिए उत्पादक फर्म को साधनों की भौतिक उत्पादकता (Physical Productivity) तथा कीमतों (Price) दोनों को ध्यान में रखना होगा। समोत्पाद वक्र, साधनों की भौतिक उत्पादकताओं को प्रदर्शित करते है जबकि साधनों की कीमत को सम-लागत रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का अध्ययन हम निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से करते हैं:

1. लागत को न्यूनतम करना जब उत्पादन की मात्रा दी गयी हो।

2. उत्पादन को अधिकतम करना जब लागत व्यय दी गयी हो।

1. लागत को न्यूनतम करना जब उत्पादन की मात्रा दी गयी हो। (Minimizing the cost when quantity of production is given)- जब उत्पादन की मात्रा दी गई हो तो फर्म के सामने यह समस्या होती है कि दिए गए उत्पादन को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करें। अन्य शब्दों में, फर्म सबसे कम लागत रेखा पर पहुँचने का प्रयत्न करेगी। इसी तथ्य को चित्र 9.5.1 की सहायता से समझाने का प्रयास किया गया है।

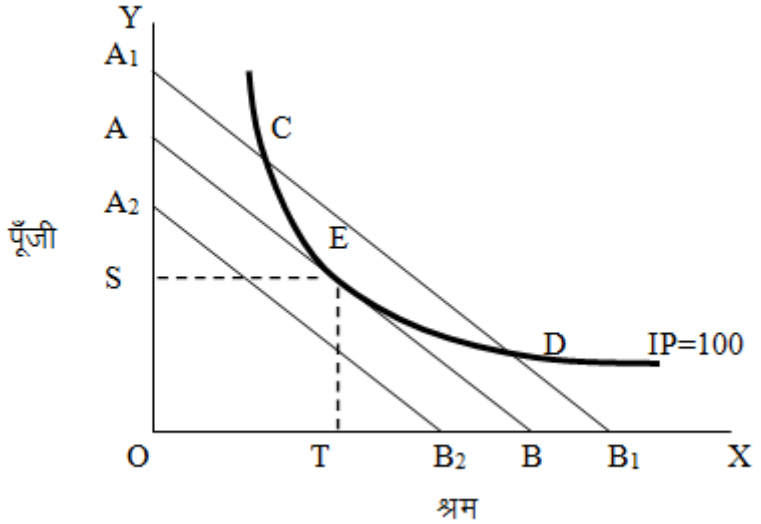

चित्र 9.5.1

चित्र में समोत्पाद वक्र IP उत्पादन की 100 इकाइयों को प्रकट करता है। वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन समोत्पाद वक्र IP पर स्थित किसी भी साधन संयोग, जैसे- C, E, D आदि द्वारा किया जा सकता है परन्तु इन विभिन्न संयोगों में से केवल E संयोग ही उत्पादनकर्ता का न्यूनतम लागत संयोग होगा क्योंकि इस पर समोत्पाद वक्र IP न्यूनतम सम्भावित सम-लागत वक्र AB को स्पर्श करता है। साधनों के E संयोग के प्रयोग से उत्पादन लागत न्यूनतम होगी। यदि उत्पादनकर्ता समोत्पाद वक्र IP वक्र के किसी अन्य संयोग, जैसे- C अथवा D का चुनाव करता है तो वस्तु की 100 इकाई का उत्पादन करने के लिए उससे अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ेगी। कोई भी विवेकशील उत्पादक इन संयोगों का चुनाव नहीं करेगा। अतः E बिन्दु ही साम्य बिन्दु होगा और यही साधनों का न्यूनतम लागत संयोग भी है।

2. उत्पादन को अधिकतम करना जब लागत व्यय दी गयी हो। (Maximization of production when cost expenses is given)- जब लागत व्यय दिया गया है तब फर्म के सामने यह समस्या होती है कि इस दिए हुए लागत व्यय के द्वारा अधिकतम उत्पादन कैसे करें। दूसरे शब्दों में, फर्म सबसे ऊंचे समोत्पाद वक्र पर पहुँचने का प्रयास करेगी जोकि दी हुई लागत पर सम्भव हो। ऐसी स्थिति में उत्पादक के लिए श्रम और पूँजी का सबसे अनुकूलतम संयोग उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ पर सम-लागत वक्र उच्चतम समउत्पाद वक्र को स्पर्श करती है। इसी तथ्य को चित्र 9.5.2 की सहायता से समझाया गया है।

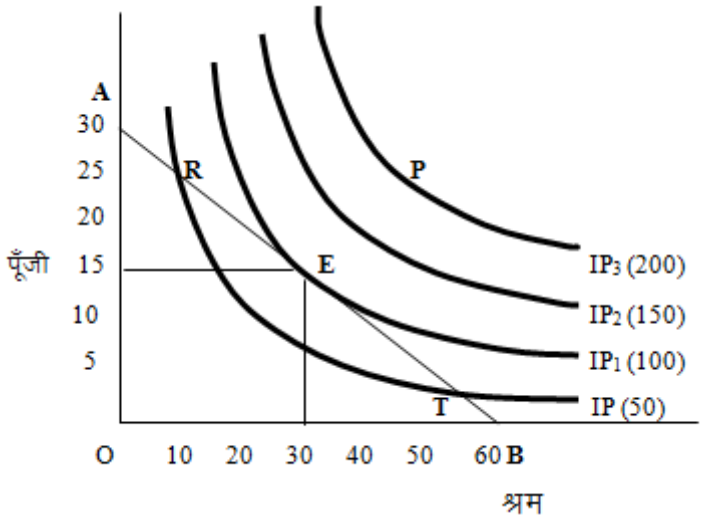

चित्र 9.5.2

मान लिया जाए, उत्पादक वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित करना चाहता है जिसे वह IP_1 समोत्पाद वक्र पर अंकित श्रम तथा पूँजी के संयोग से प्राप्त कर सकता है। इन संयोगों में, अनुकूलतम संयोग चुनने के लिए उत्पादक को साधन रेखा (समलागत रेखा) मालूम होनी चाहिए। चित्र में AB सम-लागत रेखा है जिसे IP_1 समोत्पाद वक्र E बिन्दु पर स्पर्श करता है। यही बिन्दु साधनों अनुकूलतम संयोग का या उत्पादक का साम्य बिन्दु है। साम्य बिन्दु E पर पूँजी की 15 इकाइयों और श्रम की 30 इकाइयों का उपयोग करके फर्म वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करने में सफल होती है। इस प्रकार फर्म का सन्तुलन बिन्दु E है। फर्म IP_3 पर स्थित P बिन्दु पर यदि साम्य स्थापित करे तो उसको 200 इकाई उत्पादन प्राप्त हो सकता है, लेकिन फर्म के व्यय सीमा के कारण वह श्रम व पूँजी के ऐसे संयोगों को प्राप्त करने में असफल रहेगी जोकि उसे P बिन्दु पर ले जा सके। इसी प्रकार यदि फर्म IP पर स्थित R अथवा T बिन्दु पर अपना साम्य स्थापित करती है तो वह केवल 50 इकाई उत्पादन प्राप्त कर सकेगी क्योंकि साम्य बिन्दु R अथवा T फर्म की कीमत रेखा AB से नीचे की ओर स्थित है।

अतः फर्म के साम्य की अवस्था E बिन्दु पर ही प्राप्त होगी जहाँ वह अपने वित्तीय साधनों की सहायता से पूँजी व श्रम के ऐसे संयोग को प्राप्त करने में समर्थ है जोकि उसे अधिकतम उत्पादन प्रदान करे। E बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है, इस बिन्दु पर साधनों की लागत रेखा (Cost Line) तथा समोत्पादक वक्र (Iso Quant Curve) का ढाल समान है तथा इस कारण दोनों साधनों की कीमत अनुपात और तकनीकी स्थानापन्नता की सीमांत दर (Marginal rate of technical substitution - MRTS) समान है। अतः सन्तुलन बिन्दु E अथवा न्यूनतम लागत को निम्न प्रकार भी समझाया जा सकता है-

$$\frac{\text{पूँजी की सीमान्त उत्पादकता}}{\text{श्रम की सीमान्त उत्पादकता}} = \frac{\text{पूँजी की कीमत}}{\text{श्रम की कीमत}}$$

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादक उस समय सन्तुलन की स्थिति में होता है जबकिः

1. समोत्पाद वक्र समान लागत रेखा को स्पर्श करता है।
2. साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमांत दर और दोनों साधनों की कीमत अनुपात बराबर होती है।
3. सीमान्त प्रतिस्थापन दर, सन्तुलन बिन्दु पर ह्रासमान है अर्थात समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होता है।

9.6 पैमाने के प्रतिफल का नियम (Law of Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल उस स्थिति को प्रकट करते हैं जिसके अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों के समान अनुपात में वृद्धि करने पर उसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं, अल्पकाल में कुछ साधन स्थिर होते हैं जबकि अन्य परिवर्ती। अतः अल्पकाल में साधनों के अनुपात में तो परिवर्तन किया जा सकता है किन्तु उनके पैमाने को नहीं बदला जा सकता। दीर्घकाल में उत्पादन के पैमाने में भी परिवर्तन किया जा सकता है। यदि सभी साधन एक ही अनुपात में बढ़ाए जाएँ तो उत्पादन में जो परिवर्तन होगा, उसे **पैमाने के प्रतिफल** (Returns to Scale) कहा जाता है।

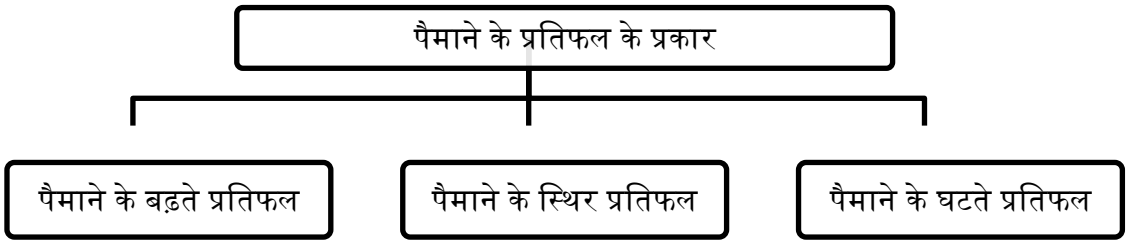

मान्यताएं –

यह नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित है-

1. एक श्रमिक दिए हुए औजार और उपकरणों से काम करता है।
2. प्रौद्योगिकी में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है।
3. सभी साधन परिवर्तनशील है।
4. वस्तुओं को मुद्रा में नहीं मात्रा में मापा जाता है।
5. पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है।

इन मान्यताओं के दिए होने पर, जब सब आगतें अपरिवर्तित अनुपात में बढ़ाई जाती है और उत्पादन के पैमाने का विस्तार किया जाता है तो उत्पादन में तीन अवस्थाएं उत्पन्न होती है। **प्रथम,** प्रतिफल बढ़ जाता है

क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है। **द्वितीय,** पैमाने का प्रतिफल स्थिर हो जाता है क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि आगतों में वृद्धि से ठीक समान अनुपात में होती है। **तृतीय,** पैमाने का प्रतिफल घट जाता है क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि के अनुपात से कम होती है। पैमाने के प्रतिफल का यह नियम नीचे तालिका 9.6 और चित्र 9.6.1, 9.6.2 और 9.6.3 की सहायता से समझाया गया है।

सारिणी- 9.6 उत्पादन का प्रतिफल (Return of Production)

इकाई (Unit)	उत्पादन का पैमाना (Scale of Production)	कुल प्रतिफल (Total Return)	सीमान्त प्रतिफल (Marginal Return)	अवस्था (Stage)
1	1 श्रमिक + 2 एकड़ भूमि	8	8	प्रथम
2	2 श्रमिक + 4 एकड़ भूमि	17	9	
3	3 श्रमिक + 6 एकड़ भूमि	27	10	
4	4 श्रमिक + 8 एकड़ भूमि	38	11	द्वितीय
5	5 श्रमिक + 10 एकड़ भूमि	49	11	
6	6 श्रमिक + 12 एकड़ भूमि	59	10	तृतीय
7	7 श्रमिक + 14 एकड़ भूमि	68	9	
8	8 श्रमिक + 16 एकड़ भूमि	76	8	

यह तालिका स्पष्ट करती है कि शुरूआत में जब उत्पादन का पैमाना 1 श्रमिक + 2 एकड़ भूमि है. तो कुल उत्पादन 8 है। उत्पादन बढ़ाने के लिए जब उत्पादन का पैमाना दुगुना (2 श्रमिक + 4 एकड़ भूमि) कर दिया जाता है, तो कुल प्रतिफल दुगुने से अधिक अर्थात 17 हो जाता है। अब यदि पैमाना तीन गुना (3 श्रमिक + 6 एकड़ भूमि) कर दिया जाए, तो प्रतिफल तीन गुना से अधिक अर्थात 27 हो जाता है। यह **पैमाने के बढ़ते प्रतिफल** (Increasing returns to scale) को प्रकट करता है। यदि उत्पादन के पैमाने को और बढ़ा दिया जाए तो कुल प्रतिफल उस ढंग से बढ़ेगा कि सीमान्त प्रतिफल स्थिर हो जाता है। उत्पादन के पैमाने की चौथी और पांचवी इकाई का सीमान्त प्रतिफल 11 है अर्थात **पैमाने का प्रतिफल स्थिर** (Constant returns to scale) है। इसके बाद उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के परिणामस्वरूप **पैमाने के घटते प्रतिफल** (Decreasing returns to scale) प्राप्त होगे। उत्पादन की छठी, सातवीं, आठवीं इकाइयों पर कुल प्रतिफल पहले की अपेक्षा कम दर पर बढ़ता है और सीमान्त प्रतिफल उत्तरोत्तर घटकर 10, 9, 8 हो जाता है।

9.6.1 पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल उस स्थिति को स्पष्ट करते हैं जब उत्पादन के सभी साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढाए जाने पर उसके उत्पादन में वृद्धि अनुपात से अधिक होती है।

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल को चित्र 9.6.1 की सहायता से समझाया गया है। चित्र में IP_1 IP_2 IP_3 तथा IP_4 समोत्पाद वक्र हैं जो क्रमशः उत्पादन की 100, 200, 300 तथा 400 इकाइयों को व्यक्त करती है। अन्य शब्दों में, समोत्पाद रेखाएं चित्र में एक समान वृद्धि को बताती है अर्थात् प्रत्येक ऊंची समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की 100 इकाइयां बढ़ जाती हैं। चित्र में विभिन्न समोत्पाद रेखाएं पैमाने की रेखा OR को विभिन्न टुकड़ों में विभाजित करती है। पैमाने की रेखा का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों (श्रम और पूँजी) की एक निश्चित मात्रा को दर्शाता है। चित्र में पैमाने की रेखा पर प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई कम होती है अर्थात्

$$\mathrm{OA} > AB > BC > CD$$

इन विभिन्न टुकड़ों की घटती हुई लम्बाई का तात्पर्य यह है कि दो साधनों की क्रमशः उन कम मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एक समान वृद्धि (100 इकाइयों के बराबर) प्राप्त की जाती है। अतः इस अवस्था को **बढ़ते हुए प्रतिफल** की अवस्था कहा जाता है।

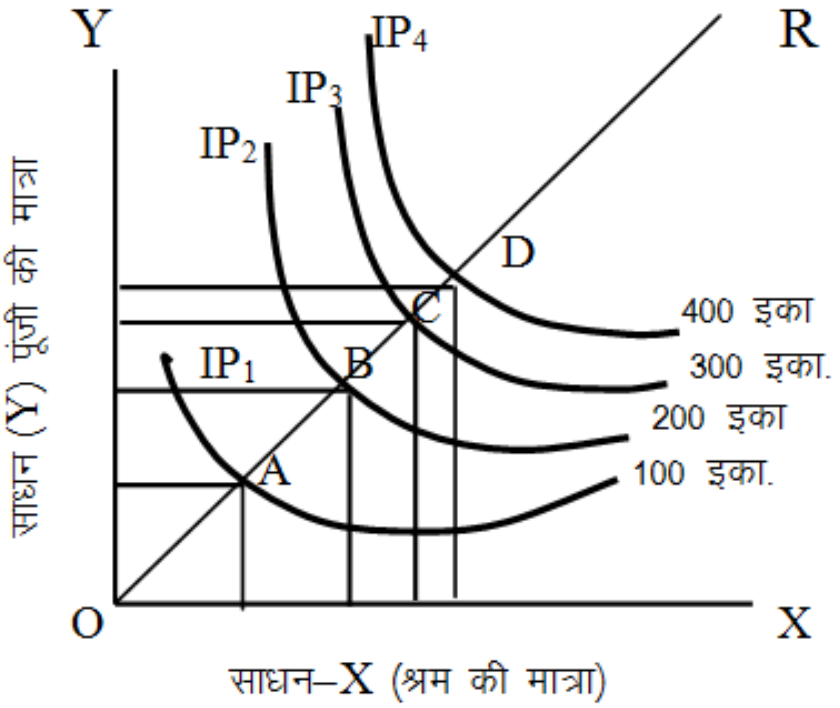

चित्र 9.6.1

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होने के कारण (Causes of increasing returns to scale)

उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता के कारण पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है। अविभाज्यता का अर्थ है कि मशीनें, प्रबंधकर्ता, श्रम, वित्त आदि बहुत छोटे आकार में प्राप्त नहीं होते। वे निश्चित आकारों में ही मिलते हैं। जब एक व्यापार इकाई का विस्तार होता है तो पैमाने का प्रतिफल बढ़ जाता है क्योंकि अविभाज्य साधनों को उनकी अधिकतम क्षमता पर लगाया जाता है।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल श्रम विभाजन (Division of Labour) और विशिष्टीकरण (specialization) से भी होते है। जब फर्म के पैमाने का विस्तार किया जाता है तो श्रम विभाजन और उपकरणों के विशिष्टीकरण का पैमाना बढ़ जाता है और काम को छोटे-छोटे भागों में बांटा जा सकता है जिससे श्रमिक अब प्रक्रियाओं के पहले से छोटे क्षेत्रों पर भी ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। इसके लिए विशेषीकृत उपकरण लगाए जा सकते है। इस प्रकार विशिष्टीकरण दक्षता बढ़ती है और इससे पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है और जब फर्म का विस्तार होता है तो वह उत्पादन की आन्तरिक किफायतों (Internal economies) का उपभोग करती है। यह सब किफायतें पैमाने के प्रतिफल को अनुपात से अधिक बढाने में सहायता करती है।

केवल इतना ही नहीं, **बाहरी किफायतों** (External economies) के कारण भी फर्म पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का उपभोग करती है। जब अपनी वस्तु की दीर्घकालीन बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए उद्योग अपना विस्तार करता है तो बाहरी किफायतें प्रकट होती हैं। जिनका उद्योग की सब फर्में बांटकर उपभोग करती

हैं। जब बहुत सी फर्में एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं, तो कुशल श्रम, उधार और यातायात की सुविधाएं आसानी से मिलने लगती हैं। प्रधान उद्योग की सहायता के लिए सहायक उद्योग उत्पन्न हो जाते हैं। व्यापार-पत्रिकाएं, शोध और प्रशिक्षण केन्द्र खुल जाते हैं, जो फर्मों की उत्पादन दक्षता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार ये बाहरी किफायतें भी पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का कारण बनती है।

9.6.2 पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

पैमाने के स्थिर प्रतिफल उस स्थिति को स्पष्ट करते हैं जब उत्पादन के सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाने के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि भी उसी अनुपात में होती है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल का सिद्धान्त एक रेखीय उत्पादन-फलन को प्रदर्शित करता है। चित्र 9.6.2 में OR एक पैमाने की रेखा है। समोत्पाद वक्र IP_1 IP_2 IP_3 तथा IP_4 पैमाने की रेखा OR को समान टुकड़ों (OA = AB = BC = CD) में विभाजित करती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्पादन के दोनों साधनों (श्रम तथा पूँजी) की क्रमशः बराबर मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एक समान (अर्थात 100 इकाइयां) वृद्धि प्राप्त की जाती है। इस स्थिति को **पैमाने के स्थिर या समता प्रतिफल की अवस्था** कहते हैं।

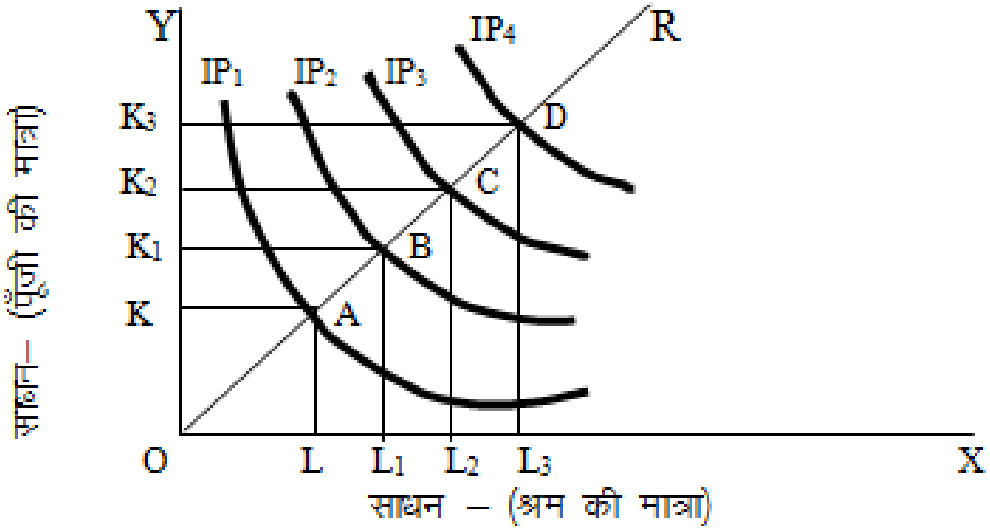

चित्र - 9.6.2

पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होने के कारण (Causes of Constant Returns to Scale)

जब फर्म का विस्तार किया जाता है तब आन्तरिक और बाहरी अमितव्ययताएँ (Externalities) तथा आन्तरिक और बाहरी किफायतों (internal and external economies of scale) के प्रति संतुलन (counter-balance) करती है। प्रतिफल समान अनुपात में बढ़ता है। जिससे उत्पादन के एक बड़े क्षेत्र में पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। यहां पैमाने के प्रतिफल का वक्र क्षैतिज हो जाता है इसका अभिप्राय है कि उत्पादन के सभी स्तरों पर पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। जब आंतरिक अमितव्ययिताएं और किफायतें निष्प्रभावित (neutralized) हो जाती है और उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है तब पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं। दूसरा कारण बाहरी किफायतें और अमितव्ययिताओं का संतुलित होना है। फिर, जब उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाज्य, स्थानापन्न और समरूप हों और दी हुई कीमतों पर उनकी आपूर्तियां पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elasticity) हों तो पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं।

9.6.3 पैमाने के घटते प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

पैमाने के घटते प्रतिफल उस स्थिति को स्पष्ट करते हैं जब उत्पादन के सभी साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढाने पर उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है।

वास्तव में, ऐसे उदाहरण ढूंढ सकना संभव नहीं है जहाँ सभी साधनों में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती हो और सभी साधनों के बढ़ जाने पर भी उद्यम का उत्पादन अपरिवर्तित रहता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन में परिवर्तन केवल पैमाने में परिवर्तन के कारण नहीं माना जा सकता। उत्पादन में परिवर्तन का कारण साधनों के अनुपातों (factor ratio) का बदल जाना भी है। इस प्रकार वास्तविक जगत में परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू होता है।

चित्र 9.6.3 में समोत्पाद वक्र IP_1 IP_2 IP_3 तथा IP_4 क्रमशः उत्पादन की 100, 200, 300 तथा 400 इकाइयों को व्यक्त करते है अर्थात् प्रत्येक समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की मात्रा में एक समान 100 इकाइयों की वृद्धि होती जाती है। ये विभिन्न समोत्पाद वक्र पैमाने की रेखा OR को जैसे- OA, AB, BC तथा CD में विभाजित करती है, प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बढ़ती जाती है अर्थात् $OA < AB < BC < CD$। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त 100 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए श्रम एवं पूँजी की अधिकाधिक मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। अतः इस अवस्था को पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।

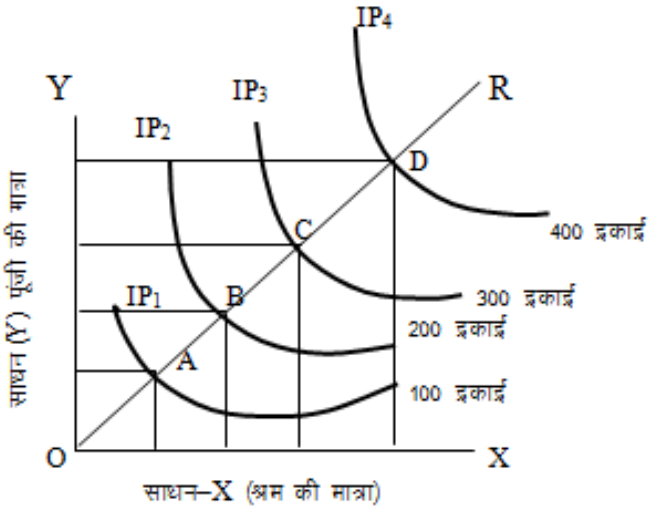

चित्र - 9.6.3

पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होने के कारण (Causes of Decreasing Returns to Scale)

पैमाने का स्थिर प्रतिफल केवल एक गुजरती हुई अवस्था है क्योंकि अन्त में पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है। अविभाज्य साधन (indivisible factors), अकुशल (unskillled) और कम उत्पादक बन जाते हैं। व्यापार करना कठिन हो सकता है जिससे ताल-मेल और देखभाल की समस्याएं खड़ी हो जाती है। प्रबन्ध का विस्तार होने से नियंत्रण और **दृढ़ता** की **कठिनाइयां** भी उत्पन्न हो जाती हैं। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है, तो प्रशिक्षित श्रम (trained labour), भूमि, पूँजी की माँग बढ़ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मजदूरी, लगान और ब्याज की दरें बढ़ जाती है और कच्चे माल की कीमतें भी बढ़ जाती है। यातायात और विपणन

(Marketing) की समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इन सभी कारणों से लागतें बढ़ने लगती हैं और फर्मों के विस्तार से पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है। जिसके कारण पैमाने को दुगुना कर देने से उत्पादन दुगुना नहीं होता ।

9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. समोत्पाद वक्र
   (a) दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान उत्पादन मिलता है।
   (b) उत्पादन की बढ़ती हुयी मात्रा को दर्शाता
   (c) अधिकतम उत्पादन को दर्शाता है। (d) स्थिर उत्पादन को दर्शाता है।
2. समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते है। समोत्पाद वक्र की यह विशेषता आधारित है
   (a) तकनीकी प्रतिस्थापन की ह्रासमान दर पर। (b) सम लागत रेखा के ढाल पर।
   (c) पैमाने के प्रतिफल पर। (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3. समोत्पाद वक्र का ढाल सदैव
   (a) धनात्मक होता है। (b) ऋणात्मक होता है।
   (c) पूर्णतया अनिश्चित होता है। (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
4. समलागत वक्र प्रदर्शित करती है-
   (a) उत्पादक की क्रय सीमा को (b) साधनों के प्रतिस्थापन की सीमा को
   (c) साधनों की परिवर्तनशीलता को (d) इनमें से कोई नहीं ।
5. पैमाने के प्रतिफल में -
   (a) कुछ साधन स्थिर रहते हैं और कुछ परिवर्तनशील (b) सभी साधन भिन्न प्रकार से बढ़ते हैं।
   (c) सभी साधनों की मात्रा में एक ही अनुपात में परिवर्तन होता है
   (d) सभी साधन स्थिर रहते हैं।

9.8 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करते हैं जो उत्पादक को एक समान उत्पादन स्तर प्रदान करते हैं। समोत्पाद वक्र सदैव ऋणात्मक ढाल के होते हैं तथा ये कभी एक दूसरे को काट नहीं सकते। समोत्पाद वक्र का ढाल तकनीकी प्रतिस्थापन दर को प्रदर्शित करता है। सम लागत रेखा साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करती है जिसे उत्पादक अपनी व्यय क्षमता से खरीद सकता है।

9.9 शब्दावली (Glossary)

- **समोत्पाद वक्र (Iso Quant Curve) -** दो साधन के विभिन्न संयोगों से प्राप्त समान उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित करने वाले वक्र को समोत्पाद वक्र कहते है।
- **सम लागत रेखा (Iso Cost Line) -** दी व्यय क्षमता पर साधनों के क्रय की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करने वाले वक्र को सम लागत रेखा कहते है।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. a 2. a 3. b
4. a 5. c

9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. पैमाने के प्रतिफल से आप क्या समझते हैं? वर्द्धमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के मध्य अन्तर समझाएं।
2. पैमाने के घटते प्रतिफलों की व्याख्या कीजिए।
3. समोत्पाद वक्र क्या होती है? समोत्पाद वक्र की विशेषताओं का वर्णन करें।
4. समउत्पाद वक्र की सहायता से दर्शाइए कि एक उत्पादक दिए हुए उत्पादन स्तर को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम लागत साधन संयोग का चुनाव किस प्रकार करता है?

इकाई – 10 पूर्ण प्रतियोगिता
(Perfect Competition)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 उद्देश्य (Objectives)
10.3 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की अवधारणा (Concept of Perfect Competitive Market)
10.4 प्रतियोगिता बाजार का सन्तुलन विश्लेषण (Analysis of Equilibrium in Competitive Market)
10.4.1 कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (Equilibrium through Total Revenue and Total Cost Curves)
10.4.2 सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (Equilibrium through Marginal Revenue and Marginal Cost Curves)
10.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium under Perfect Competition)
10.5.1 अल्पकाल में फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium in Short Run)
10.5.2 दीर्घकाल में फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium in Long Run)
10.6 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का सन्तुलन (Industry's Equilibrium under Perfect Competition)
10.6.1 अल्पकाल में उद्योग का सन्तुलन (Industry Equilibrium in Short Run)
10.6.2 दीर्घकाल में उद्योग का सन्तुलन (Industry Equilibrium in Long Run)
10.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
10.8 सारांश (Summary)
10.9 शब्दावली (Glossary)
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
10.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)
10.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के उपरान्त आप अब बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है? उपभोक्ता सन्तुलन में कैसे होता है?

इस इकाई में आप प्रतियोगी बाजार संरचना (Competitive Market Structure) एवं उनके सन्तुलन की धारणाओं के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से पढेंगे, इस विषय में भी चर्चा की गई है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म और उद्योग के अल्पकाल एवं दीर्घकाल में सन्तुलन किस प्रकार होता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से उसके सम्बन्ध में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

10.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- प्रतियोगी बाजार के प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
- विभिन्न प्रतियोगिता बाजार में सन्तुलन के निर्धारण को समझ सकेंगे।
- फर्म की आगम और लागत धारणा में सन्तुलन की शर्ते को समझ सकेंगे।
- फर्म के संतुलन विश्लेषण को समझ सकेंगे।

10.3 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की अवधारणा (Concept of Perfect Competitive Market)

बाजार का रूप वस्तु स्वभाव, क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या और उनके बीच निर्भरता पर निर्भर करती है, जिसे संक्षेप में प्रतियोगिता कहते है। जिसके निम्न रूप है-

पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Perfect Competitive)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार वह है जहाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले छोटे क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है जो समरूप वस्तु का उत्पादन करते हैं। इस बाज़ार में वस्तु का ही नहीं विक्रेताओ का भी प्रमापीकरण (standardization) होता हैं। यहाँ सभी को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है एवं कोई गैर कीमत प्रतियोगिता नहीं होती। उत्पादन के साणन पूर्ण गतिशील होते है, फलस्वरूप एक ही कीमत पाई जाती है और एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषाएं (Definition of Perfect Competitive)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

प्रो. बिलास (Prof. Bilas) के शब्दों में, ***"पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह अवस्था है जिसमें बहुत-सी फर्में होती हैं तथा सभी एक समान वस्तु का उत्पादन कर रही होती हैं। इस अवस्था में फर्म कीमत स्वीकार करने वाली है, न कि तय करने वाली। (The perfect competition is characterised by the presence of many firms and the all sell indentically the same product. The seller is a price taker.)"***

प्रो. लेफ्टविच (Prof. Leftwitch) के शब्दों में, ***"पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह अवस्था है जिसमें समरूप वस्तु बेचने वाली बहुत-सी फर्में होती हैं और कोई भी फर्म इतनी बड़ी नहीं होती जो बाजार में कीमत को प्रभावित कर सके। (Perfect competition is a market in which there are many firms selling identical products, with no firm large enough relative to the entire market to be able to influence market price.)"***

श्रीमती जॉन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के अनुसार, ***"पूर्ण प्रतियोगिता तब पायी जाती है जब प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन के लिए माँग पूर्णतया मूल्य सापेक्ष हो। (Perfect competition prevails when the demand for the output of each producer is perfectly elastic.)"***

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएं (Characteristics of Perfect Competitive Market)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में तब विद्यमान होते है जब निम्न विशेषताएँ पूरी होती है

1. समरूप (Homogeneous) वस्तु का उत्पादन।
2. प्रचालित कीमत की पूर्ण जानकारी।
3. फर्मों का स्वतन्त्र रूप से उद्योग में प्रवेश करना तथा उसको छोड़ना।
4. क्रेताओं एवं विक्रेताओं को मूल्य की पूर्ण जानकारी होती है।
5. उत्पादन साधनों की पूर्ण गतिशीलता।
6. परिवहन लागतें (Transportation Cost) नहीं होती है।

प्रतियोगिता बाज़ार का वर्गीकरण (Classifications of Perfect Competitive Market)

1. फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है।
2. वस्तु का स्वभाव प्रमापित या समरूप होता है।
3. फर्म के लिए माँग की कीमत लोच अनन्त होती है।
4. जानकारी की पूर्ण उपलब्धता होती है।
5. वस्तु की कीमत पर इनका नियन्त्रण नहीं होता है।
6. गैर कीमत प्रतियोगिता नहीं होती है।
7. फर्मों के प्रवेश एवं निकासी की सुगमता बाधा रहित बिल्कुल सुगम होती है।

10.4 प्रतियोगिता बाजार का सन्तुलन विश्लेषण (Analysis of Equilibrium in Competitive Market)

वास्तव में सन्तुलन शब्द का आशय 'सन्तुलन की स्थिति अथवा अपरिवर्तन की स्थिति' से है। अतः सन्तुलन की स्थिति वह होती हैं, जब एक आर्थिक स्थिति में उपभोक्ता को कोई ऐसी स्थिति प्राप्त हो जहाँ वह किसी प्रकार का परिर्वतन नहीं चाहता एवं वह वस्तु के उत्पादन को घटाना या बढ़ाना भी नहीं चाहता ऐसी स्थिति को ही सन्तुलन की स्थिति कहते हैं। जैसा कि **बोल्डिंग (Boulding)** कहते है कि, ***"एक उद्योग या फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में कहा जाता जब उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती है"*** इस तरह की स्थिति तब होगी जब वह फर्म अधिकतम लाभ अर्जित कर रही हो क्योंकि कोई भी विवेकशील उत्पादक यह जानता है कि उत्पादन मात्रा घटाने या बढ़ाने से अपना लाभ बढ़ाया जा सकता है तो वह उत्पादन की मात्रा में परिर्वतन करता है। परन्तु जिस उत्पादन मात्रा पर वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रहा है वह उत्पादन मात्रा घटाने या बढ़ाने से तो उसका लाभ कम ही होगा बढ़ नहीं सकता। इस सन्दर्भ में अधिकतम लाभ की उस स्थिति में फर्म को लागत, कीमत, उत्पादन मात्रा आदि को देखना होगा जिस पर उस फर्म का सन्तुलन बिन्दु होगा।

सन्तुलन की व्याख्या विभिन्न बाजार के रूपों अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत आगे की जाएगी। यहाँ हम सन्तुलन की सामान्य शर्तों की व्याख्या करेंगे जो सभी प्रकार के बाजारों पर लागू होती है। सन्तुलन की व्याख्या के सन्दर्भ में दो दृष्टिकोण

प्रचलित है, एक कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन दूसरा सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन।

10.4.1 कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (Equilibrium through Total Revenue and Total Cost Curves)

कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ फर्म अधिकतम लाभ अर्जित करती है। कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन को चित्र 10.1 में स्पष्ट किया गया है। जहाँ TR कुल आगम वक्र तथा TC कुल लागत वक्र है। कुल आगम वक्र (TR) मूल बिन्दु O से प्रारम्भ होता है जिसका आशय यह है कि जब कुछ भी उत्पादन नहीं किया जाता तब आगम शून्य होता है। उत्पादन की मात्रा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, कुल आगम बढ़ता जाता है। इसी कारण कुल आगम वक्र TR बाएँ से दाई ओर को ऊपर बढ़ता है। जबकि कुल लागत वक्र TC मूल बिन्दु से शुरू नहीं होकर बिन्दु F से शुरू होता है, अर्थात जब कुछ भी उत्पादन नहीं होता तो भी उसे OF के बराबर लागत उठानी पड़ेगी। ऐसा अल्पकाल में होता है, जिसमें यदि उत्पादन करना बन्द भी कर दे तो भी उसे स्थिर लागत वहन करना पड़ता है।

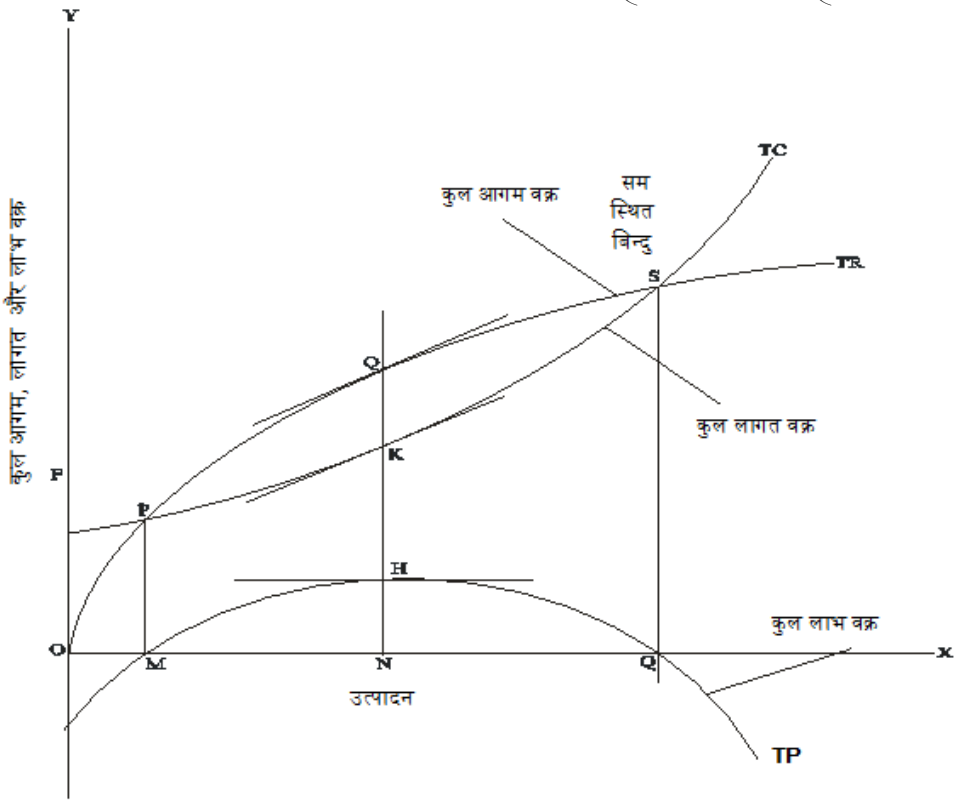

चित्र 10.1

फर्म OM से कम मात्रा उत्पादित करने पर हानि प्राप्त करती है क्योंकि प्रारम्भ में कुल लागत कुल आगम से अधिक है। जबकि OM उत्पादन मात्रा पर कुल आगम कुल लागत के बराबर हैं इसलिए ना तो हानि हो रही है और ना ही लाभ। इसलिए OM उत्पादन मात्रा के इस P बिन्दु को समस्थिति बिन्दु (Break Even Point) कहते है। जब फर्म OM से उत्पादन बढ़ती है, तो कुल आगम कुल लागत से बढ़ता जाता है और फर्म को लाभ प्राप्त होता है। चित्र से यह स्पष्ट है कि उत्पादन मात्रा ON पर कुल आगम वक्र TR और कुल लागत वक्र TC के बीच की दूरी अधिकतम है और इस मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इस कारण फर्म ON उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। कुल लागत और कुल लागत वक्रों के बीच अधिकतम दूरी की

जानकारी दो प्रकार से होती है, प्रथम ON उत्पादन पर ही जहाँ कुल आगम और कुल लागत वक्रों पर खीची गई स्पर्श रेखाएं एक दूसरे के समान्तर है। इसी बीच उनके मध्य दूरी अधिकतम है और वहाँ लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा है। दूसरा विधि कुल लाभ वक्र है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं पर कुल आगम और कुल लागत में अन्तर को व्यक्त करता है। इस प्रकार जिस उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु होगा उस उत्पादन मात्रा पर लाभ अधिकतम होगा। चित्र से स्पष्ट है कि ON उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु H है अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर ही लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा हैं। अतः ON से कम या अधिक उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ अधिकतम लाभ (NH) से कम होगा। कुल लाभ वक्र TP शुरुआत में उत्पादन मात्रा OM से कम X अक्ष के नीचे स्थित है जिसका अर्थ यह है कि फर्म को OM उत्पादन मात्रा से कम उत्पादन मात्रा पर ऋणात्मक लाभ (हानि) प्राप्त हो रही है। बिन्दु M के बाद फर्म को लाभ प्राप्त होना शुरू होता है जो ON उत्पादन मात्रा पर अधिकतम होता जाता है इसके बाद भी फर्म यदि उत्पादन करती है तो लाभ वक्र नीचे को गिरने लगता है जो यह दर्शाता हैं की फर्म का लाभ घटता जा रहा हैं। ON उत्पादन मात्रा पर ही कुल आगम और कुल लागत वक्र के बीच अधिक अन्तर हैं, ऐसा H बिंदु पर खीची गई स्पर्श रेखाओ द्वारा भी स्पष्ट होता हैं।

इस बिन्दु पर ही फर्म को अधिकतम लाभ NH की प्राप्ति होती है। इसके बाद फर्म उत्पादन नहीं करेगी क्योकि कुल आगम और कुल लागत के बीच अन्तर घटने लगता है फलस्वरूप कुल लाभ भी कम हो जाएगा। उत्पादन मात्रा OQ पर कुल लागत और कुल आगम वक्र एक दूसरे को पुन: काटते है अर्थात उत्पादन मात्रा OQ पर कुल आगम कुल लागत के बराबर है। अतः बिन्दु S पुनः एक समस्थिति बिन्दु (Break Even Point) है। यदि उत्पादन को OQ से अधिक बढ़ाते है, तो फर्म की कुल आगम कुल लागत की अपेक्षा कम होगी और उसे हानि उठानी पडेगी। जैसा कि कुल लाभ वक्र TP से भी पता चल रहा है कि OQ उत्पादन मात्रा के बाद वह X अक्ष के नीचे जा रहा है।

फर्म के संतुलन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण का प्रयोग प्रायः व्यावसायिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है किन्तु इसमें कई कमियाँ है प्रथम कमी तो यह है कि कुल आगम और कुल लागत के बीच अधिकतम अन्तर ज्ञात करना बहुत कठिन है। बहुत सी स्पर्श रेखाएँ खीचनी पड़ती है और तब कही दो समान्तर स्पर्श रेखाएं दोनों वक्रों पर ज्ञात होती है। जिनके अनुरूप कुल लाभ अधिकतम होता है। यदि कुल लाभ वक्र खीचा जाता है तो अधिकतम लाभ (Maximum Profit) बिन्दु ज्ञात करना कम कठिन हो जाता है, कोई कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु H अधिकतम लाभ को व्यक्त करता है। दूसरी कमी यह हैं की प्रति इकाई कीमत की जानकारी नहीं होती हैं इसलिए आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में सन्तुलन की व्याख्या सीमान्त विश्लेषण से की जाती हैं जिसमें सीमान्त आगम और सीमान्त लागत की धारणाओं का प्रयोग करा जाता है।

10.4.2 सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन (Equilibrium through Marginal Revenue and Marginal Cost Curves)

एक फर्म को एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन करने में जो लागत आती है उसें सीमान्त लागत (Marginal Cost) कहते है, एवं इस अतिरिक्त इकाई की बिक्री से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आगम (Marginal Revenue) कहते है। एक फर्म का लाभ तब तक बढ़ेगा जब तक उसे अतिरिक्त इकाई की बिक्री से लागत की तुलना में आगम अधिक प्राप्त होता है। अर्थात फर्म का उत्पादन तब तब बढ़ेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त आय से अधिक होगा।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर फर्म के सन्तुलन को चित्र 10.2 के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। MR और MC फर्म के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र है जो एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत के बराबर है और फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। इसके कम उत्पादन करने पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत से अधिक है अतः

उत्पादन बढ़ाकर लाभ बढ़ाया जा सकता है जैसे OM उत्पादन पर सीमान्त आगम MQ और सीमान्त लागत MW हैं जो कि उससे कम है इस कारण Nवीं इकाई तक उत्पादन करना लाभकारी होगा। फर्म का उत्पादन यदि ON मात्रा से आगे बढ़ता है तो सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आगम (MR) से अधिक हो जाती है जो फर्म के लाभ में कमी को दर्शाता है। इसलिए फर्म ON मात्रा उत्पादित करके अधिकतम सम्भव लाभ कमाएगी और संतुलन में होगी। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म अधिकतम लाभ और सन्तुलन को तब प्राप्त करेगी जब निम्न शर्त पूरी होगी-

सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC)

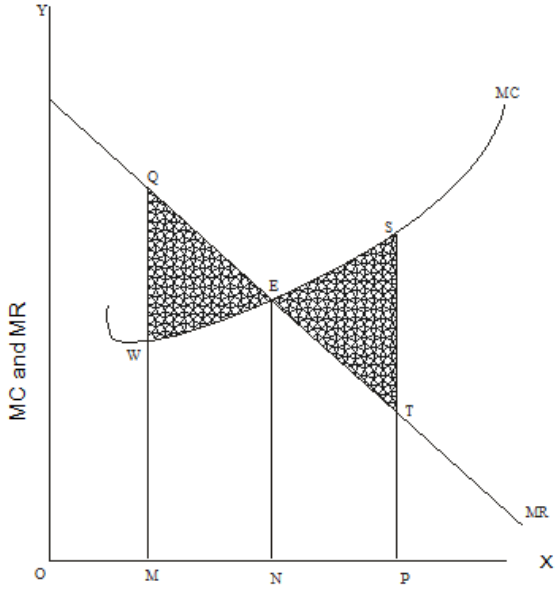

चित्र 10.2

यह फर्म के सन्तुलन की प्रथम शर्त है। फर्म के सन्तुलन के लिए सीमान्त आगम (MR) का सीमान्त लागत (MC) से बराबर होना ही जरूरी नहीं है बल्कि फर्म का सन्तुलन तब पूर्ण माना जाता है जब सन्तुलन बिन्दु पर सीमान्त लागत (MC) वक्र सीमान्त आगम (MR) वक्र को नीचे से (अथवा बायें से दायें) काटता हैं अर्थात सन्तुलन उत्पादन मात्रा के आगे सीमान्त लागत MC सीमान्त आगम MR से अधिक होता हैं। इसी को फर्म के सन्तुलन की दूसरी शर्त कहते है। जिसे चित्र 10.2 एवं 10.3 में दिखाया गया है।

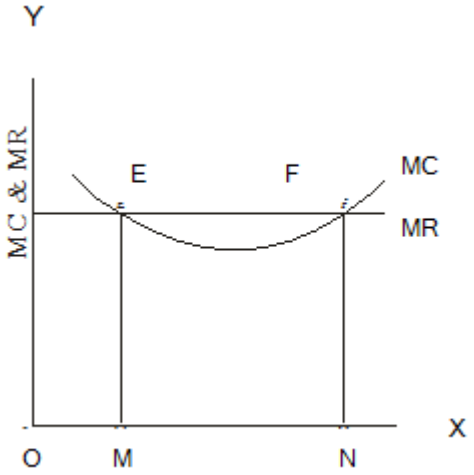

चित्र 10.3

चित्र 10.3 में सीमान्त आगम वक्र क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा (Straight line parallel to x axis) है जैसा पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में होता है। और सीमान्त लागत वक्र MC शुरू में तो नीचे की ओर गिरता हुआ होता हैं परन्तु कुछ समय बाद यह ऊपर की ओर बढ़ता है जो सीमान्त आगम वक्र MR को दो बिन्दुओं E और F पर काटता है जिस पर दोनों बराबर होते है। बिन्दु E पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को ऊपर से काटता है और OM उत्पादन होता है, परन्तु ON उत्पादन मात्रा तक सीमान्त लागत सीमान्त आगम से कम है इसलिए E बिन्दु या OM उत्पादन पर सन्तुलन फर्म के लिए अलाभकारी है। बिन्दु F (ON उत्पादन) पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से काटता है और इस बिन्दु के बाद सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक होती है। अतः यह स्पष्ट है कि फर्म का सन्तुलन F बिन्दु पर होगा और वह ON मात्रा उत्पादित करेगा। जहाँ फर्म दोनों शर्ते पूरी हो रही है-

1. सीमान्त लागत (MC)= सीमान्त आगम (MR)
2. सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम को संतुलन बिन्दु पर नीचे से काटता है। अर्थात सीमान्त आगम वक्र की ढाल सीमान्त लागत की ढाल से कम हो।

सन्तुलन की उपर्युक्त शर्ते पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता सभी में पूरी होनी चाहिए। अर्थशास्त्र में इस विधि के प्रयोग द्वारा ही अधिकतर फर्म के सन्तुलन का विश्लेषण किया जाता है। सीमान्त वक्रों की सहायता से सन्तुलन ज्ञात करना एक तो सुगम है और इस से ना केवल सन्तुलन मात्रा और लाभ ज्ञात हो जाता हैं, फर्म या उत्पादक के प्रति इकाई मूल्य को भी जान सकते है। साथ ही लाभ के सम्बन्ध में सही स्पष्टीकरण भी हो जाता है।

10.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium under Perfect Competition)

एक फर्म साम्य में तब होगी जब उसके उत्पादन में कोई परिर्वतन नहीं होगा। फर्म अपने उत्पादन में तब तक कोई परिर्वतन नहीं करती हैं जब तक उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, जो उसे तब प्राप्त होगा जब सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर होगा। यह स्थिति प्रत्येक बाजार में होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा कहते है दूसरा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात औसत आगम रेखा एक पड़ी रेखा होती है तथा औसत आगम (AR) सीमान्त आगम (MR) के बराबर होता है, ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश एवं बर्हिगमन (exit) के कारण होता है, जो दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त है कि गारन्टी देता है।

जैसा कि चित्र 10.4 से भी स्पष्ट है कि आरम्भ में एक वस्तु का माँग वक्र DD और पूर्ति वक्र SS हैं जो E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते है और OP कीमत निर्धारित होती है। जिस स्थिर कीमत पर औसत आगम (AR) वक्र, सीमान्त आगम (MR) वक्र के बराबर होगा यदि माँग वक्र ऊपर बढ़कर D^1 D^1 हो जाए तो कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है, जिसे स्थिर कीमत मानने पर नई औसत आगम तथा सीमान्त आगम ($AR_1 = MR_1$) वक्र OP_1 पर स्थिर है। इसी तरह माँग के घटने पर D_1 D_1 माँग वक्र पहुँच जाता है और कीमत OP^1 हो जाएगी। जिस पर सीमान्त आगम औसत आगम ($AR^1 = MR^1$) के बराबर हो जाते है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता फर्म के लिए वस्तु की कीमत एक ही रहती है, और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इसलिए फर्म के साम्य पर औसत आगम (AR), सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) तीनो बराबर होगे और इसके अतिरिक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटेंगे।

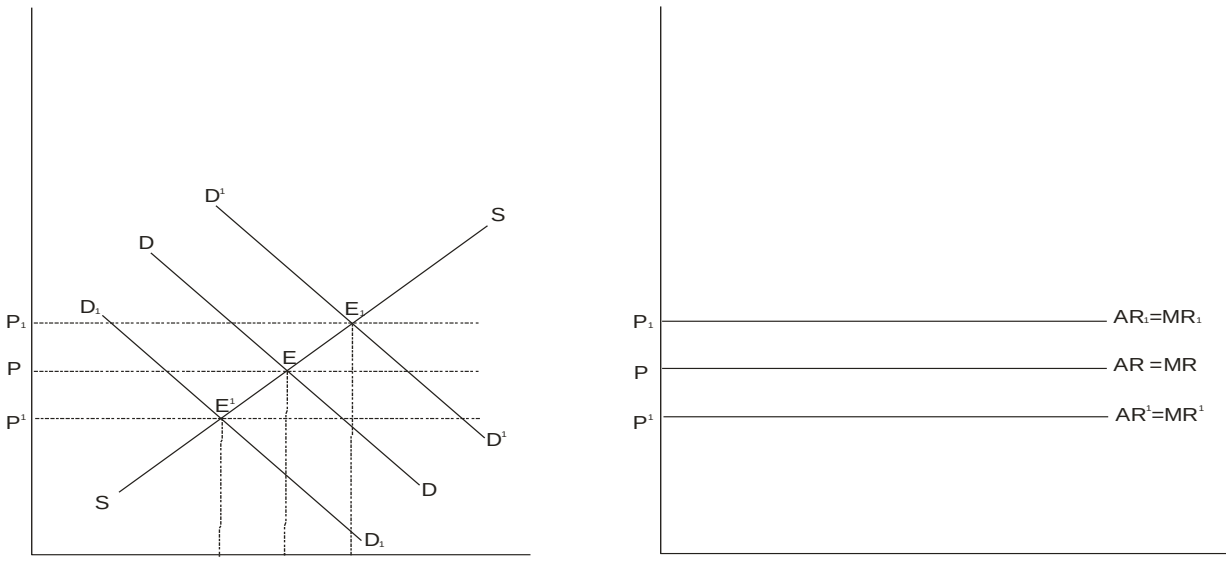

चित्र 10.4

10.5.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन (Firm's Equilibrium in Short Run)

अल्पकाल में फर्म के पास इतना समय नहीं होता कि वह पूर्ति को घटा या बढ़ा कर माँग के अनुरूप ले जाए। अतः अल्पकाल में एक फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि कुछ भी हो सकता है। जैसाकि चित्र 10.5 (अ, ब,स) में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर दिखाया गया है जहाँ MR=MC है एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा है। अल्पकालीन लागत वक्र (Short run cost curve) की स्थिति में अन्तर के कारण फर्म असामान्य लाभ, सामान्य लाभ अथवा हानि अर्जित करती है। जबकि तीनों ही स्थिति में प्रति इकाई कीमत OP ही है।

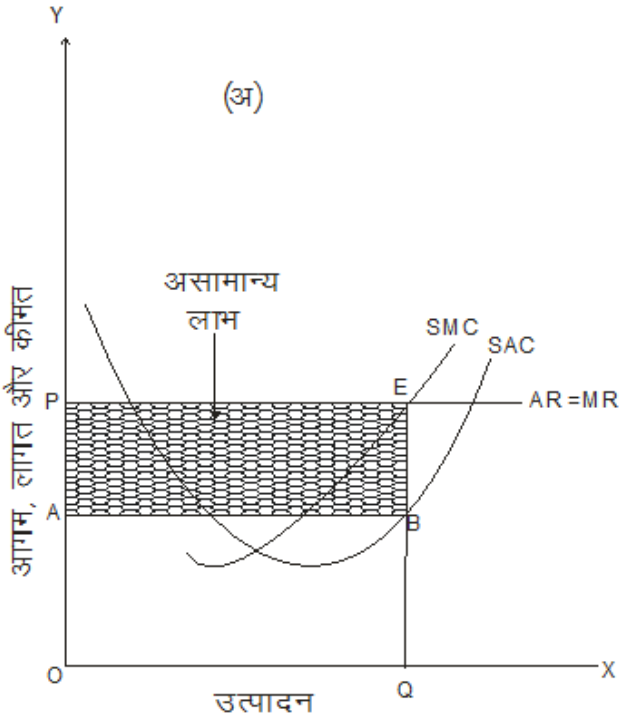

चित्र 10.5 'अ'

चित्र 10.5 'अ' में सन्तुलन बिन्दु E पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है। सीमान्त आगम (MR) और औसत लागत (AC) के बीच अन्तर BE हैं जोकि प्रति इकाई लाभ को बताता है कुल लाभ (असामान्य) ज्ञात करने के लिए BE को कुल उत्पादन OQ या AB से गुणा कर देते है, अर्थात कुल लाभ आयात APEB का क्षेत्रफल होगा।

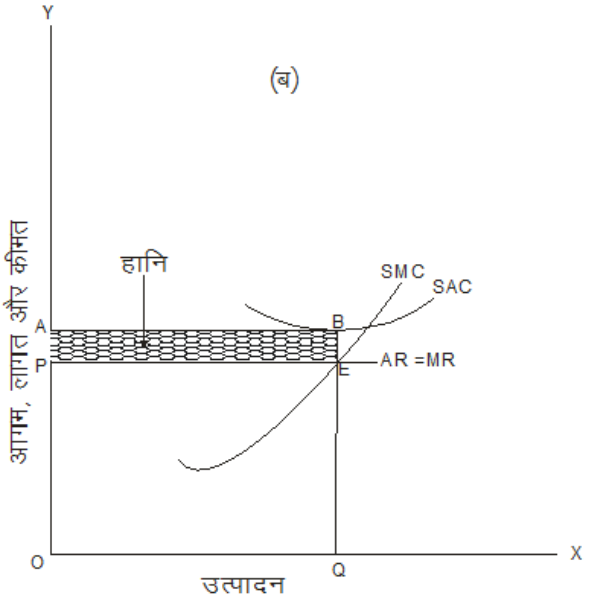

चित्र 10.5 'ब'

चित्र 10.5 'ब' में सन्तुलन बिन्दु E पर OQ उत्पादन पर कीमत OP प्रति इकाई लागत BQ से कम है अतः फर्म को प्रति इकाई BE की हानि है, जबकि कुल हानि ABEP के बराबर होगी।

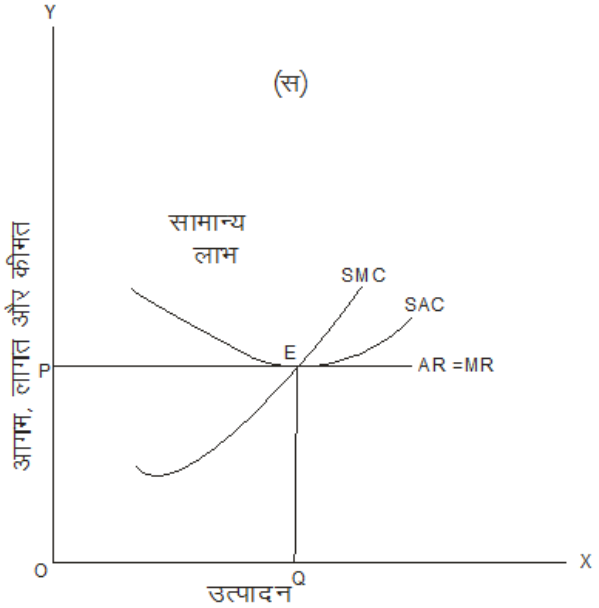

चित्र 10.5 'स'

चित्र 10.5 'स' में OQ उत्पादन स्तर पर औसत आगम और औसत लागत बराबर हैं, अतः बिन्दु E को शून्य लाभ बिन्दु या सामान्य लाभ बिन्दु कहा जाएगा।

अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा:-

इस सन्दर्भ हम लोगों के स्थिर एवं परिर्वतनशील भाग को ध्यान में रखते है। अल्पकाल में फर्म हानि होने पर उत्पादन स्थगित या बन्द नहीं करती क्योंकि पूँजी, उपकरण सयंत्र आदि जैसे बधे एवं स्थिर साधनों को बदल नहीं सकते और इनके बराबर हानि उठानि पढ़ेगी चाहे वह उत्पादन करें अथवा या करें। परन्तु अल्पकाल में यदि उत्पादन लागत में से केवल परिवर्तनशील लागत प्राप्त हो रही है तो फर्म हानि की स्थिति में उत्पादन जारी रखेगी जबकि दीर्घकाल में उसकी कुल लागत (स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आए तभी वह उत्पादन जारी रखती है। अत: यदि अल्पकाल में फर्म परिवर्तनशील लागतों को पूरा नहीं कर पाती, तो वह अनावश्यक हानि से बचने के लिए उत्पादन बन्द कर देगी।

10.5.2 दीर्घकाल में फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium in Long Run)

दीर्घकाल में फर्म के पास इतना समय होता है कि वह सभी साधनों की पूर्ति को घटा या बढ़ा कर पूर्णतया माँग के अनुरूप ले आए, अतः दीर्घकाल में फर्म को ना लाभ होगा ना ही हानि, बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात औसत आगम (AR) औसत लागत (AC) से अधिक है, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्म उद्योग में प्रवेश करेगी और वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी परिणामस्वरूप कीमत घटकर औसत लागत (AC) के बराबर हो जाएगी। यदि फर्म को हानि है तो कीमत (AR) औसत लागत (AC) से अधिक है फलस्वरूप कई फर्मे उद्योग छोड़ देगी और पूर्ति कम होने से कीमत बढ़कर ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जाएगी। इससे यह अर्थ निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त होने के लिए निम्न दो शर्ते अवश्य पूरी होनी चाहिए।

(1) कीमत (P=AR) = सीमान्त लागत (MC)

(2) कीमत (P=AR) = औसत लागत (AC)

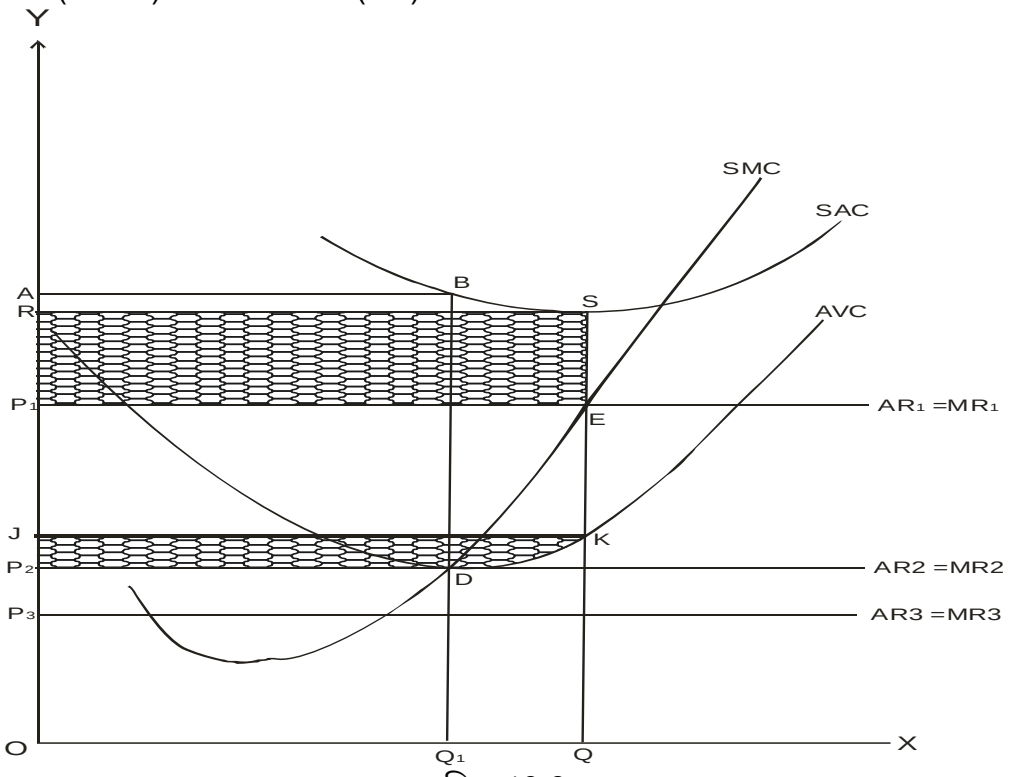

चित्र 10.6

सीमान्त लागत और औसत लागत के परस्पर सम्बन्ध से हम जानते है कि सीमान्त लागत केवल औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर ही बराबर होती है। अतः इसे हम इस प्रकार व्यक्त करते है :-

कीमत (AR) = सीमान्त लागत (MC) = निम्नतम औसत लागत (Lowest of AC)

चित्र 10.6 में दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा है। औसत आगम रेखा (AR) LAC रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु E पर स्पर्श करती है इसी E बिन्दु पर सीमान्त आगम रेखा (MR), LMC रेखा भी स्पर्श करती है। अतः E बिन्दु पर फर्म के दीर्घकालीन साम्य की सभी शर्ते पूर्ण हो जाती है और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर होता है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह फर्म इष्टमत आकार (Optimum size) की है, जहाँ संसाधनों का अधिकतम कुशल ढंग से प्रयोग हो रहा हैं और उपभोगता वस्तु की न्यूनतम कीमत दे रहा है।

10.6 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का सन्तुलन (Industry's Equilibrium under Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब कहलाता है जब उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती। प्रचलित कीमत पर एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब होगा, जब उस उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) उसकी कुल माँग (D) के बराबर हो। सरल रूप में वस्तु की जिस मात्रा तथा कीमत पर उसका माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेगें, उस उत्पादन मात्रा पर उघोग का सन्तुलन होगा। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी उद्योग के सन्तुलन के लिए निम्न शर्ते पूरी होनी चाहिए।

1. उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा तथा इसके लिए माँग की मात्रा समान हो।
2. माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर सभी फर्मे व्यक्तिगत सन्तुलन में हो और उनकी सीमान्त लागत सीमान्य आगम के बराबर हो।
3. नई फर्मों के उद्योग में प्रवेश करने तथा वर्तमान फर्मो की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृति नहीं पाई जाती है और वर्तमान फर्मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन के लिए पहली दोनों शर्ते तथा दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए तीनों शर्तो का पूर होना आवश्यक है।

10.6.1 अल्पकाल में उद्योग का सन्तुलन (Industry Equilibrium in Short Run)

अल्पकाल में ना कोई फर्म किसी उद्योग में प्रवेश कर सकती है और ना ही कोई फर्म उसे छोड़ सकती है। अतः उद्योग के संन्तुलन के लिए वर्तमान फर्मों द्वारा केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करने की शर्त की पूर्ति होना ही आवश्यक नहीं होता, वहाँ लाभ तथा हानि का भी अस्तित्व हो सकता है। इसलिए कोई उद्योग अल्पकालीन सन्तुलन में तब होगा जब उसके द्वारा वस्तु की पूर्ति मात्रा उसकी माँग मात्रा के बराबर होगी और उसमें उत्पादन कार्य कर रही सभी वर्तमान फर्मे व्यक्तिगत रूप से सन्तुलन में हो। अतः उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन में उसकी सभी फर्मे सन्तुलन में होती है, वे सभी असामान्य लाभ या हानि उठा सकती है।

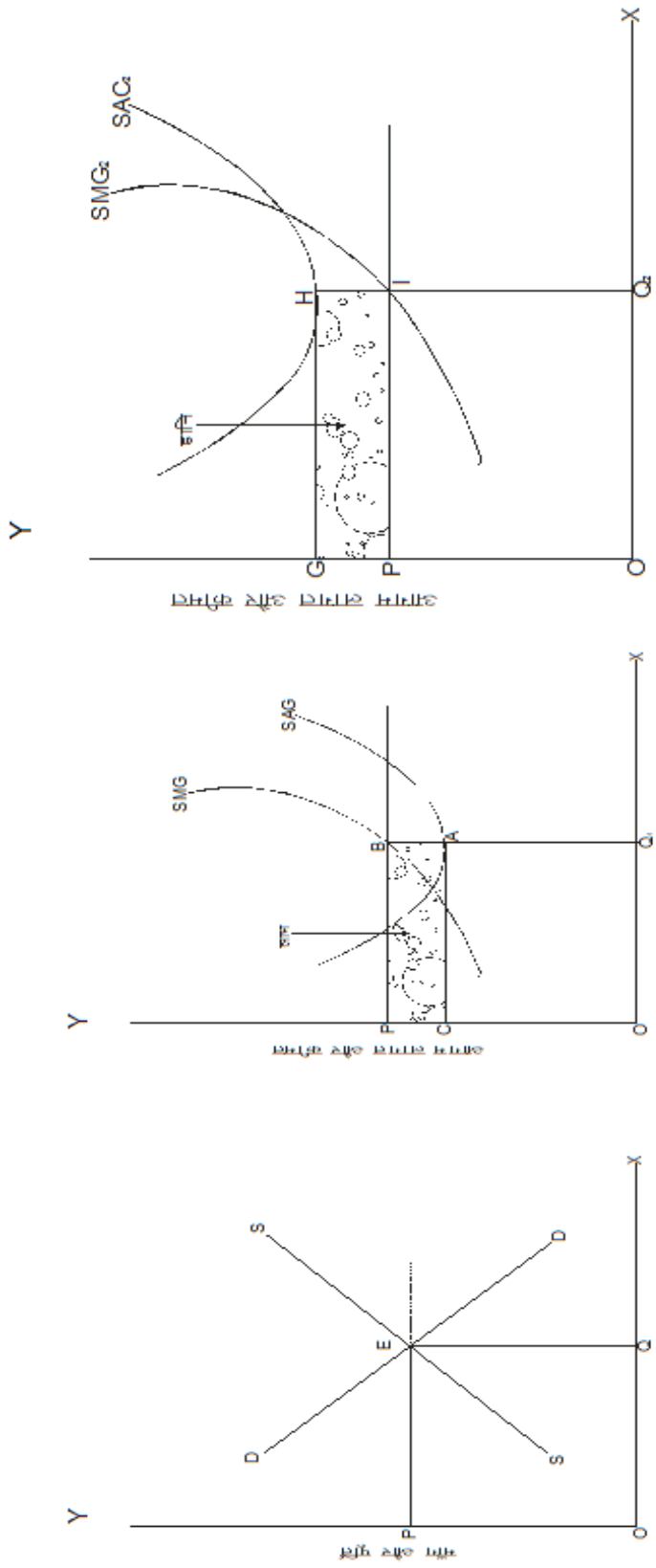

भाग (i) उद्योग

भाग (ii) फर्म A

भाग (iii) फर्म B

चित्र 10.7

चित्र के पहले भाग (i) में उद्योग की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती है। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन को बताता है क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और उसकी माँग बराबर है, उद्योग द्वारा OQ मात्रा उत्पादन की जाती हैं एवं वस्तु की कीमत OP तय होती हैं। उद्योग के इस अल्पकालीन सन्तुलन में प्रत्येक फर्म OP कीमत को दिया हुआ मानकर केवल उत्पादन मात्रा का समायोजन करती है। चित्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित अल्पकालीन सन्तुलन कीमत OP के आधार पर वस्तु की उत्पादन मात्रा का समायांजन करती है। चित्र के भाग (ii) में दी हुई कीमत पर फर्म A आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। जो B बिन्दु पर सन्तुलन में है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा (SMC) और सीमान्त आगम MR रेखा एक दुसरे को काटते है। फर्म को PBAC के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। चित्र के भाग (iii) में फर्म B को हानि हो रही है। फर्म बिन्दु I पर अल्पकालीन सन्तुलन में होगी जहाँ पर दी हुई कीमत OP पर उसका अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC_2 उसके सीमान्त आगम वक्र (MR) को काटते है और उसके कुल HIPG के बराबर हानि होती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी फर्म हो सकती है जो केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

10.6.2 दीर्घकाल में उद्योग का सन्तुलन (Industry Equilibrium in Long Run)

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें इतना अधिक समय उपलब्ध होता है कि उद्योग अपने उत्पादन को माँग परिर्वतनों के प्रति पूर्णतया समायोजित कर लेने में समर्थ हो जाती है। उद्योग जब दीर्घकाल में सन्तुलन में होती हैं तो सभी फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। यह सन्तुलन उद्योग की कुल पूर्ति और कुल माँग द्वारा निर्धारित होता है।

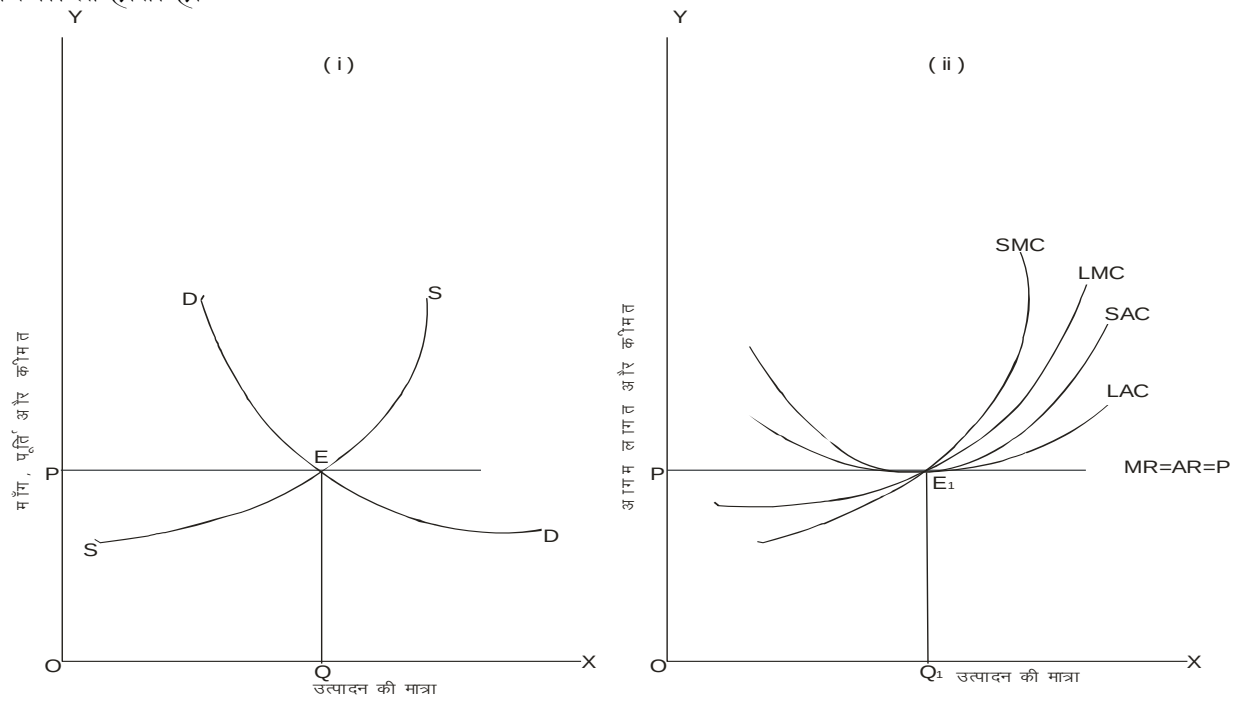

चित्र 10.8

जैसा कि चित्र 10.8 के (i) से स्पष्ट है कि उद्योग का माँग वक्र DD एवं पूर्ति वक्र SS एक दुसरे को E बिन्दु पर काट रहे है तथा इस बिन्दु पर कीमत OP और उत्पादन OQ का निर्धारण होता है। इस OP कीमत पर फर्म भी दीर्घकालीन सन्तुलन में है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। चित्र के भाग (ii) में फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित OP कीमत पर OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है क्योकि सन्तुलन बिन्दु E पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC), अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) के बराबर

है और दोनों ही कीमत के बराबर है यहाँ फर्म सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है और उद्योग में उपस्थित सभी फर्मे सन्तुलन में है एवं फर्मों के प्रवेश या निकासी की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन को पूर्ण सन्तुलन कहते है।

10.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरिए।

1. प्रतियोगिता के आधार पर बाजार..... प्रकार का होता है।
2. एक समान कीमत.....बाज़ार की विशेषता है।
3. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म की माँग वक्र की आकृति.... होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) किसी फर्म के सन्तुलन के लिए पहली आवश्यक शर्त क्या है?

1. AC=MR 2. MR=AR

3. AR=MR 4.MR=MC

(ख) निम्न में से कौन सा प्रतियोगिता के आधार पर बाजार नहीं है।

1 अल्पकालीन बाजार 2 पूर्ण प्रतियोगिता

3 अपूर्ण प्रतियोगिता 4 एकाधिकार

10.8 सारांश (Summary)

सामान्य रूप में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार के चार स्वरूप होते है पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार। इस इकाई में केवल पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की व्याख्या की गई हैं जो एक आदर्श बाजार की स्थिति को बताता है। इस बाजार में अनेकों फर्म दी हुई कीमत पर उत्पादन करती हैं इस बाजार में फर्मों के प्रवेश एवं निकासी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। वास्तविक संसार में कही भी पूर्ण प्रतियोगिता बाजार नहीं पाया जाता हैं पर इस आदर्श स्थिति में कीमत एवं उत्पादन मात्रा के निर्धारण के आधार पर हम अन्य प्रतियोगी बाजार में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का विश्लेषण कर पाएँगे।

10.9 शब्दावली (Glossary)

- **कुल लागत (Total Cost):** किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाले सभी कारकों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।
- **कुल आगम (Total Revenue):** किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों की बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।
- **कुल लाभ (Total Profit):** कुल लागत एवं कुल आगम के अन्तर को ही कुल लाभ कहते है।
- **सीमान्त लागत (Marginal Cost):** वस्तु की अतिरिक्त इकाई (additional unit) के उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है।
- **सीमान्त आगम (Marginal Revenue):** फर्म के द्वारा उत्पादित वस्तु की अतिरिक्त इकाई की बिक्री से प्राप्त हुए आगम को सीमान्त आगम कहते है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरिए-

1. एक, 2. पूर्ण प्रतियोगिता, 3. पूर्णतया लोचदार

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) 4. MR = MC (ख) 1. एकाधिकार

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण***, शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

10.12 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics***, Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. "एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जब वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म को मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो"। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
2. उद्योग में सन्तुलन से क्या अभिप्राय है? पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन सन्तुलनों की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 11 एकाधिकार प्रतियोगिता
(Monopoly Competition)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उद्देश्य (Objective)
11.3 एकाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएं (Meaning and Characteristics of Monopoly)
11.3.1 एकाधिकार के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्र (Demand and Supply curve under Monopoly)
11.4 एकाधिकार के मूल्य निर्धारण (Determination of Price under Monopoly)
11.4.1 अल्पकालीन एकाधिकार सन्तुलन (Short Run Monopoly Equilibrium)
11.4.2 दीर्घकालीन एकाधिकार सन्तुलन (Long Run Monopoly Equilibrium)
11.5 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची होती है ? (Is Monopoly price always higher than the Competitive price)
11.6 पूर्ण प्रतियोगी तथा एकाधिकार के बीच अंतर (Difference between Perfect Competition and Monopoly)
11.7 एकाधिकार के प्रभाव (Effects of Monopoly)
11.7.1 एकाधिकार के अच्छे प्रभाव (Good Effects of Monopoly)
11.7.2 एकाधिकार के बुरे प्रभाव (Bad Effects of Monopoly)
11.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
11.9 सारांश (Summary)
11.10 शब्दावली (Glossary)
11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
11.13 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)
11.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई के अर्न्तगत 'पूर्ण प्रतियोगता' के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी हैं। इसके द्वारा आपने यह समझा कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार की क्या विशेषताए होती हैं? इसकी मान्यताएँ क्या है? साथ ही इसमें पूर्ण प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गयी हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति एकाधिकार की होती है जिसमें प्रतियोगिता का पूर्णत: अभाव होता है। यह बाजार का वह प्रकार है जिसमें बाजार की पूर्ति का नियंत्रण एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। अर्थात् इस बाजार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है तथा उद्योग भी वह फर्म ही होती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग व अपरिमित फर्मों का अलग-अलग अस्तित्व होता है।

इस इकाई के अर्न्तगत बाजार की दूसरी चरम स्थिति 'एकाधिकार' की चर्चा की गई हैं। एकाधिकार का अर्थ और उसकी विशेषताओं के साथ-साथ उसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की चर्चा की गयी है। इस इकाई में एकाधिकार के मूल्य विभेदीकरण का भी उल्लेख किया गया है।

11.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ✓ बाजार के एकाधिकार स्वरूप से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।
- ✓ एकाधिकार की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- ✓ एकाधिकार के अर्न्तगत सन्तुलन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- ✓ एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य विभेदीकरण (Price discrimination) से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगी बाजार के मध्य अन्तर करने में समर्थ होंगें।

11.3 एकाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characterstics of Monopoly)

एकाधिकार का अंग्रेजी शब्द 'Monopoly' दो शब्दों 'Mono' और Poly' से मिलकर बना है। Mono का अर्थ है 'अकेला' तथा Poly का अर्थ है 'विक्रेता'। अत: Monopoly का शाब्दिक अर्थ है- अकेला विक्रेता अथवा एकाधिकार। जब किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन तथा विक्रय पर किसी एक व्यक्ति अथवा फर्म का पूर्ण अधिकार रहता है तो इसे एकाधिकार की स्थिति कहते हैं। अर्थात् एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण हो। स्पष्ट है कि एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति है। एकाधिकार के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं (Conditions) का पूरा होना आवश्यक है:-

1. वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादक केवल एक फर्म द्वारा हो। अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं।
2. वस्तु के कोई निकट स्थानापत्र वस्तु ना हो क्योंकि कोई नजदीकी स्थानापन्न यदि होता हैं तो प्रतियोगिता की स्थिति आ जाएगी और वस्तु की पूर्ति पर उत्पादक का पूर्ण नियंत्रण नहीं होगा।
3. उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावटे हों अर्थात् एकाधिकार के क्षेत्र में फर्मे स्वतंत्र रूप से उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती।

एकाधिकार की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न प्रकार से दी गयी है:

प्रो. बेन्हम (Prof. Benham) के अनुसार ***"एकाधिकार वस्तुत: एकमात्र विक्रेता होता है और एकाधिकारी शक्ति पूर्ति के पूर्णत: नियंत्रण पर आधारित होती है। (A Monopoly is virtually a single seller and Monopoly power is completely based on control over supply.)"***

प्रो. बोल्डिंग (Prof. Boulding) एकाधिकार को अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि ***"शुद्ध एकाधिकार फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं हो। 'प्रभावपूर्ण' से यहाँ आशय यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असाधारण लाभ कमा रहा है तथापि अन्य फर्में ऐसी स्थानापन्न वस्तुएं उत्पन करके जो कि खरीददारों को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सके, उक्त लाभों पर अतिक्रमण करने की स्थिति में नही है।"***

प्रो. चैम्बरलिन (Prof. Chamberlin) के अनुसार- ***"एकाधिकार उसे समझना चाहिए जो किसी एक वस्तु की पूर्ति पर नियंत्रण रखता हो। (A Monopoly should be understood as the one who controls supply of a commodity.)"***

इसी प्रकार **प्रो. लर्नर** (Prof. Learner) के अनुसार ***"एकाधिकार से आशय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का माँग वक्र गिरता हुआ होता है। (A Monopoly is any seller who is confronted with a falling demand curve of his product.)"***

एकाधिकार की विशेषताएं (Characteristics of Monopoly)

विभिन्न अर्थशास्त्रीयों की उपर्युक्त व्याख्या से एकाधिकारी की निम्नांकित महत्वपूर्ण विशेषताएं ज्ञात होती है-

1. एकाधिकार की स्थिति में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है।
2. एक विक्रेता होने के फलस्वरूप पूर्ति के ऊपर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है। वह पूर्ति को घटाकर या बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अर्थात एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति होती है।
3. एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई दूसरी वस्तु नजदीक स्थानापन्न नहीं होती है। दूसरे शब्दों में एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु एवं बाजार में बेचीं जाने वाली अन्य वस्तुओं के बीच माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity) शून्य होती है।
4. एकाधिकार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है। अर्थात फर्म ही उद्योग है। स्पष्ट है कि एकाधिकार में फर्म तथा उद्योग में अन्तर नही रहता।
5. एकाधिकारी उद्योग में अन्य फर्मों की प्रवेश (Entry) नहीं हो सकती।
6. एकाधिकारी की स्थिति में मूल्य विभेद (Price discrimination) सम्भव हो सकता है। अर्थात एकाधिकारी ऐसी स्थिति में होता है जहाँ वह अपनी उत्पादित वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग-अलग उपभोक्ताओं को अलग-अलग मूल्यों पर बेच सकता है।

11.3.1 एकाधिकार के अन्तर्गत माँग व पूर्ति वक्र (Demand and Supply Curve under Monopoly)

जैसा कि आपने पिछली इकाई में समझा कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों की संख्या अपरिमित होती है और फर्म मूल्य निर्धारक नहीं होती बल्कि उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य ही फर्मे स्वीकार करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्मे जितनी चाहे उतनी मात्रा में वस्तुओं को बेच सकती है, यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की माँग रेखा एक निश्चित मूल्य स्तर पर आधार के समानान्तर होती है। परन्तु एकाधिकार के अन्तर्गत उद्योग में एक ही फर्म होती है अर्थात एकाधिकार में फर्म ही उद्योग होती है। एकाधिकारी फर्म का माँग वक्र भी साधारण माँग वक्र तरह ही ऋणात्मक ढाल का होगा अर्थात ऊपर से नीचे दाहिने ओर गिरता हुआ होगा क्योंकि कोई भी एकाधिकार फर्म बिना मूल्य में कमी किए अपने उत्पाद की अधिक इकाईयों को नहीं बेच सकता हैं। आप इस तथ्य से भी अवगत हो चुके है कि उपभोक्ता का माँग वक्र ही उत्पादक की दृष्टि से औसत आय वक्र (Average Revenue Curve) होता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा दिया जाने वाला मूल्य ही विक्रेता की आय होती है। एकाधिकार के माँग वक्र के अनुरूप ही सीमान्त आय वक्र (Marginal Revenue Curve) भी नीचे गिरता हुआ वक्र होता है। एकाधिकारी

के अन्तर्गत नीचे गिरती हुई सीमान्त आय (Marginal Revenue- MR) वक्र औसत आय (Average Revenue - AR) से मूल्य Y अक्ष पर (X अक्ष के समान्तर) रेखा खीची गई हैं जो AR वक्र को दो बराबर भागो में विभाजित करती है। एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आय (Average Revenue - AR) व सीमान्त आय (Marginal Revenue- MR) वक्रों का स्वरूप निम्नवत होता है।

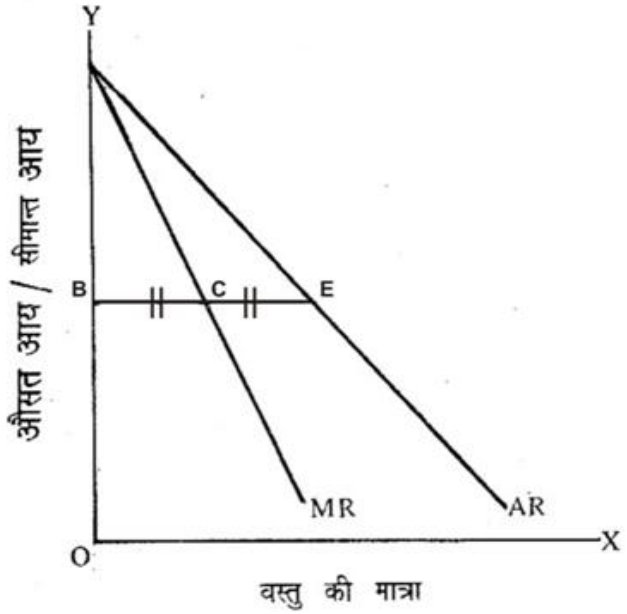

चित्र 11.1

अत: यह स्पष्ट है कि जब औसत आय एक क्षैतिज वक्र हो (X अक्ष के समान्तर रेखा) जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में होता हैं तो उस स्थिति में AR=MR होगा। इसके विपरीत जब औसत आय (Average Revenue - AR) वक्र दाहिनी ओर गिरती हुई एक सीधी रेखा हो तो (एकाधिकार की स्थिति) उससे लम्ब अक्ष पर खींचे गए लम्ब को सीमान्त आय (Marginal Revenue- MR) वक्र दो बराबर भागों में विभाजित करता है। एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण में औसत आय (Average Revenue - AR), सीमान्त आय (Marginal Revenue- MR) व माँग की लोच के मध्य गणितीय सम्बन्ध का विशेष महत्व है। इन तीनों के मध्य निम्न गणितीय सम्बन्ध होता है:

$$\mathrm{MR} = \mathrm{AR}\left(1 - \frac{1}{\mathrm{e}}\right),$$ जहाँ e माँग की लोच हैं।

अत:

$$\mathrm{AR} = \mathrm{P} = \mathrm{MR}\left(\frac{\mathrm{e}}{\mathrm{e}-1}\right),$$

चूँकि $\left(\frac{\mathrm{e}}{\mathrm{e}-1}\right)$ का मान निश्चित रूप से 1 से अधिक होगा इसीलिए सीमान्त आय (Marginal Revenue- MR) का मान औसत आय (AR) या मूल्य लागत वक्र के सन्दर्भ में प्रतियोगी फर्म और एकाधिकारी फर्म के मध्य कोई विभेद नहीं होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की तरह ही एकाधिकारी की AVC, MC तथा AC अंग्रेजी के U आकार की तथा औसत स्थिर लागत (AFC) समकोणीय अतिपरवलय होगी। बाजार के इन दोनों स्वरूपों में सबसे ज्यादा स्मरणीय तथ्य पूर्ति वक्र के सन्दर्भ में होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में चूँकि सीमान्त लागत (MC) मूल्य के बराबर होता हैं। अत: सीमान्त लागत (MC) वक्र के प्रत्येक बिन्दु विभिन्न बिन्दुओं पर फर्म द्वारा पूर्ति की जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में सीमान्त लागत (MC) वक्र ही फर्म की पूर्ति वक्र होती है। इसके विपरीत एकाधिकार सीमान्त आय (MR) वक्र औसत आय

(AR) वक्र से नीचे होता है अतः MR=MC का समता बिन्दु निश्चित रूप से औसत आय (AR) वक्र के नीचे होगा। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत (MC) वक्र के बिन्दु ना तो मूल्य को प्रदर्शित करेंगे और ना ही एकाधिकारी द्वारा विभिन्न मूल्यों पर बेची जाने वाली मात्राओं को ही प्रदर्शित करेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार में पूर्ति वक्र का कोई निश्चित स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता।

11.4 एकाधिकार के अंतर्गत मूल्य निर्धारण (Determination of Price under Monopoly)

पिछली इकाई में आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मात्रा व मूल्य निर्धारण के सन्दर्भ में हल और औसत विधियों को विस्तर से जाना। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म की संस्थिति को ज्ञात करने के दो तरीके होते हैं।

इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म भी अल्पकाल तथा दीर्घकाल, दोनों में क्रियाशील हो सकती है। अतः अब हम एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन तथा मूल्य निर्धारण का विश्लेषण अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों के अन्तर्गत करेंगे।

11.4.1 अल्पकालीन एकाधिकार सन्तुलन (Short Run Monopoly Equilibrium)

अल्पकाल की प्रमुख विशेषता यह है कि एकाधिकारी फर्म एक दिए हुए प्लान्ट पर ही कार्य करेगी क्योकि वह इस अवधि में प्लांट के आकार में परिवर्तन नहीं ला सकती है। माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार पूर्ति में समायोजन वह परिवर्तनीय साधनों मे परिवर्तन के द्वारा ही कर सकती है। वस्तुत: एकाधिकारी के विषय में एक सामान्य धारणा यह होती है कि उसे हानि नहीं हो सकती है क्योंकि वह एकाधिकारी है परन्तु सच्चाई यह है कि एकाधिकारी लाभ की मात्रा उसकी माँग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। अतः अल्पकाल में एकाधिकारी को असामान्य लाभ (AR>AC) सामान्य लाभ (AR=AC) तथा हानि (AR<AC) तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। इन तीनों स्थितियों को हम चित्रों की सहायता से स्पष्ट कर रहे है।

1. असामान्य लाभ (Super Normal Profit) (AR>AC):

चित्र 11.2 के अनुसार अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) है जो एकाधिकारी फर्म के उस प्लाण्ट से सम्बन्धित है जिस पर वह उत्पादन कर रही है। AR तथा MR क्रमश: औसत आय व सीमान्त आय वक्र है। जबकि SAC तथा SMC क्रमश: अल्पकालीन औसत लागत वक्र एवं अल्पकालीन सीमान्त लागत को प्रदर्शित करते है। एकाधिकार मूल्य तथा उत्पादन वहाँ निर्धारित करेगा जहाँ MR=MC है।

चित्र में SMC वक्र सीमान्त आय (MR) को E बिन्दु पर काटता है। E से उत्पादन अक्ष पर खीचा गया लम्ब, अधिकतम लाभ के उत्पाद मात्रा OQ का निर्धारण करता है। OQ से सम्बन्धित औसत आय (AR) का बिन्दु (K) मूल्य को बताएगा क्योंकि मूल्य (P)= औसत आय (AR) इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है-

संस्थिति उत्पाद (Firm's Output) =OQ; मूल्य (Price) = OP या KQ; औसत लागत (AC)=QF

अतः

प्रति इकाई लाभ (Profit per unit) =QK-KF=FK

अत:

कुल लाभ (Total Profit) = FK×OQ = क्षेत्रफल PKFB

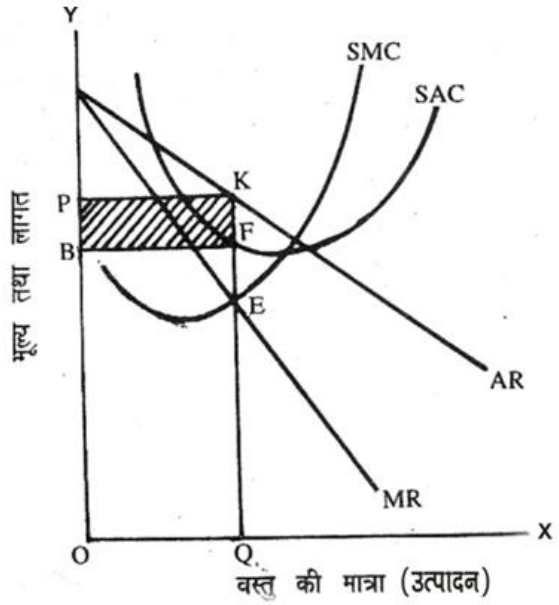

चित्र 11.2

2. सामान्य लाभ (Normal Profit) (AR=AC):

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है। इसे चित्र 11.3 में स्पष्ट किया गया है।

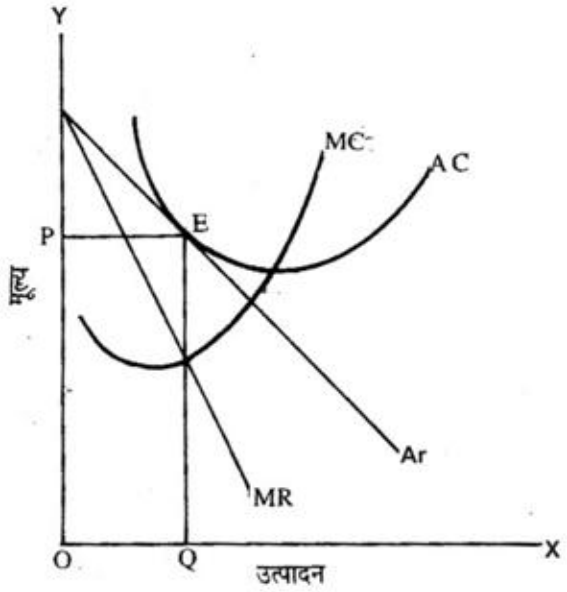

चित्र 11.3

चित्र से स्पष्ट है कि -

संस्थिति उत्पादन (Firm's Output) = OQ; संस्थिति मूल्य (AR)= OP=QE; औसत लागत (AC) = QE

स्पष्ट है कि AR=AC चूँकि P=AC; अत: फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर रही है।

3. हानि की स्थिति (Loss) (AR<AC):

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म हानि भी प्राप्त कर सकती है। अल्पकाल में हानि सहने वाले एकाधिकारी फर्म को चित्र 11.4 मे स्पष्ट किया गया है। चित्र 11.4 से यह स्पष्ट है कि अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC) सीमान्त आय (MR) वक्र को E बिन्दु पर काटती है। अतः चित्रानुसार -

संस्थिति उत्पादन (Firm's Output) = OQ; प्रति इकाई मूल्य (Price per unit)=OP=QE; औसत लागत (AC)=OA=QC

अत:

प्रति इकाई हानि =AC-P=OA-OP=AP=CE

अत:

कुल हानि =AP×PE=CE×OQ= क्षेत्रफल ACEP (रेखांकित भाग का क्षेत्रफल)

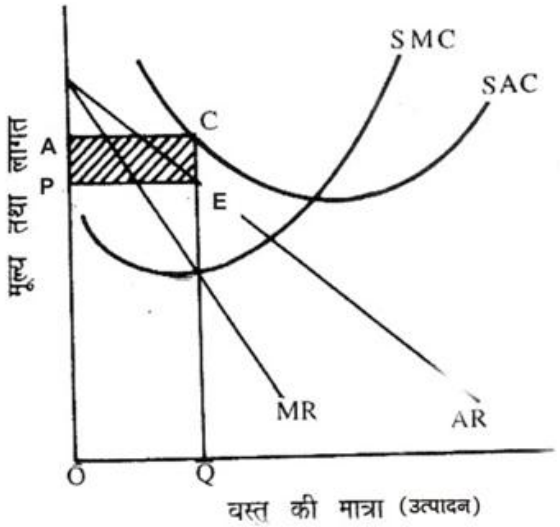

चित्र 11.4

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई भी एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में कब तक कार्य करती रहेगी? जैसा कि आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जाना होगा कि जब तक फर्म के उत्पाद का मूल्य (P) उसके औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से ऊपर रहेगा फर्म हानि पर उत्पादन करती रहेगी और जब मूल्य इससे कम हो जाता है (अर्थात P<AVC) तो फर्म अपने प्लान्ट या उत्पादन को बन्द कर देती है। यही स्थिति एकाधिकारी फर्म के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

11.4.2 दीर्घकालीन एकाधिकार सन्तुलन (Long Run Monopoly Equilibrium)

एकाधिकारी फर्म को अल्पकाल में चाहे सामान्य लाभ हो या हानि किन्तु दीर्घकाल में उसे सदैव लाभ ही होता है। क्योंकि यह अकेला उत्पादक होता है और दीर्घकाल में उसे इतना पर्याप्त समय मिल जाता है कि फर्म उत्पादन के आवश्यकतानुसार अपने प्लान्ट के आकार में वृद्धि कर सकती है या दिए हुए प्लान्ट को ही किसी स्तर तक प्रयोग में ला सकती है जिससे उसका लाभ अधिकतम् हो सके। वस्तुत: एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ अर्जित करती रहेगी जबकि पूर्ण प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म प्लान्ट के आकार तथा वर्तमान प्लान्ट को किस स्तर तक प्रयुक्त करेगी, यह बाजार की माँग के ऊपर निर्भर करेगा। एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में बाजार माँग के अनुरूप दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के न्यूनतम बिन्दु, LAC के गिरते हुए भाग या LAC के ऊपर उठते हुए भाग किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर सकती है। दीर्घकाल में असामान्य लाभ को प्रदर्शित करने वाले फर्म की संस्थिति को चित्र 11.5 से स्पष्ट किया गया है।

चित्र 11.5 में LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र है। LMC, MR को E बिन्दु पर काटता है, जिससे सन्तुलन कीमत OP तथा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है। चूँकि प्रति इकाई औसत लागत QF या OB है।
अतः

प्रति इकाई लाभ =OP-OB=PB

अतः

कुल असामान्य लाभ =OQ×PB= क्षेत्रफल PBFK

चित्र 11.5 से यह भी स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म की सन्तुलन स्थिति दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LAC) के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं है। F बिन्दु दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LAC) के गिरते हुए भाग में स्थित है। वस्तुत: दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LAC) के किस भाग में एकाधिकारी उत्पादन करेगा, यह औसत आय (AR) तथा सीमांत आय (MR) के आकार पर निर्भर करेगा।

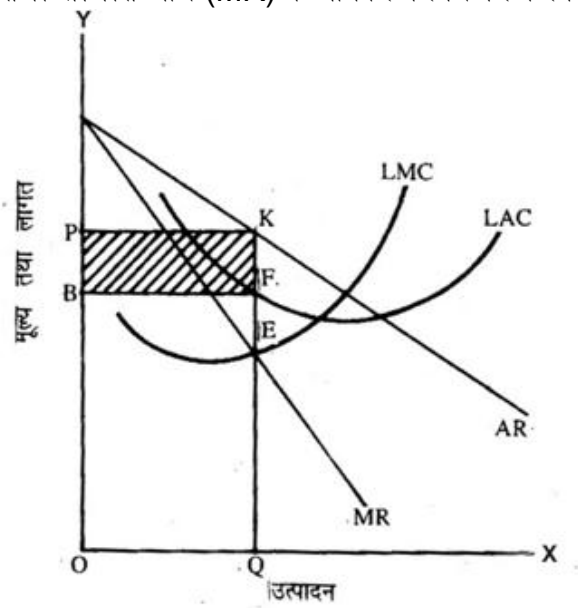

चित्र 11.5

दीर्घकालीन एकाधिकार के सम्बन्ध में एक तथ्य और भी महत्वपूर्ण है कि वह दीर्घकाल में अपनी स्थित प्लान्टों में से कुछ को बेचकर उत्पादन क्षमता कम कर सकता है या नए प्लान्टों को लगाकर उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। अतः दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार या संकुचन के कारण एकाधिकारी के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनो की लागत में वृद्धि या कमी हो सकती है, फलस्वरूप एकाधिकारी उद्योग, दीर्घकाल में बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर लागत के अर्न्तगत उत्पादन करेगा। अतः दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण की क्रिया के ऊपर उत्पादन के तीनों नियमों के प्रभावों को हम निम्नलिखित रेखाचित्रों 11.6, 11.7 तथा 11.8 के अन्तर्गत स्पष्ट कर रहे है।:-

1. लागत वृद्धि नियम लागू होने पर (In case of Law of Increasing Cost)

लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत एकाधिकारी की स्थिति को चित्र 11.6 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र 11.6 के अनुसार लागत रेखाएँ औसत लागत (AC) और सीमान्त लागत (MC) ऊपर की ओर बढ़ती हुई है, सीमान्त लागत (MC) वक्र, सीमांत आय (MR) वक्र को E बिन्दु पर काटती है। अतः एकाधिकारी OQ वस्तु का उत्पादन करेगा। इस OQ उत्पादन पर औसत आय OP है। इसी OP मूल्य पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा और फर्म को कुल PABT के क्षेत्रफल के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

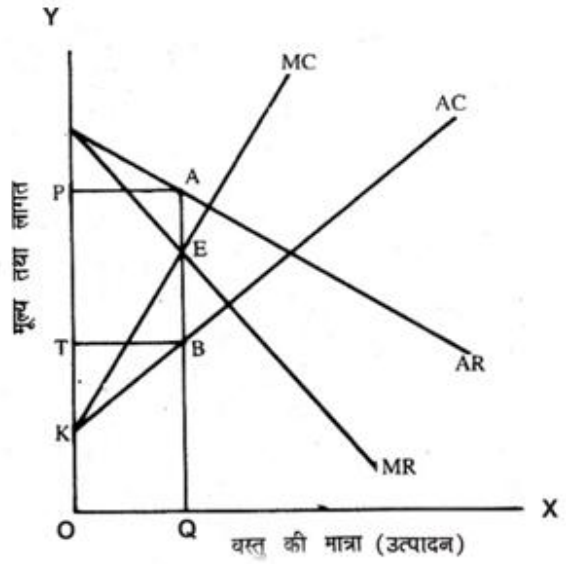

चित्र 11.6

2. लागत ह्रास नियम लागू होने पर (In case of Law of Decreasing Cost)

लागू होने पर-एकाधिकारी को लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को चित्र 11.7 में प्रदर्शित किया गया है।

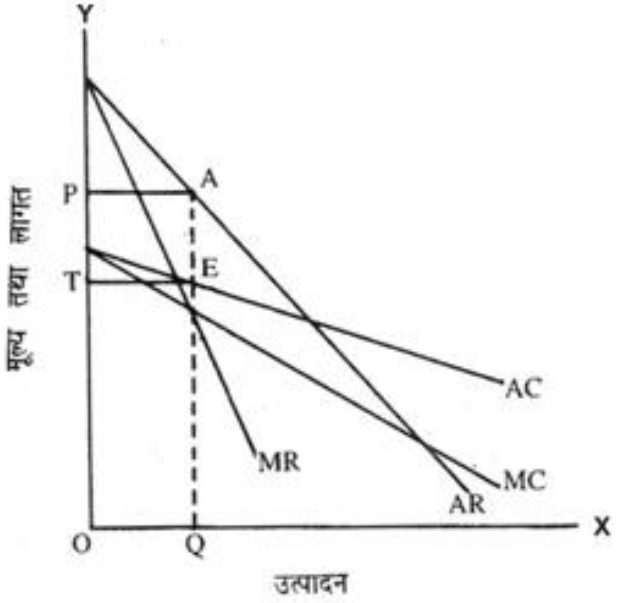

चित्र 11.7

चित्र से यह स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादन के साथ-साथ लागत घटती जाती है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी कम से कम मूल्य रखकर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहेगा। चित्रानुसार सीमांत आय (MR) तथा सीमांत लागत (MC) की समानता के आधार पर सन्तुलन उत्पाद E निर्धारण होता है।

संस्थिति मूल्य =OP; औसत लागत (AC)=OT

चूँकि **प्रति इकाई लाभ =OP-OT=PT**

अतः **कुल लाभ = PT×OQ= क्षेत्रफल PTEA**

3. स्थिर-लागत नियम लागू होने पर (In case of Law of Constant Cost)

नियम लागू होने पर एकाधिकारी की लागत स्थिरता नियम या स्थिर-लागत नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को चित्र 11.8 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 11.8 के अनुसार MR तथा MC के द्वारा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।

सन्तुलन मूल्य प्रति इकाई = OP ; औसत लागत (AC) प्रति इकाई = OA ; लाभ प्रति इकाई =OP-OA= PA

अतः

कुल लाभ = OQ×PA

अतः

कुल लाभ = क्षेत्रफल PAEB

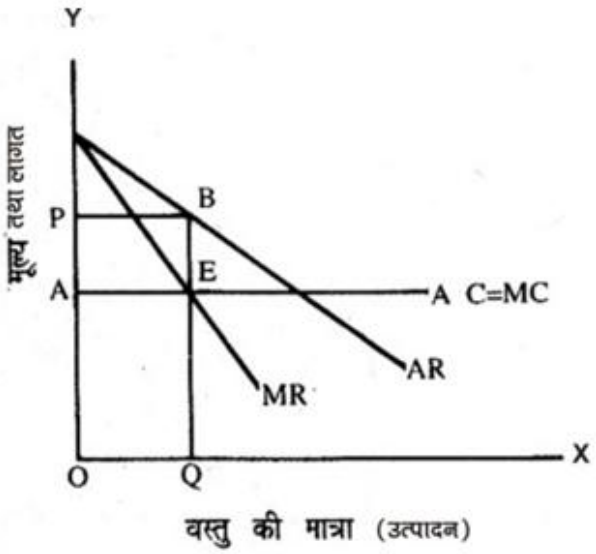

चित्र 11.8

11.5 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची होती है ? (Is Monopoly price always higher than the Competitive price)

चूँकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसका पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है। एक सामान्य धारणा यह पनपती है कि एकाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से बहुत अधिक होती है। वास्तविकता यह है कि यद्यपि कुछ स्थितियों में यथा अल्पकाल में, एकाधिकारी कीमत नीची हो सकती है और उसे उस समय केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा या हानि भी हो सकती है परन्तु प्रायः एकाधिकारी कीमत निःसंदेह प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ (Super Normal Profit) अर्जित करता है।

एकाधिकार में वस्तु की कीमत कितनी ऊँची होगी यह माँग की लोच तथा लागत के व्यवहार पर निर्भर करेगी। एक एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सदैव अपनी मूल्य लोच (price elasticity) को ध्यान में रखता है। वस्तुतः एकाधिकारी मूल्य वहाँ निर्धारित करता है जहाँ वस्तु की मूल्य लोच (price elasticity) इकाई से अधिक (e >1) हो। यदि एकाधिकारी वस्तु की माँग बेलोचदार (inelastic) है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा में कोई विशेष कमी नहीं होगी। इसके विपरीत यदि माँग अत्यधिक लोचदार (elastic) है तो एकाधिकारी को वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी जिससे वस्तु की अधिक मात्रा को बेंचकर वह अपने लाभ को अधिकतम् कर सके।

यद्यपि कुछ दशाओं में एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से नीची रख सकता है-

1. यदि एकाधिकार लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु की कीमत को अपेक्षाकृत नीची रखकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा।
2. यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकार स्थिति प्राप्त की जा सकती है तब इस स्थिति में एकाधिकार वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके वस्तु की प्रति इकाई लागत को कम करेगा। फलत: वह अपने वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से कम रखेगा।

11.6 पूर्ण प्रतियोगी तथा एकाधिकार के बीच अंतर (Difference between Perfect Competition and Monopoly)

उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त एकाधिकारी वस्तु की कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची रहती है।
पिछली इकाई के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता तथा इस इकाई में एकाधिकार के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करने के पश्चात अब पूर्ण प्रतियोगी बाजार तथा एकाधिकारी के मध्य महत्वपूर्ण अन्तरों को हम सारांश रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं -

1. **दोनों की विशेषताओं अथवा दशाओं में अन्तर (Difference in Characteristics or Conditions of Both) -** पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है; वस्तु समरूप होती है; नयी फर्मों के प्रवेश तथा पुरानी फर्मों के बहिर्गमन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता; क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है; तथा उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से गतिशील होते हैं। इसके विपरीत एकाधिकार की स्थिति में वस्तु का एक ही उत्पादक अथवा विक्रेता होता है; एकाधिकारी की वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती; तथा नई फर्मों के प्रवेश पर प्रभावशाली रोक होती है।
2. **उद्योग एवं फर्म का अन्तर (Difference in Firm and Industry) -** पूर्ण प्रतियोगिता में अनेक फर्में होती हैं तथा वे सब मिलकर उद्योग का निर्माण करती है अर्थात् उद्योग एवं फर्म अलग-अलग होते हैं; जबकि एकाधिकार में फर्मों एवं उद्योग दोनों एक ही होते हैं।
3. **माँग वक्र की स्थिति में अन्तर (Difference in the condition of Demand Curve) -** पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म का माँग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है अर्थात् फर्म का माँग वक्र OX अक्ष के समानान्तर होता है; जबकि एकाधिकारी का माँग वक्र बेलोचदार होता है, अतः यह बायें से दायें को नीचे की ओर गिरता हुआ होता है।
4. **सीमान्त तथा औसत आगम (Marginal and Average Revenue) -** पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र औसत आगम होता है तथा यह पूर्ण लोचदार एवं OX के समानान्तर होता है। अतः फर्म का सीमान्त आगम वक्र तथा औसत आगम वक्र दोनों एक ही होते हैं, जबकि एकाधिकार में फर्म का माँग वक्र बायें से दायें को नीचे गिरता हुआ होता है, अतः फर्म के सीमान्त आगम वक्र एवं औसत आगम वक्र अलग-अलग होते हैं। फर्म का सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र के नीचे रहता है।
5. **मूल्य स्वीकारक तथा मूल्य निर्धारक (Price taker or Price Maker) -** पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म मूल्य स्वीकारक होती है अर्थात् उद्योग की कुल माँग तथा पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित मूल्य को स्वीकार करना पड़ता है । वह मूल्य को स्वयं निर्धारित नहीं कर सकती है। एकाधिकार में फर्म ही उद्योग होती है, अतः वह अपनी क्रियाओं द्वारा मूल्यों को प्रभावित कर सकती है।

6. **साम्य दशाओं में अन्तर (Difference in the condition of Equilibrium) -** सामान्यतया पूर्ण प्रतियोगिता में भी फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है तथा यही उद्देश्य एकाधिकारी का होता है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म उस समय साम्य की स्थिति में होती है, जब फर्म का सीमान्त लागत फर्म के सीमान्त आगम के बराबर हो। पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य की स्थिति MC = MR = AR होती है, अर्थात् मूल्य सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत दोनों के बराबर होता है। एकाधिकारी का साम्य भी उस समय होता है जब MC = MR हो। यह साम्य पूर्ण प्रतियोगिता के साम्य से भिन्न होता है क्योंकि एकाधिकानरी का औसत आगम (मूल्य) सीमान्त आगम से अधिक होता है। अतः एकाधिकारी का मूल्य सामान्यतया सीमान्त लागत से अधिक होता है।
7. **दीर्घकाल में अधिसामान्य लाभ (Supernormal Profit in Longrun) -** पूर्ण प्रतियोगिता में, नई फर्मों के प्रवेश की स्वतन्त्रता के कारण कोई भी फर्म दीर्घकाल में असामान्य लाभ नहीं कमा सकती है जबकि एकाधिकारी दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ कमाता है।
8. **उपभोक्ता का आधिक्य (Consumer's Surplus) -** एकाधिकारी मूल्य सामान्यतया पूर्ण प्रतियोगी मूल्य की तुलना में अधिक होता है। अतः इससे एकाधिकार में उपभोक्ता का आधिक्य अथवा बचत कम हो जाती है।

11.7 एकाधिकार के प्रभाव (Effects of Monopoly)

एकाधिकार के देश एवं समाज पर अच्छे एवं बुरे दोनों तरह के प्रभाव होते हैं।

11.7.1 एकाधिकार के अच्छे प्रभाव (Good Effects of Monopoly)

एकाधिकार के निम्न अच्छे प्रभाव होते हैं-

1. **बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययिताएँ (Economics of Large-scale production)-** सामान्यतया एकाधिकारी एक बड़ा उत्पादक होता है, अत: उसे बड़े पैमाने के उत्पादन की आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं। इनके परिणामस्वरूप वह नीचे मूल्य पर वस्तुएँ बेचता है।
2. **नीची विक्रय लागतें (Low selling costs) -** एकाधिकारी को अपनी वस्तु के विक्रय के लिए विज्ञापन एवं प्रचार की आवश्यकता नहीं होती है, अतः नीची विक्रय लागतों के कारण समाज को कम मूल्य के रूप में लाभ प्राप्त होता है।
3. **अनुसन्धान एवं विकास को प्रोत्साहन (Promotion for research and development) -** एकाधिकारी विशाल साधनों वाली फर्म होती है, अतः वह तकनीकी प्रगति के लिए अनुसंधान व विकास पर अधिक व्यय कर सकती है।
4. **साधनों के अपव्यय पर रोक (Check on wastage of resources) -** गलाकाट प्रतियोगिता में बहुत से साधनों का अपव्यय होता है जो एकाधिकार में देखने को नहीं मिलता है।
5. **सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएँ (Public utilities) -** बिजली, पानी, रेलें तथा ऐसी ही अन्य सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं की कुशलतापूर्वक पूर्ति के लिए सार्वजनिक एकाधिकार आवश्यक होता है।

11.7.2 एकाधिकार के बुरे प्रभाव (Bad Effects of Monopoly)

जहाँ एकाधिकार के कुछ अच्छे प्रभाव देखने को मिलते हैं, वहाँ अनेक बुरे प्रभाव भी देखने को मिलते हैं। एकाधिकार के प्रमुख दोष अथवा बुरे प्रभाव निम्न हैं-

1. **उपभोक्ताओं का शोषण (Exploitation of consumers) -** एक एकाधिकारी ऐसी वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करता है जिसके बाजार में निकट प्रतिस्थापन्न उपलब्ध नहीं होते हैं, अतः वह अपनी वस्तु का अधिक ऊँचा मूल्य वसूल करके उपभोक्ताओं का शोषण करता है। एकाधिकारी मूल्य-विभेद की नीति अपना कर क्रेताओं के साथ भेदभाव भी कर सकता है तथा अनेक बार वह वस्तु की कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देता है।
2. **श्रमिकों का शोषण (Exploitation of workers) -** एकाधिकारी केवल उपभोक्ताओं का ही शोषण नहीं करता है बल्कि वह श्रमिकों को भी कम मजदूरी देकर उनका शोषण करता है, क्योंकि प्रतियोगी उद्योग न होने पर श्रमिक उद्योग छोड़कर अन्य कहीं कार्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं 1
3. **तकनीकी प्रगति में रुकावट (Hindrance in technological progress)** - एकाधिकारी अपनी उत्पादन तकनीक को गुप्त रखता है तथा अनेक बार प्रतियोगी फर्मों के कुशल कर्मचारियों को स्वयं ऊँचे वेतन पर नियुक्त कर लेता है। इससे देश में क्षेत्र विशेष में तकनीकी प्रगति में रुकावट उत्पन्न होती है।
4. **कुशलता बढ़ाने की प्रेरणा नहीं (No incentive for greater efficiency) -** एकाधिकारी अपनी वस्तु को ऊँचे मूल्यों पर बेचने में सफल रहता है, अतः उसे अपनी वस्तु की उत्पादन लागत कम करने एवं कुशलता बढ़ाने की प्रेरणा नहीं रहती है और ऐसी स्थिति में अकुशलता बढ़ती है।
5. **धन का असमान वितरण (Inequalities of wealth) -** एकाधिकारी बहुत बड़ा उत्पादक होता है तथा उसको अपनी वस्तु के विक्रय से बहुत अधिक लाभ प्राप्त होता है। वह उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों का शोषण करता है, अतः समाज में धन का असमान वितरण होता है।
6. **नये उपक्रमों में बाधा (Hindrances in the establishment of new enterprises) -** एक एकाधिकारी अपने एकाधिकार को बनाये रखने के लिए नये उपक्रमों की स्थापना में हर सम्भव कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है तथा उन्हें हतोत्साहित करता है।
7 **राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी (Political corruption and bribery) -** एकाधिकारी अपने एकाधिकार को बनाये रखने तथा सरकार से अनावश्यक लाभ प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिकारियों एवं मन्त्रियों को रिश्वत देता है और बहुत अधिक आर्थिक शक्ति वाला एकाधिकारी सरकार में पैसे के बल पर अपनी राजनीति चलाता है।
8. **मूल्यों में असामयिक उच्चावचन (Untimely fluctuations in the prices) -** एकाधिकारी बगैर उचित कारणों के समय-समय पर अपनी वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन करता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में असामयिक उच्चावचन आते हैं।

11.6 अभ्याय प्रश्न (Practice Questions)

निम्न कथनों में सत्य / असत्य कथन बताइए-

1. एकाधिकार के अन्तर्गत फर्मों की अपरिमित संख्या होती है।
2. एकाधिकारी मूल्य, प्रतियोगी मूल्य से सदैव अधिक होती है।

बहुविकल्पी प्रश्न-

1. एकाधिकारी फर्म वह होती है-
   a. केवल कीमत नियोजक है
   b. केवल मात्रा नियोजक
   c. कीमत नियोजक व मात्रा नियोजक दोनो
   d. उपर्युक्त सभी असत्य
2. एकाधिकारी सन्तुलन के लिए सत्य होगा-
   a. AR < MR b. TR = TC
   c. AR > MR d. AR = MR
3. एक एकाधिकारी अपनी वस्तु का उत्पादन वहाँ हमेशा करेगा जहाँ उसकी औसत आय की लोच-
   a. इकाई से अधिक हो b. इकाई से कम हो
   c. शून्य हो d. तीनों में से कोई भी

11.7 सारांश (Summary)

बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार प्रतियोगिता को माना गया है। यह बाजार की दो ऐसी चरम स्थितियाँ है जो परस्पर एक दूसरे के विपरीत गुण वाली है। एक तरफ पूर्ण प्रतियोगिता है। जिसमें फर्मों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी फर्म बाजार में प्रचलित मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती। वहीं दूसरी ओर बाजार की एक स्थिति वह है कि जिसमें प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव रहता है और बाजार में अकेला विक्रेता होता है। इसे एकाधिकारी बाजार कहा जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता की ठीक विरोधी स्थिति है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वस्तुएं एक समांग (Homogeneous) होती है। अतः उनके मध्य भेद करना सम्भव नहीं होता है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तुओं का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता। एकाधिकारी बाजार में नई फर्मों का प्रवेश भी सम्भव नहीं हो पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकार के अन्तर्गत भी संतुलन हेतु आवश्यक है कि सीमांत आय सीमांत लागत के बराबर हो (Marginal Revenue = Marginal Cost)। एकाधिकार में वस्तु की कीमत, पूर्ण प्रतियोगी बाजार की कीमत से अधिक होती है। एकाधिकार अल्पकाल में हानि सहन कर सकता है परन्तु दीर्घकाल में वह असामान्य लाभ प्राप्त करता है, एकाधिकार अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से मूल्य विभेदीकरण की नीति को भी अपनाता हैं। एकाधिकार के देश एवं समाज पर अच्छे एवं बुरे दोनों तरह के प्रभाव को जाना। इसके अर्न्तगत वह एक ही वस्तु को विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं में अलग-अलग मूल्यों पर बेचता है।

11.8 शब्दावली (Glossary)

- **तिर्यक लोच (Cross Elasticity) -** एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के प्रतिक्रिया में होता है, उसे माँग की आड़ी लोच या तिर्यक लोच कहते है। उदाहरणार्थ इसके अन्तर्गत हम वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते है और फिर देखते है कि माँग में कितना परिवर्तन होता है।
- **उपभोक्ता बचत (Consumer Surplus) -** कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग से वंचित न रह पाने हेतु जितना अधिकतम मूल्य देने को तैयार होता है और वास्तव में वह जितना मूल्य अदा करता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता बचत या उपभोक्ता अतिरेक (Consumer Surplus) कहलाता है।
- **कीमत विभेद (Price discrimination) -** लगभग एक समांग वस्तु को विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं के मध्य अलग-अलग मूल्यों पर विक्रय करना ही कीमत विभेद कहलाता है।

- **द्विपक्षीय एकाधिकार (Bilateral Monopoly) -** यदि किसी बाजार में एक विक्रेता के साथ-साथ एक ही क्रेता पाया जाए तो उसे द्विपक्षीय एकाधिकार कहते हैं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

निम्न कथनों में सत्य / असत्य कथन बताइए-

1. असत्य 2. सत्य

बहुविकल्पी प्रश्न-

1. C 2. B 3. A

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibiliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

11.11 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. एकाधिकारी का अर्थ बताइये? अल्पकाल में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण को स्पष्ट कीजिए।
2. एकाधिकारी के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन को विस्तार से समझाइए।
3. लागत की दशाओं का एकाधिकार मूल्य पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए। क्या एकाधिकार मूल्य अनिवार्यतः एक ऊँचा मूल्य होता है?
4. एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के अन्तर को समझाइए।
5. विभेदात्मक एकाधिकार किसे कहते है? इसे कौन से तत्व सम्भव बनाते हैं? इसके अन्तर्गत कीमत-निर्धारण का रेखाचित्र बनाइए।

6. एकाधिकारी किन परिस्थितियों में मूल्य विभेदीकरण कर सकता है? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?
7. किसी देश एवं समाज पर एकाधिकार के अच्छे एवं बुरे दोनों तरह के प्रभावों को विस्तार से समझाइए।

इकाई 12 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

(Monopolistic Competition)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)
12.2 उद्देश्य (Objective)
12.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता अर्थ एवं विशेषताएं (Meaning and Characteristics of Monopolistic Competition)
12.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुतन (Firm's Equilibrium under Monopolistic Competition)
12.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन (Firm's Equilibrium under Short run)
12.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन (Firm's Equilibrium under Long run and Group Equilibrium)
12.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Chamberlin's Monopolistic Competition Theory)
12.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
12.7 सारांश (Summary)
12.8 शब्दावली (Glossary)
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
12.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यष्टि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह 12वीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है? उपभोक्ता सन्तुलन में कैसे होता है? बाजार संरचना, फर्म के संतुलन की शर्तें तथा पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में आप इस इकाई के अध्ययन के बाद बता पाएँगे।

इस खण्ड की पहली दो इकाईया पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार, बाज़ार की दो चरम बाजार स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और वास्तविक जगत में बाजार की स्थितियों से मेल नहीं खाती हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा उसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- ✓ एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- ✓ एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

12.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता अर्थ एवं विशेषताएं (Meaning and Characterstics of Monopolistic Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की किसी भी दशा का अभाव होना है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता के अर्न्तगत अनेक उपश्रेणियाँ होती है, प्रथम महत्वपूर्ण उपश्रेणी एकाधिकारिक प्रतियोगिता है जिस पर **प्रो. ई. एच. चैम्बरलिन** (Prof. E. H. Chamberlin) ने अधिक बल दिया है। एकाधिकार प्रतियोगिता वह हैं जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे विभेदीकृत वस्तुओ (Differentiated goods) का उत्पादन करती है जो एक दूसरे के निकट के स्थानापन्न होते है। इनके परिणामस्वरूप एक फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार (more elastic) होता है जो यह संकेत करता है कि इसमें फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी श्रेणी जिसे **श्रीमती जोन राबिन्सन** (Mrs John Robinson) ने अल्पाधिकार (Oligopoly) कहा है, इसकी प्रथम उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण बिना अल्पाधिकार है जिसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते है इसमें समरूप वस्तुओ (Homogeneous Goods) का उत्पादन करने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता होती है। फर्मों की कमी सुनिश्चित करती है कि उनमें से प्रत्येक फर्म का वस्तु की कीमत पर कुछ नियन्त्रण होगा तथा प्रत्येक फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है, जो यह इंगित करता है कि प्रत्येक फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। इसकी दुसरी उपश्रेणी वस्तु विभेदीकरण (Product Differentiation) सहित अल्पाधिकार है जो विभेदीकृत अल्पाधिकार कहलाता है। इसमें विभेदीकृत वस्तु होती हैं, जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न है यहाँ उत्पादन करने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता पायी जाती है। इसके अर्न्तगत व्यक्तिगत फर्म के बीच का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। अतः फर्म अपनी व्यक्तिगत वस्तु की कीमत पर नियन्त्रण रखती है।

प्रो. चैम्बरलिन (Prof. Chamberlin) की एकाधिकारिक प्रतियोगिता और **श्रीमती राबिन्सन** की अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर होते हुए भी दोनों में आवश्यक तत्व तथा सार समान हैं। कुछ एकाधिकारिक

प्रतियोगिता से तात्पर्य उस बाजार स्थिति से भी है, जिसमें बड़ी संख्या में विक्रेता या फर्में एक दूसरे की निकट स्थानापन्न, विभेदीकृत वस्तुओं का विक्रय करते हैं।

प्रत्येक फर्म इस अर्थ में एकाधिकारी होती है कि वह ब्रान्डेड तथा पेटेन्टयुक्त वस्तु उत्पादित करने तथा बेचने के लिए अधिकृत है। परन्तु प्रत्येक फर्म को दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है। जैसे- शैम्पू, साबुन या टूथपेस्ट बनाने वाली प्रत्येक फर्म का अपने उत्पाद के ब्रान्ड तथा पेटेन्ट पर एकाधिकार है परन्तु उत्पाद करने वाली अन्य फर्मों से उन्हें कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। चूँकि हर एक फर्म या विक्रेता विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करने के कारण एकाधिकारी होता है परन्तु बाजार में उनके निकट स्थानापन्न वस्तुएं होने के कारण उन्हें प्रतियोगिता करनी होती है अतः एकाधिकारिक प्रतियोगिता की इस बाजार स्थति में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों के मूलभूत तत्व होते हैं।

12.3.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं (Characterstics of Monopolistic Competition)

1. **वस्तु विभेदीकरण (Product Differentiation):** एकाधिकारिक प्रतियोगिता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वस्तु विभेदीकरण हैं, इस विशेषता के कारण ही इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता का मिश्रण पाया जाता है। वस्तु विभेदीकरण का तात्पर्य यह है की विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में कुछ भिन्नता पायी जाती हैं। यह भिन्नता उनके आकार, आकृति, रंग, ब्रान्ड, डिजाइन, सूक्ष्म गुणात्मक अन्तर, डिब्बे की सुन्दरता, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, गारन्टी तथा वारण्टी, दुकान की स्थिति इत्यादि के आधार पर हो सकती है। विभेदीकरण का आधार वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। वस्तु विभेदीकरण जितना ही अधिक होगा, एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा। परन्तु दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तु से प्रतियोगिता करनी होती है। वस्तु विभेदीकरण गैर कीमत प्रतियोगिता का एक अंग है।
2. **विक्रेताओं की अधिक संख्या (Large number of Firms):** एकाधिकारिक प्रतियोगिता में विक्रेताओं या फर्मों की संख्या अधिक होती है। अर्थात बाजार में उस वस्तु की कुल आपूर्ति का थोड़ा ही भाग एक फर्म या विक्रेता के पास होता है। इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारित कर पाना सम्भव होता है।
3. **नीचे की ओर गिरता हुआ माँग वक्र (Downward sloping Demand Curve):** विभेदीकृत वस्तु के कारण चूँकि फर्म की अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करने की शक्ति होती है।

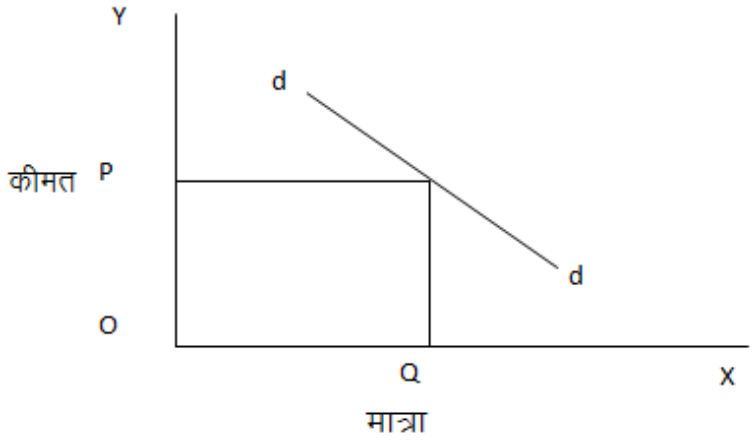

चित्र 12.1

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि वस्तु विभेद की स्थिति में जब फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं तो प्रत्येक फर्म यह महसूस करती है कि उसका माँग वक्र उसकी प्रतिद्वंदी फर्म के माँग वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है। अर्थात जब वह अपने उत्पाद की कीमत कम करेगी तो अन्य प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और वह अन्य फर्मों के कुछ ग्राहक आकर्षित कर लेगी। कीमत बढ़ाने की स्थिति में फर्म अपने कुछ ग्राहक खो देगी। चैम्बरलिन इसे फर्म का आत्मगत (Subjective) या अनुभूत माँग वक्र (dp dp) कहते हैं। यह व्यक्तिगत फर्म के आत्मगत निर्णय पर आधारित है, जिसमें वह यह कल्पना कर लेती है कि उसका माँग वक्र किस प्रकार का होगा। परन्तु जब समूह की सभी फर्मों द्वारा कीमत परिवर्तन एक ही मात्रा में तथा एक ही दिशा में होता है तो व्यक्तिगत फर्म का माँग वक्र कम लोचदार (less elastic) होगा। यह अनुपातिक माँग वक्र (Proportional demand curve) dd है, जो की चित्र 12.1 में दिखाया गया हैं, जो की चित्र 12.2 में dpdp वक्र से कम लोचदार है। यह प्रत्येक कीमत पर फर्म की वास्तविक बिक्री को दर्शाता है। इसमें एक फर्म द्वारा कीमत में परिवर्तन करने पर अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया है। फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन करने पर, अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों द्वारा भी उसी समय कीमत का बिन्दुपथ है। जैसा कि चित्र 12.2 में C_0, C_1 तथा C_2 बिन्दुओं से स्पष्ट है।

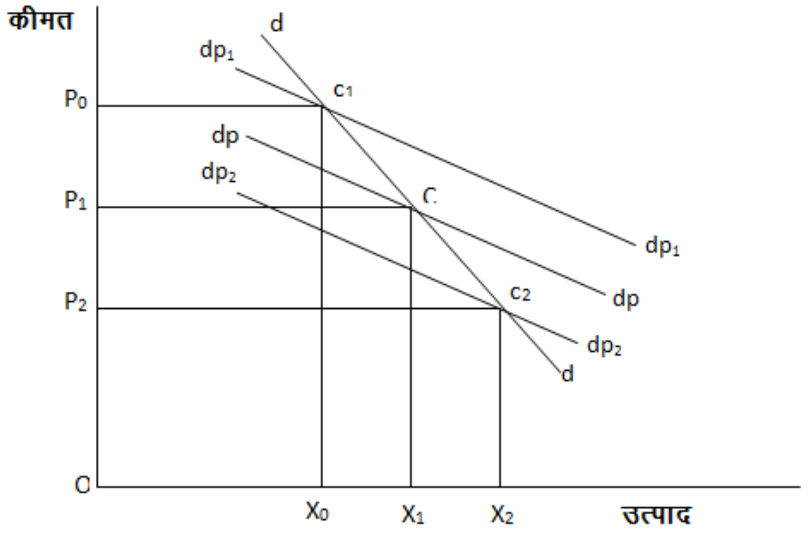

चित्र 12.2

एक फर्म जिस अनुपातिक माँग वक्र पर सामना करती है वह समूह की समान्य वस्तुओं की कुल बाजार माँग का एक अंश है। अधिक फर्मों के उत्पादन समूह में प्रवेश करने पर dd वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा।

4. **फर्मों के प्रवेश तथा निकास की स्वतंत्रता (Freedom of Entry and Exit of firms):** पूर्ण प्रतियोगिता की तरह यहाँ भी उद्योग में नई फर्म के प्रवेश तथा पुरानी फर्म के निकासी पर कोई रोक नहीं होती है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में प्रवेश की स्वतंत्रता केवल निकट स्थानापन्न वस्तु उत्पादित करने वाले फर्म को ही होती है।
5. **विक्रय लागतें (Selling Cost):** पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में अपने उत्पाद के अलावा अन्य बिक्री प्रोत्साहन योजनाओं पर भी भारी व्यय करती है।

चैम्बरलिन ने पहली बार फर्म के सिद्धान्त में विक्रय लागतों की संकल्पना प्रस्तुत की। विक्रय लागतों- विज्ञापनों तथा अन्य विक्रय गतिविधियों में करे गए व्यय द्वारा ही फर्म अपनी उत्पादित वस्तु को अन्य फर्मों की उत्पादित वस्तुओं से अलग दिखाने का प्रयास करती है। इससे फर्म का माँग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगा और इसकी लोच में भी कमी आएगी, क्योंकि विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन गतिविधियों से उस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं के अधिमान (preference) में मजबूती आ जाएगी।

चैम्बरलिन अपने मॉडल में परम्परागत U आकार के लागत वक्रों – AC, AVC और MC की तरह औसत बिक्री लागत वक्र (Average Selling Cost) को भी U आकार का मान लेते हैं।

औसत बिक्री लागत वक्र

चित्र 12.3

उत्पादन तथा कीमत के अधिकतम व्यय के स्तर को निर्धारित करने में ASC वक्र को AC वक्र में जोड़ दिया जाता है।

6. उद्योग तथा 'उत्पाद समूह' की संकल्पना (Concept of Industry or Product group): पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग का अर्थ है समाँग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों का समूह। यहाँ प्रत्येक फर्म के माँग वक्र को जोड़कर उद्योग की बाजार माँग को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में असमाँग वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, इसलिए यहां उद्योग की संकल्पना प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। चूँकि प्रत्येक फर्म विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है इसलिए बाजार माँग एवं आपूर्ति वक्र प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत वस्तुओं की माँग को नहीं जोड़ा जा सकता।

प्रो. चैम्बरलिन 'वस्तु समूह' की संकल्पना का प्रयोग करते हैं, जो ऐसी फर्मों का समूह है जो कि निकट स्थानापन्न (Close Substitute) वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। समूह द्वारा उत्पादित वस्तुएं परस्पर निकट की तकनीकी तथा आर्थिक स्थानापन्न होनी चाहिए। यदि दो वस्तुएं तकनीकी रूप से एक ही आवश्यकता की संतुष्टि करती हैं तो वे तकनीकी रूप से एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। जैसे सभी कारे तकनीकी रूप से स्थानापन्न हैं। यदि दो वस्तुएं एक ही आवश्यकता की संतुष्टि कर रही हों और दोनों की कीमतें भी लगभग समान हों तो वे आर्थिक स्थानापन्न होंगी। उदाहरण के तौर पर, आल्टो, स्पार्क तथा सैन्ट्रो को एक दूसरे की आर्थिक स्थानापन्न कहा जा सकता है परन्तु टाटा नैनो और फोर्ड फिएस्टा को नहीं।

12.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुलन (Firm's Equilibrium under Monopolistic Competition)

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का बाजार समूह की अन्य फर्मों से कुछ सीमा तक पृथक होता है। इसलिए उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग उसके द्वारा निश्चित कीमत, वस्तु की किस्म (commodity type) तथा उसके द्वारा किए गए विज्ञापन व्यय पर निर्भर करती है। परन्तु हम एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु को एक विशेष प्रकार का मानकर और विज्ञापन पर फर्म द्वारा किए गए व्यय को स्थिर मानकर केवल कीमत तथा उत्पादन मात्रा के विषय में ही फर्म के संतुलन की व्याख्या अल्पकाल तथा दीर्घकाल में करेंगे।

12.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन (Firm's Equilibrium under Short run)

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म का माँग वक्र, बाजार में उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के कई निकट में स्थानापन्न होने के कारण अधिक मूल्य सापेक्ष या लोचदार (more elastic) होता है। इस प्रकार फर्म का अपनी वस्तु के प्रकार पर एकाधिकारिक नियंत्रण बाजार में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं की मात्रा द्वारा सीमित होता है। यदि स्थानापन्न वस्तुओं के प्रकार और उनकी कीमतों को स्थिर मान लिया जाए तो एक फर्म के वस्तु का एक निश्चित माँग वक्र होगा।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत उपरोक्त विशेषताओं तथा मान्यताओं के दिए होने पर, प्रत्येक फर्म ऐसी कीमत तथा उत्पादन निश्चित करती है, अर्थात् वहां संतुलन में होती है, जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। फर्म का लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उसकी सीमांत लागत (MC) सीमान्त आय (MR) के बराबर होती है। चित्र 12.4 में एक व्यक्तिगत फर्म का अल्पकालीन संतुलन दर्शाया गया है। फर्म का व्यक्तिगत माँग वक्र dd है जो कि उसका औसत आय वक्र (Average Revenue curve) भी है। MR तथा MC के संतुलन के अनुरूप फर्म P_o कीमत तथा X_o उत्पादन निर्धारित करती है। इस संतुलन की स्थिति में फर्म P_oABC क्षेत्रफल के बराबर असामान्य लाभ अर्जित कर रही है। यदि औसत लागत वक्र (AC) वक्र माँग वक्र से ऊपर हो तो अल्पकाल में फर्म हानि भी उठा सकती है। यदि माँग वक्र औसत लागत वक्र (AC) को स्पर्श करता हो तो अल्पकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार फर्म के लाभ या हानि की स्थिति, वस्तु के माँग वक्र तथा लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है।

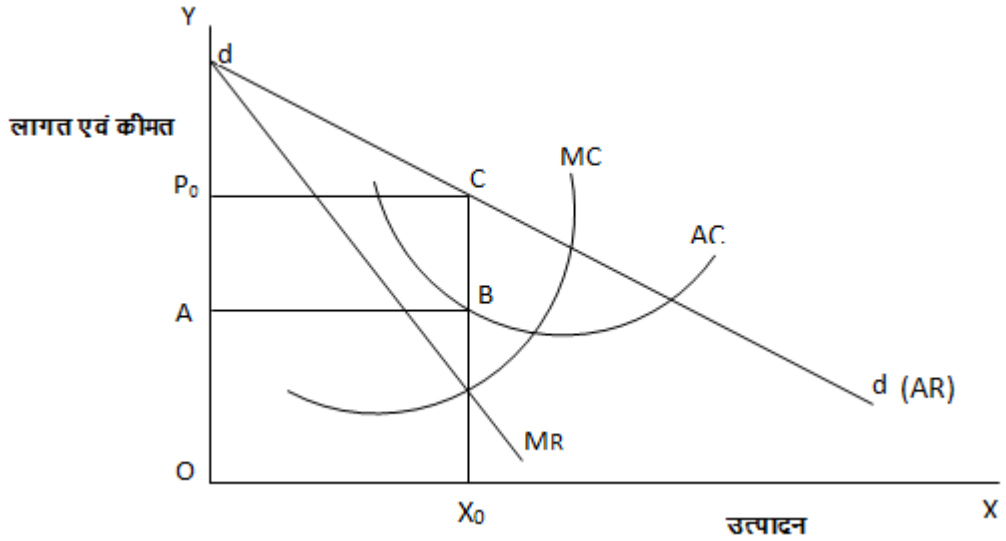

चित्र 12.4

12.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन (Firm's Equilibrium under Long run and Group Equilibrium)

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म तथा उद्योग के संतुलन की व्याख्या के लिए चेम्बरलिन यह 'साहसपूर्ण मान्यता' (Heroic Assumptions) मानकर चलते हैं कि समूह की सभी फर्मों तथा सभी वस्तुओं में लागत तथा माँग वक्र समान हैं। इसे 'समता की मान्यता' (Recognition of Equality) कहा जाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता 'समरूपता की मान्यता' (Recognition of Symmetry) भी है, जिसके अनुसार फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण किसी एक फर्म द्वारा कीमत तथा उत्पादन में परिवर्तन का प्रभाव समूह की अन्य प्रतियोगी फर्मों पर नगण्य (negligible) होगा।

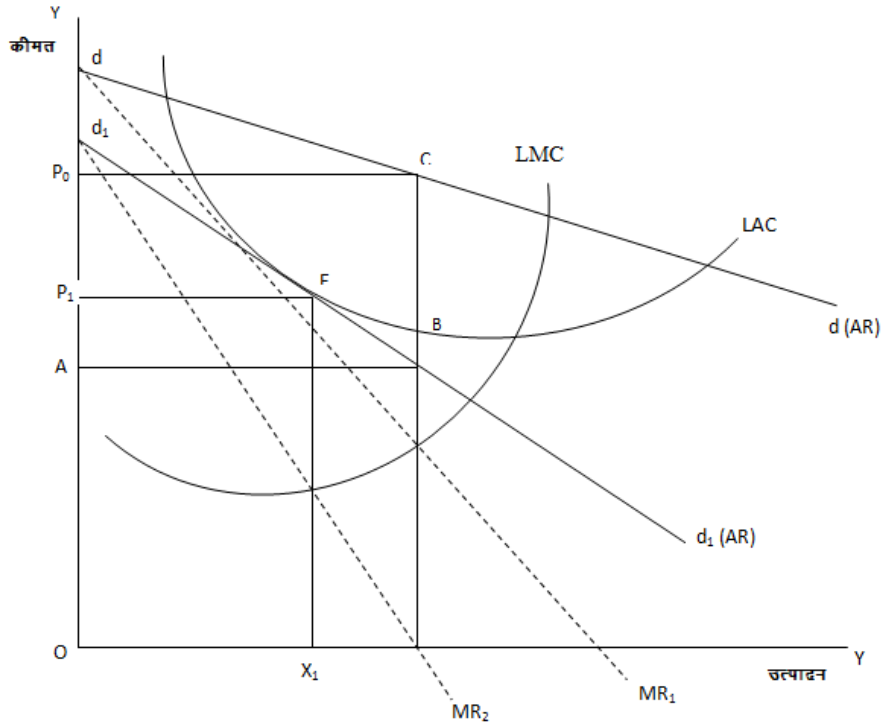

चित्र 12.5

चित्र 12.5 में बिन्दु C पर फर्में, संतुलन में हैं और असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं। परन्तु कीमत में परिवर्तन करने पर उन्हें कोई लाभ नहीं है। असामान्य लाभों के कारण उस समूह में नई फर्में आकृष्ट होंगी। फलस्वरूप माँग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा क्योंकि वस्तु की माँग पहले से अधिक फर्मों में विभाजित हो जाएगी। यह मानते हुए कि औसत लागत वक्र में परिवर्तन नहीं होगा, माँग वक्र (dd) में बायीं ओर प्रत्येक विवर्तन से कीमत में समायोजन होता है और फर्म नयी संतुलन स्थिति में पहुँच जाती है, जहाँ पर नया सीमान्त आय वक्र (विवर्तित MR वक्र पर) सीमान्त लागत के बराबर है। नयी फर्मों के प्रवेश की प्रक्रिया तथा फलस्वरूप माँग वक्र का बायीं ओर विवर्तन तब तक जारी रहता है जब तक वह औसत लागत वक्र को स्पर्श नहीं करने लगता है और असामान्य लाभ पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता है। अंतिम रूप में फर्म माँग वक्र d_od_o के बिन्दु E पर संतुलन में होगी जबकि संतुलित कीमत P_1 होगी तथा उत्पादन X_1।

इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का दीर्घकालीन संतुलन अथवा समूह संतुलन वहां होता हैं, जहाँ:-

MR=MC तथा **AR=LAC**

यह स्पष्ट है कि संतुलन की स्थिति में सभी फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी। इसलिए समूह में नई फर्मों का प्रवेश नहीं होगा। यह स्थिर संतुलन है क्योंकि कोई भी फर्म कीमत घटाने या बढ़ाने की दशा में हानि की स्थिति में होगी।

दीर्घकाल में फर्मों की संख्या में वृद्धि होने से फर्मों के दीर्घकालीन माँग वक्र अधिक लोचदार होंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'उपयुक्त उत्पादन क्षमता' (appropriate production capacity) बनी रहेगी क्योंकि संतुलन की स्थिति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long Run Average Cost Curve) के न्यूनतम बिन्दु (Lowest point) पर नहीं होती है।

12.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Chamberlin's Monopolistic Competition Theory)

कीमत सिद्धान्त में चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का योगदान महत्वपूर्ण होते हुए भी इस सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों ने काफी आलोचना की हैं।

1. **प्रो. स्टिगलर** (Prof. Stigler) तथा **राबर्ट ट्रिफिन** (Robert Tiffin) ने 'समूह' की धारणा की आलोचना की तथा इसे एक भ्रामक धारणा बताया। जब वस्तु विभेदीकरण होता है तो प्रत्येक फर्म स्वयं एक उद्योग होती है। असमाँग वस्तुओं की माँग व आपूर्ति के आधार पर उद्योग का माँग व पूर्ति वक्र प्राप्त करना संभव नहीं है।
2. एक वस्तु के सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तु की किस्मों (produced varieties) के सम्बन्ध में लागत तथा माँग वक्रों को समान मान लेना उचित नहीं है। विभेदीकृत वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक वस्तु के लिए माँग वक्र तथा उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार एकरूपता की मान्यता अवास्तविक है।
3. **स्टिगलर** (Stigler) और **कैल्डर** (Kaldor) ने समता की मान्यता की भी आलोचना की हैं। विभेदीकृत वस्तुए, जो कि एक दूसरे की निकट स्थापन्न है, इस स्थिति में फर्में अपनी प्रतियोगी फर्मों के निर्णयों को लेकर अत्यधिक सतर्क रहती हैं। यह मानना गलत है कि किसी एक फर्म द्वारा उत्पादन तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव समान रूप से सभी फर्मों के ऊपर पड़ जाएगा।
4. **चैम्बरलिन** (Chamberlin) के अनुसार असामान्य रूप से आकृष्ट (attracted) हो कर जब नई फर्में समूह में प्रवेश करेंगी और फलस्वरूप समूह में फर्मों की संख्या बढ़ेगी तो फर्मों के माँग वक्र की लोच नहीं बढ़ेगी। **राबिन्सन** (Robinson) तथा **काल्डर** (Kaldor) का मत यह है कि चैम्बरलिन की यह धारणा गलत है, क्योंकि समूह में नई फर्मों के प्रवेश करने तथा उनकी संख्या बढ़ने पर बाजार की अपूर्णता का अंश कम होता जाएगा और साथ ही उनका माँग वक्र अधिक लोचदार होता जाएगा।
5. अनेक विद्वानों का यह मत है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की तरह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के प्रतिरूप (model) के आधार पर भी उपयोगी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अल्पाधिकार के प्रतिरूप कहीं अधिक उपयोगी हैं और फिर वास्तविक जगत में ऐसा उदाहरण पाना कठिन है जहां चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता का मॉडल प्रासंगिक हो ।

   इन आलोचनाओं के बावजूद चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त का कीमत सिद्धान्त में काफी महत्वपूर्ण योगदान है। वस्तु विभेद, विक्रय कीमतें इत्यादि संकल्पनाओं को अपने सिद्धान्त में सम्मिलित कर चैम्बरलिन कीमत सिद्धान्त को वास्तविकता के अधिक निकट ले आए हैं।

12.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. विक्रय लागतों (Selling Cost) की धारणा का विकास किसने किया?

   (क) मार्शल (ख) चैम्बरलिन

(ग) जोन राबिन्सन (घ) कीन्स

2. निम्न में से विक्रय लागत क्या है?

(क) पैकिंग (ख) परिवहन व्यय

(ग) विज्ञापन पर व्यय (घ) मजदूरी पर व्यय

3. निम्नलिखित में से एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अतिरिक्त क्षमता' का कारण क्या है?

(क) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत से ऊँचे स्तर पर उत्पादन करना।

(ख) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत में से नीचे के स्तर पर उत्पादन करना।

(ग) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत के बराबर स्तर पर उत्पादन करना ।

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

12.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों का समिश्रण होता है जिसमें बड़ी संख्या में फर्मों या विक्रेता विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं का उत्पादन या विक्रय करते हैं। इस बाजार स्थिति में फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु के माँग वक्र की ढाल बाये से दायें ओर नीचे की ओर होती है। वस्तु विभेद के कारण फर्मों विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन उपायों के माध्यम से अपनी बिक्री को बढ़ाने का प्रयास करती है।

अल्पकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगी बाजार में फर्म, सामान्य लाभ, असामान्य लाभ या हानि की स्थिति में हो सकती हैं जो कि फर्म की वस्तु के माँग वक्र तथा औसत लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करता है। फर्म का दीर्घकालीन संतुलन तथा समूह संतुलन वहां होता है जहाँ सीमान्त आय सीमान्त लागत तथा औसत आय दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर हो दीर्घकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह अनुकूलतम आकार की नहीं होती हैं तथा फर्म की उत्पादन क्षमता अप्रयुक्त रहती है अर्थात् अधिक्य क्षमता पायी जाती है।

12.7 शब्दावली (Glossary)

- **वस्तु विभेद (Product Differentiation):** वस्तु विभेद का अर्थ है एक उद्योग या वस्तु समूह की विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में अन्तर पाया जाना। यह अन्तर उनके आकार, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, डिजाइन, विक्रय-कला इत्यादि के आधार पर हो सकता है। वस्तु विभेद का मुख्य उद्देश्य एक फर्म का समूह की अन्य फर्मों के उत्पादों से अपने उत्पाद को भिन्न दिखाकर अपने उत्पाद के प्रति ग्राहक की प्राथमिकता को मजबूत करना ळें ।
- **विक्रय लागतें (Selling Cost):** वे लागतें जो कि फर्म अपने उत्पाद की माँग रेखा की ढाल में या स्थिति में परिवर्तन करने के लिए करती है। विक्रय लागतों में विज्ञापन की लागत, बिक्री संवर्द्धन योजनाओं पर व्यय, बिक्री में लगे कर्मचारियों के वेतन तथा कमीशन, बिक्री के बाद की सेवा की लागत और प्रदर्शन के लिए फुटकर विक्रेताओं (retailers) को दिए गए भत्ते शामिल है।
- **उद्योग (Industry):** समाँग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के समूह को 'उद्योग' कहा जाता है।
- **उत्पाद समूह (Product Group):** ऐसी फर्मों का समूह जो निकट स्थानापन्न (Close Substitute) वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

- **गैर-कीमत प्रतियोगिता (Non-Price Competition):** एक एकाधिकारी प्रतियोगिता की फर्म के वह प्रयास जैसे- वस्तु विभेद तथा विक्रय व्यय, जिनमें वह अपनी वस्तु की बिक्री और वस्तु की कीमत में कटौती किए बिना बढ़ाती है।
- **आधिक्य क्षमता (Excess Capacity):** एकाधिकारिक प्रतियोगिता में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long Run Average Cost Curve) में गिरते हुए भाग पर उत्पादन करती है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर सब न्यूनतम हो। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन तथा सामाजिक दृष्टि से अनुकूलतम उत्पादन (Optimum production) का अन्तर उसकी 'आधिक्य क्षमता' की माप हैं।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ख 2. ग 3. क

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

12.10 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके अंतर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन की व्याख्या कीजिए।
2. एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत समूह संतुलन की आलोचनात्मक व्याख्या की गयी है।

इकाई - 13 वितरण का सिद्धान्त एवं सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(Theory of Distribution and Marginal Productivity Theory)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution)
13.4 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution)
13.5 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Distribution)
13.5.1 माँग -पक्ष (Demand side)
13.5.2 पूर्ति-पक्ष (Supply side)
13.5.3 संतुलन (Equilibrium)
13.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
13.7 सारांश (Summary)
13.8 शब्दावली (Glossary)
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
13.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
13.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद अब आप यह बता सकते हैं कि तीन प्रकार की बाजार स्थितियों (पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता) में क्या अन्तर है तथा इनके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है? इनकी मान्यताएं क्या है? साथ ही इस इकाई में प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गई हैं।

इस इकाई में साधनों का कीमत निर्धारण जो वास्तव में कीमत सिद्धान्त की विशिष्ट दशा है, का अध्ययन किया गया है। जिस प्रकार किसी वस्तु की कीमत उसकी माँग एवं पूर्ति से निर्धारित होती है, ठीक उसी प्रकार किसी साधन की कीमत भी उसकी माँग एवं पूर्ति की अर्न्तक्रिया से निश्चित होगी। अत: साधनों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया ठीक वैसी ही होती है जैसी वस्तुओं की कीमत निर्धारण प्रक्रिया होती है। फिर भी, वस्तु कीमत निर्धारण एवं साधन कीमत निर्धारण में कुछ अन्तर पाए जाते हैं। साधनों की माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ उन शक्तियों से थोड़ी भिन्न होती है जो उपभोग वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि हमें साधनों के कीमत निर्धारण हेतु एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। इसे वितरण का सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory) कहते हैं। हम इसके अन्तर्गत वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा वितरण के आधुनिक (माँग एवं पूर्ति) सिद्धान्त की व्याख्या भी करेंगे।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे की:

- ✓ उत्पादन साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस) का मूल्य निर्धारण कैसे होता हैं?
- ✓ सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता हैं?
- ✓ भूमि को लगान, श्रम को मजदूरी, पूँजी को ब्याज तथा साहस को लाभ किस तरह प्राप्त होते हैं?
- ✓ उत्पादन साधनों की माँग एवं पूर्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण कैसे होता हैं?

13.3 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution)

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह बताता है कि दी हुई मान्यताओं के अन्तर्गत दीर्घकाल में किसी साधन के पुरस्कार में उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 13वीं शताब्दी के अन्त में, **जे. बी. क्लार्क** (J.B. Clark), **वालरस** (Walras), **विकस्टीड** (Wickshed) आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया था किन्तु इसे विस्तृत नाम देने का श्रेय आधुनिक अर्थशास्त्रियों में **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. John Robinson) तथा **जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks)** को जाता है।

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एक ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जो मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ जैसे साधनों की कीमतों की व्याख्या करता है। वास्तव में, यह एक सामान्य सिद्धान्त है और इसके माध्यम से सभी साधनों के पारिश्रमिकों की व्याख्या की जा सकती है।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की परिभाषा निम्न शब्दों में **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. John Robinson) द्वारा दी गयी है। ***"अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते है।" "(Marginal Productivity is the increment in the value of total output caused by employing an additional man, the total value of other factor remain unchanged.)"***

इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधनों की कीमत-निर्धारण का आधार सीमान्त उत्पादकता है। एक व्यावसायिक फर्म किसी उत्पादन-साधन को उसकी उत्पादकता (अथवा उत्पादन-शक्ति) के कारण नियोजित

करती है। दूसरे शब्दों में, वह उत्पादन-साधन उत्पादन क्रिया में अपना समुचित अंशदान करता है इसलिए व्यावसायिक फर्म उसे काम पर लगाती है। वह फर्म उस साधन को कितना पारिश्रमिक चुकाएगी, यह उस साधन की उत्पादकता पर निर्भर करता है (अर्थात साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर आश्रित रहती है)। साधन की उत्पादकता जितनी अधिक होगी, उतनी ही अधिक उसकी कीमत होगी। अत: सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त किसी भी साधन के पारिश्रमिक को उसकी उत्पादकता अथवा कुल उत्पादन में किए गए उसके अंशदान से जोड़ देता है। व्यावसायिक फर्म किसी भी साधन की विभिन्न इकाइयों को उस बिन्दु तक लगाती चली जाएगी जिस पर उस साधन की सीमान्त इकाई को चुकाया जाने वाला पारिश्रमिक उस इकाई द्वारा कुल उत्पाद में किए गए अंशदान के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में, वह फर्म उस बिन्दु तक उस साधन की अधिकाधिक इकाइयाँ लगाती चली जाएगी जहाँ पर उस साधन की सीमान्त लागत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाए। साधन की सीमान्त इकाई का पारिश्रमिक उसकी (साधन की) सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त का सारांश यह है कि उत्पादन के किसी भी साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है।

1 सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of Theory)

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:-

1. वस्तु तथा साधन दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएं विद्यमान हैं।
2. साधन की सभी इकाइयाँ समरूप हैं।
3. प्रत्येक उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है।
4. उत्पादन का केवल एक साधन ही परिवर्तनशील है जबकि शेष सभी साधन अपरिवर्तनशील रहते हैं।
5. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त केवल दीर्घकाल में ही लागू होता है।
6. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि एक सीमा के पश्चात् साधन की सीमान्त उत्पादकता क्रमशः घटती जाती है।
7. इस सिद्धान्त में पूर्ण रोजगार एक आधारभूत स्थिति है।

2 सीमान्त उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप (Meaning and Measurement of Marginal Productivity)

किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता से आशय, उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बढ़ने या उत्पादन-क्रिया में आने के कारण कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि से है। सीमान्त उत्पादकता को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है-

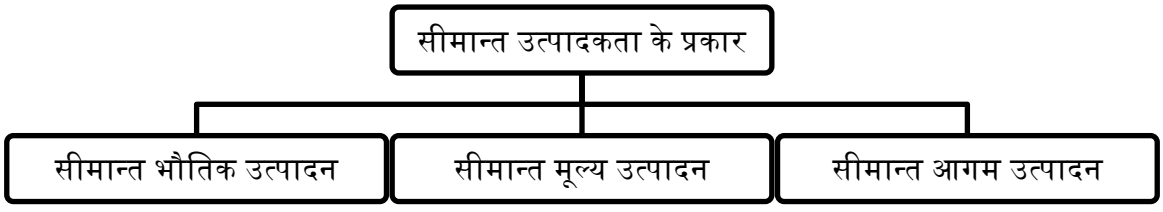

1. सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product - MPP)

किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग के कारण, अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ कुल उत्पादन में वृद्धि ही उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है। इस प्रकार,

सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) =
(साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन) – (साधन की उस अतिरिक्त इकाई के पहले का कुल उत्पादन)

$$MPPn = TP_n - TP_{n-1}$$

जिसमें

TP = कुल उत्पादन,

TP_n = साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन।

TP_{n-1} = साधन की उस अतिरिक्त इकाई के पहले का कुल उत्पादन।

2. सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product - MVP)

जब सीमान्त भौतिक उत्पादन को मूल्य या औसत आगम से गुणा कर दिया जाए, तो जो गुणनफल प्राप्त होगा उसे सीमान्त मूल्य उत्पादन कहेंगे। इस प्रकार,

$$\text{सीमान्त मूल्य उत्पादन} = \text{सीमान्त भौतिक उत्पादन} \times \text{मूल्य}$$

$$MVP = MPP \times \text{Price(AR)}$$

3. सीमान्त आगम उत्पादन (Marginal Revenue Product - MRP)

उत्पादन के किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के फलस्वरूप 'कुल मूल्य उत्पादन' अथवा कुल आगम में होने वाली वृद्धि ही सीमान्त आगम उत्पादन है।

उदाहरण के लिए कोई फर्म 10 श्रमिकों को कलम के उत्पादन में लगाती है तथा उनसे 100 इकाई का उत्पादन प्राप्त करती है। यदि कलम का मूल्य प्रति कलम 5 रूपया हो तो फर्म की कुल आगम या कुल मूल्य उत्पादन 100 × 5 = 500 रूपया होगा परन्तु यदि फर्म एक और श्रमिक को उत्पादन क्रिया में लगाए और यदि उसके बाद कुल उत्पादन 108 कलम का हो जाए तथा हम यह मान लें कि अब भी वह फर्म कलम की प्रति इकाई की कीमत 5 ही रूपया लेती है तो 108 कलमों के बेचने से 108 × 5 = 540 रूपया कुल आगम प्राप्त होगी। सीमान्त मूल्य उत्पादन 540 - 500 = 40 रूपया होगा चूँकि अन्तिम इकाई से जो आगम प्राप्त होगी वह सीमान्त आगम होगी, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि सीमान्त आगम उत्पादन उस उत्पादन के साधन के सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा सीमान्त आगम का गुणनफल है। अर्थात्

$$MRP = MPP \times MR$$

ऊपर दिए गए उदाहरण में सीमान्त भौतिक उत्पादन 8 कलम का है तथा सीमान्त आगम 5 रूपया है इसलिए सीमान्त आगम उत्पादन 8 × 5 = 40 रूपया होगा।

3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity under Perfect Competition)

इसके पूर्व हमने सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन की जो व्याख्या की उससे यह स्पष्ट है कि दोनों के ऊपर बाजार में प्रचलित मूल्य का प्रभाव पड़ता है। हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एक ही रहता है, उत्पादन में परिवर्तन का कीमत के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और औसत आगम तथा सीमान्त आगम बराबर होती है, फलस्वरूप सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन एक ही

होंगे। जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में हम जानते हैं कि औसत तथा सीमान्त आगम वस्तु की बेची गई मात्रा के साथ क्रमश: गिरते हुए होते हैं तथा सीमान्त मूल्य, औसत मूल्य से आवश्यक रूप से कम रहता है। ऐसी स्थिति में सीमान्त आगम के आधार पर सीमान्त आगम उत्पादन तथा औसत आगम या मूल्य के आधार पर गणना किए गए सीमान्त मूल्य उत्पादन में अन्तर होगा चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य या औसत आगम एक ही रहते है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में यह गिरता हुआ होता है इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों धारणाओं में अन्तर होगा। यह स्पष्ट है चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम और सीमांत आगम (AR = MR) बराबर होता हैं इसलिए यहाँ सीमांत मूल्य उत्पाद, सीमांत आगम उत्पाद (MVP = MRP) के समान होता हैं परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम, सीमांत आगम (AR > MR) से अधिक होता हैं इसलिए यहाँ सीमांत मूल्य उत्पाद, सीमांत आगम उत्पाद (MVP > MRP) से अधिक देखने को मिलता हैं अब हम सारिणी तथ चित्र के माध्यम से इन दोनों धारणाओं के बीच के अन्तर को प्रदर्शित करेंगे।

सारिणी - 13.1

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन

(Marginal Value Production and Marginal Revenue Production under perfect Competition)

श्रमिकों की इकाइयाँ (Units of Labour)	कुल उत्पादन (Total Production)	सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Production)	कीमत (Price)	सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Production)	कुल आय (Total Income) $\frac{1}{4}2 \times 4\frac{1}{2}$	सीमान्त आगम उत्पादन (Marginal Revenue Production)	उत्पादन का नियम (Law of Production)
1	2	3	4	5	6	7	8
1	10	10	4	40	40	40	वृद्धिमान नियम
2	30	20	4	80	120	80	
3	60	30	4	120	240	120	
4	100	40	4	160	400	160	समता नियम
5	140	40	4	160	560	160	
6	175	35	4	140	700	140	ह्रासमान नियम
7	200	25	4	100	800	100	
8	215	15	4	60	860	60	
9	225	10	4	40	900	40	
10	230	5	4	20	920	20	

सारिणी 13.1 के स्पष्टीकरण के पूर्व दो महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है- प्रथम, उत्पादन क्रिया में उत्पादन के तीनों नियम क्रियाशील हैं जैसा सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) से स्पष्ट है। चौथी इकाई तक उत्पादन में वृद्धि होगी, चौथी से पाँचवी के बीच उत्पादन-समता तथा पाँचवी के बाद उत्पादन- ह्रास नियम को प्रदर्शित करता है। द्वितया, चूँकि वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर मूल्य 4 रूपया ही प्रदर्शित है। अब हम सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन की गणना पर विचार करेंगे। इसके पूर्व हम देख चुके हैं कि $MVP = MPP \times \text{AR}$ इसलिए सीमान्त भौतिक उत्पादन (MVP) के प्रत्येक स्तर पर मूल्य अर्थात् 4 रूपये से गुणा करके पाँचवे स्तंभ (column) में सीमान्त मूल्य उत्पादन प्रदर्शित किया गया है, जैसे साधन की दूसरी इकाई से प्राप्त होने वाले सीमान्त मूल्य उत्पादन की गणना इस प्रकार की

गयी है: सीमान्त भौतिक उत्पादन 20, मूल्य 4 रूपये इसलिए सीमान्त मूल्य उत्पादन 20 × 4 = 80 रूपये चूँकि वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए औसत आगम तथा सीमान्त आगम में कोई अन्तर नहीं होता इसलिए इस स्थिति में सीमान्त आगम उत्पादन की गणना सीमान्त भौतिक उत्पादन में मूल्य से ही गुणा द्वारा की जा सकती है अर्थात् MRP = MPP × MR (MR= AR)। यही कारण है कि पाँचवें स्तंभ (column) में प्रदर्शित मूल्य उत्पादन तथा सातवें स्तंभ (column) में प्रदर्शित सीमान्त आगम उत्पादन में कोई अन्तर नहीं है।

4 अपूर्ण (एकाधिकार) प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादन (Marginal Productivity under Imperfect (Monopoly) Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थिति में सीमान्त मूल्य उत्पादन के बीच अन्तर होगा क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य (औसत आय) तथा सीमान्त आगम में अन्तर पाया जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त आगम उत्पादन तथा सीमान्त मूल्य उत्पादन की गणना सारिणी 13.2 में प्रदर्शित है

सारिणी 13.2

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन

श्रमिकों की इकाइयाँ (Units of Labour)	कुल उत्पादन (Total Production)	सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Production)	कीमत (Price)	सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Production)	कुल आय (Total Income)	सीमान्त आगम उत्पादन (Marginal Revenue Production)
1	2	3	4	5	6	7
1	10	10	4.00	40.00	40.00	40.00
2	30	20	3.60	72.00	108.00	68.00
3	60	30	3.00	90.00	180.00	72.00
4	100	40	2.60	104.00	260.00	80.00
5	140	40	2.40	96.00	336.00	76.00
6	175	35	2.30	80.50	402.50	66.50
7	200	25	2.24	56.00	448.00	45.50
8	215	15	2.20	33.00	473.00	25.00
9	225	10	2.16	21.60	486.00	13.00
10	230	5	2.14	10.70	492.20	6.20

अपूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह, औसत आगम वक्र आधार के समानान्तर नहीं होता दूसरे शब्दों में अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य स्थिर नहीं होता है बल्कि नीचे गिरता हुआ होता है जैसा सारणी 13.2 के चौथे स्तंभ (column) में प्रदर्शित है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाएगा प्रति इकाई मूल्य कम होता जाएगा। हम औसत आगम तथा सीमान्त आगम के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए यह देख चुके हैं कि अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम, औसत आगम से कम होती है इसलिए सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन के बीच अन्तर होगा, वास्तव स्थिति तो यह है कि सीमान्त आगम उत्पादन सीमान्त मूल्य उत्पादन से कम होगा, क्योंकि-

$$\mathbf{MVP = MPP \times AR}$$

$$\textbf{तथा} \quad \mathbf{MRP = MPP \times MR}$$

पर AR का मूल्य MR से अधिक होगा (AR>MR) इसलिए MVP>MRP

सारिणी 13.2 के पांचवे स्तंभ (column) में सीमान्त मूल्य की गणना सीमान्त भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर से सम्बन्धित मूल्य से गुणा करके की गई है जैसे श्रम की तीसरी इकाई पर यदि सीमान्त मूल्य की गणना करनी हो तो इस इकाई के सीमान्त भौतिक उत्पादन 30 में मूल्य 3.00 का गुणा करना होगा अर्थात 30 × 3.00 = 90 जैसा पांचवे स्तंभ (column) में प्रदर्शित है परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की तरह यहाँ मूल्य के द्वारा गुणा करके ही सामान्त आगम उत्पादन की गणना नहीं की जा सकती है। इसको ज्ञात करने के लिए पहले कुल आगम (मूल्य × कुल उत्पादन) को ज्ञात करना आवश्यक हैं जिसे छटे स्तंभ (column में प्रदर्शित किया गया है और तब श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि के कारण कुल आगम में होने वाली वृद्धि के आधार पर सीमान्त आगम उत्पादन (MRP) की गणना की गई है।

5 सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्रों के स्वरूप (Forms of Curves showing Marginal Value Product and Marginal Revenue Product)

सारिणी 13.1 तथा 13.2 के सम्बन्धित स्तंभ (column से यह स्पष्ट होता है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों वक्रों के स्वरूप में भिन्नता होगी।

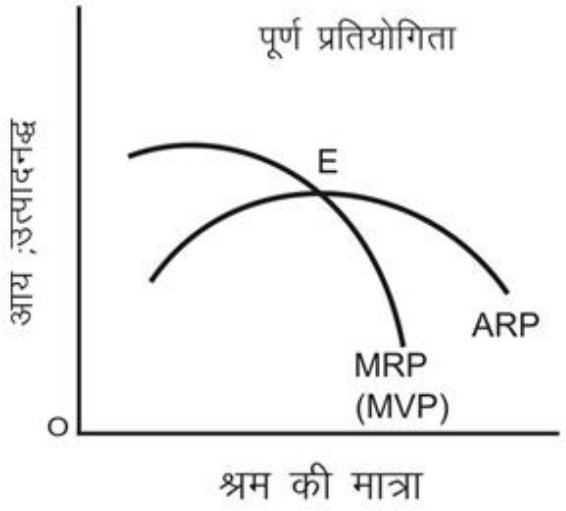

चित्र 13.1

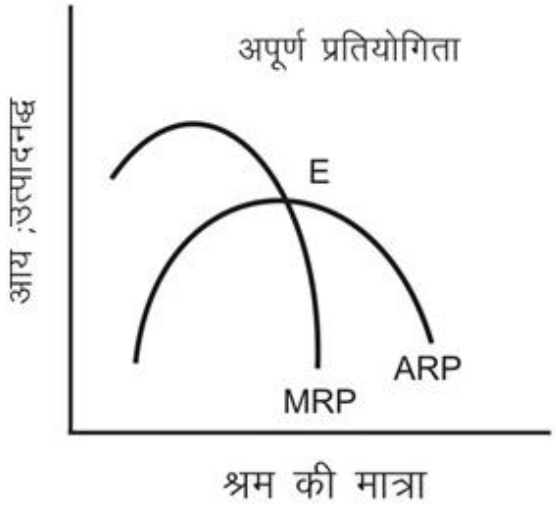

चित्र 13.2

चूँकि प्रत्येक इकाई में इन वक्रों का आधार सीमान्त भौतिक उत्पादन है इसलिए इतना तो निश्चित है कि इनका स्वरूप सीमान्त भौतिक उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्र के समान होगा और चूँकि सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र (MPP curve) का स्वरूप उत्पादन के तीनों नियमों के क्रियाशीलन के कारण अंग्रेजी के अक्षर U के उल्टे आकार का होगा जेसा की आप चित्र 13.1 और 13.2 में देख सकते हैं। इसलिए इस पर आधारित ये वक्र भी इसी के आकार के होंगे। जहाँ तक पूर्ण प्रतियोगिता का प्रश्न हैं इसमें सीमान्त मूल्य उत्पादन (MVP) तथा सीमान्त आगम उत्पादन (MRP) वक्र एक ही होंगे जैसा की आप चित्र 13.1 में देख सकते हैं, दोनों वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर होंगे क्योंकि इन्हें ज्ञात करने के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर एक स्थिर मूल्य का ही गुणा करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त मूल्य तथा सीमान्त आगम उत्पादन वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से अधिक चपटे होंगे यह अंतर दोनों चित्रों में साफ़ देखने को मिलता हैं।

चित्र 13.2 में अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत यह वक्र दिखाए गए हैं। जहाँ तक अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित इन दोनों वक्रों का प्रश्न है इनका स्वरूप तो सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र की ही तरह होगा पर जहाँ

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होगी वहाँ यह दोनों वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर स्थित होंगे, अपूर्ण प्रतियोगिता में यह दोनों ही सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र के अधिक नजदीक पहुँचते जाएगे और जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाएगा अपूर्ण प्रतियोगिता में भी सीमान्त आगम उत्पादन वक्र अधिक करीब होता जाएगा।

6 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित वक्रों में अन्तर (Difference between Curves under Perfect Competition and Monopoly)

(1) पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त मूल्य उत्पादन वक् तथा सीमान्त आगम उत्पादन वक्र में भेद नहीं होता परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में होता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR, MR के बराबर होता हैं परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार में AR की मात्रा MR से अधिक होती है (AR > MR)।

(2) पूर्ण प्रतियोगिता में यह वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर होगें जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में यह दोनों ही (MRP तथा ARP) करीब आते जाएँगे।

(3) पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त आगम उत्पादन वक्र, सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र के समान होता हैं परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र, पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित वक्रों की अपेक्षा अधिक चपटा (Flat) होगा।

(4) अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त आगम उत्पादन वक्र सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र की अपेक्षा अधिक ढालू (Steeper)होगा।

सामान्यता सीमान्त आगम (MRP) को ही सीमान्त उत्पादन या सीमान्त उत्पादकता के रूप में स्वीकार किया जाता है। हम अपने अगले विश्लेषण में इसी का प्रयोग करेंगे। पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में सीमान्त आगम उत्पादन तथा उससे सम्बन्धित औसत आगम उत्पादन वक्र का प्रदर्शन चित्र 13.1 तथा 13.2 में किया गया है।

चित्र 13.1 में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तथा चित्र 13.2 में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमान्त आगम उत्पादन वक्र प्रदर्शित है। यह स्पष्ट है कि चित्र 13.2 में प्रदर्शित MRP, चित्र 13.1 में प्रदर्शित MRP की उपेक्षा अधिक ढालू है। इनसे सम्बन्धित औसत आगम उत्पादन वक्र (ARP) भी प्रदर्शित है। सीमान्त तथा औसत मूल्यों के बीच सम्बन्धों की जो व्याख्या इसके पूर्व की जा चुकी है उससे यह स्पष्ट है कि MRP वक्र ARP वक्र के शीर्ष बिन्दु से होकर जाएगा।

7 निष्कर्ष (Conclusion)

यदि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो ऐसी स्थिति में नियोक्ता द्वारा जो मजदूरी या मूल्य चुकाना होगा वह पूर्व निश्चित रहेगा, जिसका निर्धारण बाजार में क्रियाशील होने वाली शक्तियों के द्वारा उद्योग ने निर्धारित किया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे वस्तु के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में हम लोगों ने देखा कि फर्म के लिए मूल्य पूर्वनिश्चित है। नियोक्ता अपने व्यवहार द्वारा बाजार की माँग को प्रभावित नहीं कर सकता है, वह दिए हुए मूल्य या पारिश्रमिक की दर पर जितने भी श्रमिक चाहे उतने खरीद सकता है। ऐसी स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वह अधिक से अधिक यह कर सकता है कि वह उत्पादन के साधनों का प्रयोग उस सीमा तक बढ़ाए जहाँ तक प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित दर के बराबर हो जाए यहीं संस्थिति होगी। इस प्रकार संस्थिति की स्थिति में-

(1) प्रत्येक रोजगार में एक साधन की सीमान्त उत्पादकता समान हो।

(2) एक रोजगार में प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता उसी रोजगार में लगे अन्य साधनों की सीमान्त उपादकता के बराबर हो।

इसी प्रकार की संस्थिति का चित्रण चित्र 13.3 से स्पष्ट किया गया है।

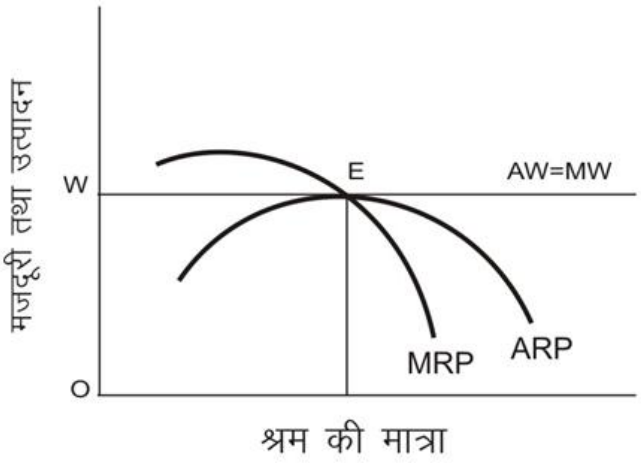

चित्र 13.3

इस चित्र में Y अक्ष पर मजदूरी तथा उत्पादकता प्रदर्शित किया गया है तथा दोनों वक्रों के माध्यम से औसत आय-उत्पादन (ARP) तथा सीमान्त आगम उत्पादन (MRP) प्रदर्शित किया गया है। बाँयें से E बिन्दु तक औसत आय-उत्पादन बढ़ता है जो उत्पादन वृद्धि नियम का पारिचायक है तथा E बिन्दु से दाहिनी ओर यह नीचे की ओर गिरता है जो उत्पादन ह्रास नियम का प्रतीक है, E बिन्दु पर उत्पादन-समता-नियम लागू होता है। इसी बिन्दु पर दीर्घकालीन सन्तुलन की स्थिति होगी। उत्पादक श्रमिकों की OL मात्रा लगाएगा तथा OW मजदूरी देगा। इस बिन्दु पर मजदूरी सीमान्त आगम उत्पादन तथा औसत आगम उत्पादन के बराबर होगी।

8 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticism of Marginal Productivity Theory)

1. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधन की सभी इकाइयाँ सजातीय (Homogeneous) होती है जबकि वास्तविक व्यवहार में उत्पादन-साधन की इकाइयाँ विजातीय (Hetrogeneous) होती हैं।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उपयोगों के बीच उत्पादन-साधनों की गतिशीलता पूर्ण होती है। जबकि यह मान्यता सही नहीं है। भूमि में तो गतिशीलता का पूर्ण अभाव होता ही है, पूँजी व श्रम भी पूर्णत: गतिशील नहीं होते। जिससे उनकी सीमान्त उत्पादकता समान नहीं हो सकती।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधन पूर्णतया विभाज्य होते हैं। परिणामत: उनकी मात्राओं में अनन्तसूक्ष्म परिवर्तन किए जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि एक निश्चित सीमा से आगे उत्पादन साधन अविभाज्य हो जाते हैं।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया में साधन के अनुपातों को बदला जा सकता है। जबकि प्रावैधिक अन्य कारणों से सामान्यतया ऐसा सम्भव नहीं होता।
5. आलोचकों के अनुसार बड़े उद्योगों तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को मापना ही सम्भव नहीं होता।
6. कुछ आलोचक इसे वास्तविक नहीं मानते। क्योंकि यह सिद्धान्त सामान्यत: साधन के पारिश्रमिक को दिया हुआ तथा स्थिर मानता है।

7. इस सिद्धान्त के अनुसार किसी उत्पादन-साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके पारिश्रमिक को प्रभावित करती है
8. यह सिद्धान्त स्थिर अथवा आनुपातिक प्रतिफल नियम की मान्यता पर आधारित है। जबकि वास्तविक जीवन में वर्धमान अथवा ह्रासमान प्रतिफल नियम भी कार्यशील होता है।
9. यह सिद्धान्त साधन के कीमत निर्धारण की केवल दीर्घकालीन व्याख्या ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।
10. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की गलत एवं अवास्तविक धारणा पर निर्मित किया गया है।
11. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को इस आधार पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है कि यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के वर्तमान आय-वितरण को उचित बताता है जबकि इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह वितरण अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि असमतायुक्त भी है।
12. कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की इस आधार पर भी आलोचना की है कि सीमान्त उत्पादकता आय-वितरण के लिए कोई वास्तविक आधार प्रस्तुत नहीं करती और ना ही किसी उत्पादन-साधन के पारिश्रमिक तथा उसकी सीमान्त उत्पादकता के बीच कोई घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
13. यह सिद्धान्त उत्पादन-साधन की पूर्ति को स्थिर मानकर चलता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमि को छोड़कर किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं है, विशेषकर दीर्घकाल में तो किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं होती।
14. यह सिद्धान्त केवल माँग पक्ष पर बल देने के कारण एकपक्षीय है।

13.4 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त अथवा माँग एवं पूर्ति सिद्धांत (Modern Theory of Distribution or Demand and Supply Theory)

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल माँग पक्ष पर ही बल देता है। वितरण का सही सिद्धांत माँग एवं पूर्ति का सिद्धांत है जिसमें वस्तु के मूल्य निर्धारण की ही तरह माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के क्रियाशील होने के कारण उत्पादन के साधन का मूल्य अथवा पारितोषिक निर्धारित होता है।

13.4.1 माँग-पक्ष (Demand side)

किसी वस्तु की माँग इसलिए होती है क्योंकि उस से उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष उपयोगिता मिलती है। साधन की भी एक उपयोगिता होती है पर यह व्युत्पादित (derived) होती है। तात्पर्य यह है कि साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) पर निर्भर करती है कोई भी उत्पादक सीमान्त उत्पादकता से अधिक पारिश्रमिक के रूप में किसी भी साधन को नहीं देगा।

13.4.2 पूर्ति पक्ष (Supply side)

पूर्ति-पक्ष अथवा लागत-पक्ष वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम पर कोई उत्पादन का साधन कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता है। वह न्यूनतम सीमा साधन के त्याग पर निर्भर करती है और जैसे-जैसे किसी साधन की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर, त्याग बढ़ता जाता है। सीमान्त त्याग की माप अवसर लागत के आधार पर की जाती है।

13.4.3 संतुलन (Equilibrium)

इस प्रकार किसी भी साधन का मूल्य या पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादकता पर आधारित माँग तथा त्याग पर आधारित पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है तथा मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साधन की

सीमान्त उत्पादकता उसके सीमान्त त्याग के बराबर हो जाए। इस स्थिति का प्रदर्शन चित्र 13.4 के माध्यम से किया जा सकता है।

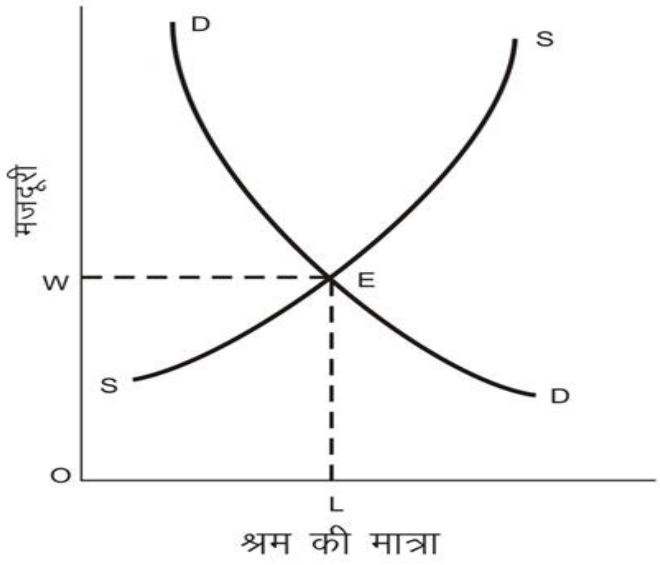

चित्र 13.4

इस चित्र में सीमान्त उत्पादकता पर आधारित माँग वक्र (DD) तथा सीमान्त त्याग पर आधारित पूर्ति वक्र (SS) एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। उत्पादक OL साधनों को लगाएगा तथा OW पारिश्रमिक देगा। वितरण के माँग एवं पूर्ति सिद्धांत की व्याख्या विशेषरूप से मजदूरी के सन्दर्भ में की गई है परन्तु यहाँ इतना स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसी साधन के माँग एवं पूर्ति के ऊपर बाजार की दशाओं का भी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि किसी साधन की माँग उस साधन की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आगम उत्पादन के ऊपर निर्भर करती है और सीमान्त आगम उत्पादन के ऊपर उस बाजार की दशाओं का प्रभाव पड़ेगा जिसमें साधन द्वारा उत्पादित वस्तुए बेची जाएगी। इस प्रकार किसी साधन के मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में, माँग एवं पूर्ति की इन विभिन्न दशाओं के आधार पर, निम्नांकित प्रकार की समस्याए उत्पन्न होती है-

1. जब वस्तु बाजार तथा साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता हो।
2. जब वस्तु बाजार तथा साधन- बाजार दोनों में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।
3. जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।
4. जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

13.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ***"अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं"*** यह किसका कथन है ?

   (क) मार्शल (ख) राबर्टसन

   (ग) सैम्युलसन (घ) जॉन रोबिनसन

2. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन में अन्तर नहीं होता, क्योंकि-

(क) वृद्धिमान नियम लागू नहीं होता (ख) समता नियम नहीं लागू होता

(ग) ह्रासमान नियम नहीं लागू होता (घ) प्रति इकाई मूल्य समान होता है

3. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन में अन्तर होता है, क्योंकि-

(क) वृद्धिमान नियम लागू नहीं होता (ख) समता नियम नहीं लागू होता

(ग) ह्रासमान नियम नहीं लागू होता (घ) बढ़ते उत्पादन के साथ क्रमशः मूल्य घटता है।

13.6 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त आज भी हमें एक ऐसा उपकरण प्रदान करता है जिसकी सहायता से विभिन्न बाजार परिस्थितियों में किसी साधन के कीमत निर्धारण की व्याख्या की जा सकती है। व्यक्तिगत फर्म हेतु इस सिद्धान्त का विशेष महत्व है क्योंकि प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ कमाना चाहती है। अत: इसे प्रत्येक साधन के सीमान्त उत्पाद को उसकी बाजार कीमत के बराबर करना होगा। यदि साधन की कीमत उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम है तो उस साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाकर फर्म अपने लाभ को अधिकतम कर सकती है। इसके विपरीत यदि साधन की कीमत उसके सीमान्त उत्पाद के मूल्य से अधिक है तो उस साधन की कुछ इकाइयों को सेवामुक्त करना फर्म के हित में होगा।

13.7 शब्दावली (Glossary)

- **सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product- MPP):** किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग के करने से, अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ कुल उत्पादन में वृद्धि ही उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है।
- **सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product- MVP):** जब सीमान्त भौतिक उत्पादन को मूल्य या औसत आगम से गुणा कर दिया जाए, तो जो गुणनफल प्राप्त होगा उसे सीमान्त मूल्य उत्पादन कहेंगे।
- **सीमान्त आगम उत्पादन (Marginal Revenue Product- MRP):** उत्पादन के किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के फलस्वरूप 'कुल मूल्य उत्पादन' अथवा कुल आगम में होने वाली वृद्धि ही सीमान्त आगम उत्पादन है।

13.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर (Answers for Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क 2. घ 3. घ

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।

- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

13.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product), सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product) तथा सीमान्त आगम उत्पादन (Marginal Revenue Product) की धारणा को समझिए। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आगम उत्पादन के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. वितरण का माँग-पूर्ति सिद्धान्त समझाइए।

इकाई - 14 लगान और ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

(ModernTheories of Rent and Interest)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)
14.2 उद्देश्य (Objective)
14.3 लगान की अवधारणा (Concept of Rent)
14.4 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त (Rent Theory of Ricardo)
14.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Rent)
14.5.1 लगान का माप (Measurement of Rent)
14.5.2 रेखाचित्रों द्वारा लगान का स्पष्टीकरण (Diagrammatic explanation of Rent)
14.6 ब्याज की अवधारणा (Concept of Interest)
14.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)
14.7.1 विनियोग बचत वक्र (Investment Demand Curve)
14.7.2 तरलता-मुद्रा वक्र (LM Curve)
14.7.3 संतुलन (Equilibrium)
14.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
14.9 सारांश (Summary)
14.10 शब्दावली (Glossary)
14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)
14.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)
14.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई के अन्तर्गत लगान और अधिशेष या ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का अध्ययन किया गया है, लागत के वितरण के अन्तर्गत श्रम को मजदूरी, पूँजी को ब्याज, उद्यमी को लाभ तथा भूमि को लगान मिलता है। उत्पादन के संसाधन (भूमि और पूँजी) को प्राप्त होने वाले पारितोष के सिद्धांतों का अध्ययन हम इस इकाई में करेगें। जिसमें मुख्यतः आधुनिक सिद्धांतों को आपको समझाया जाएगा और पुरातन सिद्धांतों का अध्ययन आप उच्चतर पाठ्यक्रमों में करेगें।

14.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- ✓ लगान की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ लगान के आधुनिक सिद्धांत को जान सकेंगे।
- ✓ ब्याज का तात्पर्य एवं उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- ✓ बचत की पूर्ति तथा ब्याज दर में सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- ✓ बचत तथा निवेश के फलनात्मक सम्बन्धों को समझ सकेंगे।

14.3 लगान की अवधारणा (Concept of Rent)

लगान की तीन धारणाएँ है:

1. **साधारण बोलचाल में लगान की अवधारणा (Concept of Rent in common language)-** साधारण बोलचाल की भाषा में **'लगान'** शब्द का अर्थ द्रव्य की उस मात्रा से है जो कि एक व्यक्ति मकान, खेत, यन्त्र, बिजली के पंखे, फर्नीचर आदि के प्रयोग के लिए इनके स्वामी को देता है।
2. **लगान की क्लासिकल अथवा रिकार्डियन अवधारणा (Classical and Ricardian Concept of Rent)-** इसके अनुसार लगान केवल भूमि के प्रयोग का भुगतान है।
3. **लगान की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Rent)-** इसके अनुसार लगान किसी भी उत्पादन-साधन को प्राप्त होने वाला वह भुगतान है जो इसके (साधन के) हस्तान्तरण उपार्जनों पर आधिक्य (Surplus) के रूप में उत्पन्न होता है।

अर्थशास्त्र में भूमि शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में करते हैं। भूमि के अर्थ के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मत में भिन्नता हैं। इसलिए भूमि से प्राप्त प्रतिफल (लगान) के भी सम्बन्ध में दो सिद्धान्त मिलते हैं।

मार्शल (Marshall) के शब्दों में ***"भूमि से तात्पर्य उन सब पदार्थों तथा शक्तियों से है जो प्रकृति मनुष्य की सहायता के लिए भूमि, पानी, हवा तथा गर्मी के रूप में निःशुल्क प्रदान करती है।"*** मार्शल ने लगान की परिभाषा इस प्रकार दी ***"लगान वह आय है जो कि भूमि तथा प्रकृति के निःशुल्क उपहारों के स्वामी से प्राप्त होती है। (The income derived from the ownership of land and other free gifts of nature is commonly called rent)"***

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विशिष्टता (Specificity) के आधार पर भूमि की परिभाषा दी तथा यह प्रतिपादित किया कि उत्पादन के प्रत्येक साधन, जो विशिष्ट स्वभाव के हैं तथा जिनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) नहीं है, उन्हें भूमि की श्रेणी में रखा। जिस किसी भी साधन में भूमि का गुण विद्यमान

होगा उसे इस गुण के कारण लगान प्राप्त होगा। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान, वह अतिरेक है जो किसी साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को केवल भूमि तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि विस्तृत अर्थ में भी इसको प्रयोग में लाते हैं।

प्रतिष्ठित और आधुनिक अर्थशास्त्रियों के लगान सम्बन्धी सिद्धान्त का अलग अलग विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्याय में हम केवल इसके आधुनिक सिद्धांत का अध्ययन करेगें। जबकि लगान के प्रतिष्ठित सिद्धान्त का आप उच्चरत पाठ्यक्रम में अध्ययन करेगें।

14.4. रिकार्डों का लगान सिद्धान्त (Rent Theory of Ricardo)

रिकार्डों (Ricardo) के अनुसार *"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो कि भूमि के स्वामी को मिट्टी की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले दिया जाता है। (That portion of the produce of earth which is paid to the landlord for the use of original and indestructible power of the soil.)"*

रिकार्डों के लगान सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Ricardian Theory of Rent)

1. रिकार्डों के अनुसार लगान केवल भूमि साधन को प्राप्त होता हैं और यह विभेदक उर्वरता (different fertility) के कारण उत्पन्न होता हैं।
2. रिकार्डों ने भूमि के विभिन्न उपयोगों को स्वीकार नहीं करा हैं उनके अनुसार भूमि केवल खेती के काम ही आती हैं।
3. रिकार्डों ने यह स्पष्ट किया हैं की, भूमि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं और उसकी उत्पादकता उसके प्रकार पर निर्भर करती हैं। भूमि के भिन्न-भिन्न प्रकार होने से ही लगान हर भूमि से अलग लिया जाता हैं।
4. रिकार्डों के अनुसार भूमि की पूर्ति सीमित होती हैं वह बढ़ या घट नहीं सकती, इसी कारण भूमि के लिए लगान उत्पन्न होता हैं।

सिद्धान्त की व्याख्या (Explaination of Theory)

रिकार्डों के सिद्धान्त में भूमि को उसकी उत्पादकता के अनुसार अलग-अलग भाग में बाटा गया हैं, जिसमें रिकार्डों यह कहते हैं की बढ़िया भूमि जिसकी उत्पादकता अधिक हो वह ज्यादा लगान प्राप्त करेगी उस भूमि की तुलना में जोकि घटिया प्रकार की हैं अर्थात जो कम उत्पादकता देती हैं। रिकार्डों का यह कहना हैं की लगान विभिन्न प्रकार की भूमियों से जो अलग-अलग उर्वरता (fertility) प्राप्त होती हैं उसका अन्तर हैं और इस प्रकार के लगान को रिकार्डों ने भेदात्मक अतिरेक (differential surplus) कहा हैं।

रिकार्डों का यह मानना भी हैं की लगान केवल भूमि के लिए ही दिया जाता हैं क्योकि भूमि की पूर्ति सीमित होती हैं और उसकी माँग असीमित। साथ ही रिकार्डों का यह भी कहना हैं कि भूमि में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो बाकी किसी भी साधन में नहीं हैं यह प्रक्रति का नि: शुल्क उपहार हैं।

रिकार्डों ने आपने सिद्धान्त को तीन सन्दर्भ में समझाया हैं, पहला लगान कहाँ लगता हैं? दूसरा लगान क्यों लगता हैं? और तीसरा लगान कितना लगता हैं अर्थात इसकी मात्रा किसके बराबर होती हैं? इन तीनों सन्दर्भ को आप उपरोक्त शययाँ से भली भाति समझ ही गए होगे।

रिकार्डों के लगान सिद्धान्त को समझने के बाद अब आप लगान के आधुनिक सिद्धान्त को और अच्छे से समझ पाएँगे, क्योकि रिकार्डों का यह सिद्धान्त ही आधुनिक सिद्धान्त का मुलभुत कारक हैं।

14.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Rent)

लगान का आधुनिक सिद्धान्त, लगान के रिकार्दियन सिद्धान्त का एक संशोधित संस्करण (revised version) है। लगान के आधुनिक सिद्धान्त को समझने के लिए आपका पहले लगान के रिकार्दियन सिद्धान्त को समझना जरुरी हैं।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करने का श्रेय **प्रो. जे. एस. मिल** (Prof. J. S. Mill) को जाता है परन्तु इस सिद्धांत को वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में प्रतिपादित तथा विकसित करने का श्रेय **श्रीमती जॉन रॉबिंसन** (Mrs Joan Robinson) को जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार केवल भूमि की ही आपूर्ति सीमित नहीं है बल्कि भूमि की तरह श्रम एवं पूँजी की भी मात्रा सीमित होती है। **रिकार्डों** (Ricardo) के अनुसार लगान एक प्रकार का अतिरेक है और आधुनिक अर्थशास्त्री भी इस बात से सहमत हैं। अन्तर इतना है कि रिकार्डों अतिरेक का कारण, भूमि की उर्वरता की विभिन्नता मानते हैं, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री इसे विशिष्टता, दुर्लभता, अथवा पूर्ति की सीमितता का परिणाम मानते हैं। यहाँ पर विशिष्टता से अभिप्राय गतिशीलता के अभाव से है।

आस्ट्रियन अर्थशास्त्री **वोन वीजर (Von Wieser)** ने उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण दो भागों में किया-

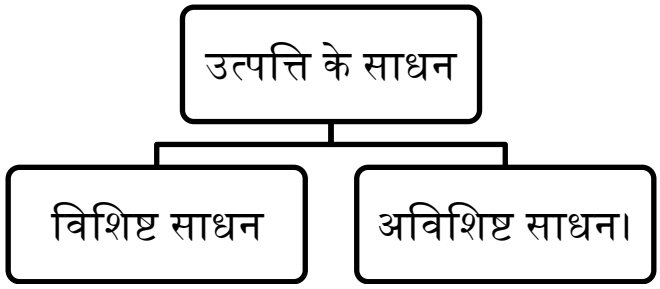

विशिष्ट साधन वह साधन हैं जिनका एक ही प्रयोग सम्भव होता हैं अर्थात् जिनमें गतिशीलता की कमी होती हैं। अविशिष्ट साधन वह साधन होते हैं, जिनमें गतिशीलता हो तथा जिनका एक से अधिक उपयोग सम्भव हो। जहाँ तक अविशिष्ट साधनों के पारितोषिक का प्रश्न हैं, इन साधनों का पारिश्रमिक तो उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निर्धारित होगा क्योकि यदि किसी साधन का पारिश्रमिक किसी उपयोग में इससे कम हो तो वह उस उपयोग को छोड़कर किसी अन्य दूसरे उपयोग में स्थानान्तरित हो जाएगा जहाँ उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर पारिश्रमिक मिले। परन्तु विशिष्ट साधन को चाहे उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर, उससे कम या अधिक पारिश्रमिक मिले, हर दशा में यह उसी उपयोग में बना रहेगा। इस प्रकार किसी साधन की विशिष्टता तथा अविशिष्टता का यह गुण यह निर्धारित करेगा कि उसे पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलेगा या नहीं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी उत्पादन के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता से जो अधिक पारिश्रमिक मिलेगा वही लगान होगा, और वह लगान उस साधन की विशिष्टता का परिणाम होगा क्योकि सीमान्त उत्पादकता के बराबर जो पारिश्रमिक मिलेगा वह तो उस साधन की अविशिष्टता के गुण के कारण मिलेगा। इस प्रकार साधन जितना ही अधिक विशिष्ट होगा उसका लगान अंश उतना ही अधिक होगा।

माप के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्री अवसर आय (Opportunity Earning), स्थानान्तरण आय (Transfer Earning) एवं वास्तविक आय (Actual Earning) का सहारा लेते हैं। अवसर लागत या आय के आधार पर लगान की प्रथम व्याख्या का श्रेय **मार्शल** को जाता है जिन्होंने यह प्रतिपादित किया कि किसी व्यक्तिगत भूमिपति को उसकी अवसर लागत के ऊपर जो अतिरिक्त भुगतान प्राप्त होता है, वह लगान है।

बेन्हम (Benham) के अनुसार ***"सामान्यतया उत्पत्ति के साधन की कोई भी इकाई अपनी स्थानान्तरण आय के ऊपर जो अतिरिक्त आय प्राप्त करती है, वह लगान के स्वभाव का होता है।"*** सूत्र के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

लगान = साधन की वास्तविक आय − स्थानान्तरण आय

$$Rent = Actual\ Earning - Transfer\ Earning$$

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन (Mrs John Robinson) के अनुसार ***"लगान किसी साधन की उस बचत को कहते हैं जोकि उस न्यूनतम राशि के अतिरिक्त उत्पन्न होता है जिसके कारण वह साधन उस व्यवसाय में कार्य करने के लिए आकृष्ट होता है। (Rent is the saving of a factor that is generated in addition to the minimum amount due to which that factor is attracted to work in that business.)"***

यह स्पष्ट है की जो साधन जितना अधिक विशिष्ट होगा उसकी स्थानान्तरण आय (Transfer Earning) भी उतनी ही कम होगी और उसका लगान उतना ही अधिक होगा।

14.5.1 लगान का माप (Measurement of Rent)

अवसर आय तथा वास्तविक आय के माध्यम से आर्थिक लगान की गणना को और स्पष्ट करने के लिए सारिणी 14.1 दी गई है। इसमें भूमि के ऐसे टुकड़े का लगान ज्ञात किया गया है जिसमें गेहूँ की खेती की जा रही है, यदि गेहूँ की खेती नहीं होती तो चावल की खेती होती। यदि इस पर गेहूँ की खेती होती तो 1000 रूपया वार्षिक आय प्राप्त होती, किन्तु यदि उस पर चावल की खेती की जाती तो लगान सारिणी में दी गई आय की रकमों में से कोई एक होती।

सारिणी संख्या 14.1

गेहूँ की खेती से आय वास्तविक आय	चावल की खेती से आय स्थानान्तरण आय		आधिक्य अथवा लगान
रूपया	रूपया		रूपया
1000	0	पूर्ण विशिष्ट	1000-0=1000
	200	अंशतः विशिष्ट	1000-200=800
	400		1000-400=600
	600		1000-600=400
	800		1000-800=200
	1000	पूर्ण अविशिष्ट	1000-1000=0

सारिणी 14.1 से स्पष्ट है कि यदि भूमि का टुकड़ा पूर्णतया विशिष्ट हो अर्थात् उस पर चावल की खेती की ही नहीं जा सके तो गेहूँ से प्राप्त कुल वास्तविक आय ही लगान होगी जैसा कि सारिणी में पहली अवस्था में दिखाया गया है, जब चावल के उत्पादन से आय **शून्य** है। यदि उस टुकड़े पर चावल की कृषि की जा सकती है तो वह टुकड़ा **अंशतः विशिष्ट** तथा **अंशतः अविशिष्ट** होगा। उस साधन की विशिष्टता और अविशिष्टता का मापदण्ड यह होगा कि उससे चावल की कृषि से कितनी आय प्राप्त होती है। यदि आय अधिक प्राप्त हो सके तो वह अधिक अविशिष्ट होगा और यदि कम आय प्राप्त होगी तो अधिक विशिष्ट होगा। यदि चावल की कृषि से आय गेहूँ की आय के बराबर हो अर्थात् वास्तविक आय स्थानान्तरण आय के बराबर हो जैसा कि सारिणी में अन्तिम अवस्था में दिखाया गया है अर्थात् जब चावल से 1000 रूपया आय प्राप्त हो तो भूमि का वह टुकड़ा पूर्ण अविशिष्ट होगा और उसे लगान नहीं मिलेगा। सारिणी के सूक्ष्म विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि लगान विशिष्टता का ही परिणाम है

जिसका माप वास्तविक आय तथा स्थानान्तरण आय के अन्तर के आधार पर किया जाता है। **विलियम फेल्नर (William Felner)** के शब्दों में आधुनिक सिद्धान्त का सारांश इस प्रकार है – ***"लगान के प्रतिपादन का आधुनिक विचार यह है कि लगान को एक अतिरेक माना जाता है जो किसी उत्पादन के साधन की इकाई को उसी व्यवसाय में लगाए रखने के लिए आवश्यक आय के अतिरिक्त प्राप्त होता है। वास्तव में लगान इस प्रकार की अतिरेक पूर्ति के सीमित होने का प्रतिफल है।"***

14.5.2 रेखाचित्रों द्वारा लगान का स्पष्टीकरण (Diagrammatic explanation of Rent)

विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार से लगान का निर्धारण होगा, इसका स्पष्टीकरण आगे दिए गए रेखाचित्रों के माध्यम से किया गया है-

1. यदि उत्पादन के साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार तो उसकी पूर्ति रेखा आधार पर लम्ब होगी। 14.1 चित्र में OX अक्ष पर उत्पादन के साधन की मात्रा तथा OY अक्ष पर उसका मूल्य प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में LS पूर्ति-वक्र तथा DD माँग वक्र है। यहाँ साधन पूर्णतया विशिष्ट है इसलिए इसकी अवसर लागत (Opportunity Cost) शून्य है। तात्पर्य यह है कि वर्तमान उपयोग में OP मूल्य से कम मिलने पर भी साधन दूसरी जगह नहीं जा सकेगा। इस प्रकार उसकी कुल आय OPTL ही लगान होगी।

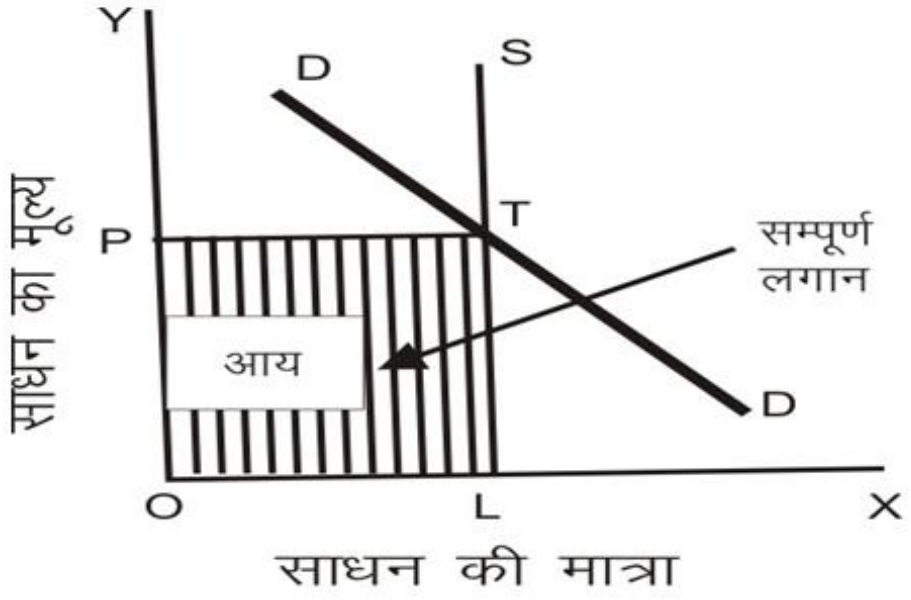

चित्र 14.1

2. यदि उत्पादन का साधन पूर्णतया लोचदार अथवा पूर्णतया अविशिष्ट हो तो ऐसी परिस्थिति में साधन का पूर्ति-वक्र आधार के समान्तर होगा। इस चित्र 14.2 में आधार-अक्ष पर साधन की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर साधन को मिलने वाला मूल्य प्रदर्शित है। इस चित्र में PS पूर्ति वक्र है जो इस बात का प्रतीक है कि दिए गए मूल्य पर कोई उत्पादक जितना चाहे उतना उत्पादन का साधन खरीद सकता है। ऐसी परिस्थिति में साधन की सम्पूर्ण आय स्थानान्तरण आय के बराबर होगी। स्थानान्तरण आय के ऊपर उसे कुछ भी बचत नहीं होगी। ऐसी स्थिति में लगान शून्य होगी।

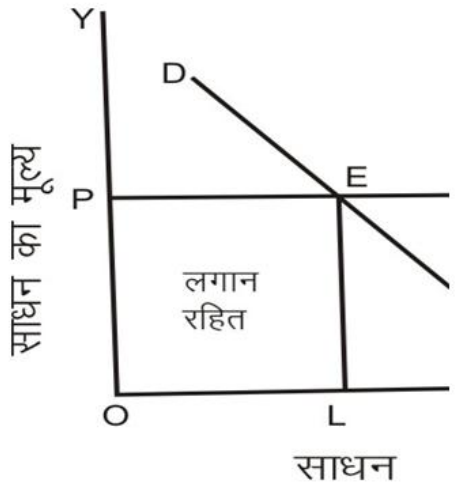

चित्र 14.2

3. यदि उत्पादन का साधन पूर्णतया लोचदार अथवा पूर्णतया बेलोचदार ना हो, दूसरे शब्दों में उत्पत्ति का साधन पूर्ण विशिष्ट अथवा पूर्ण अविशिष्ट ना हो तो, ऐसी स्थिति का स्पष्टीकरण चित्र 14.3 में किया गया है-

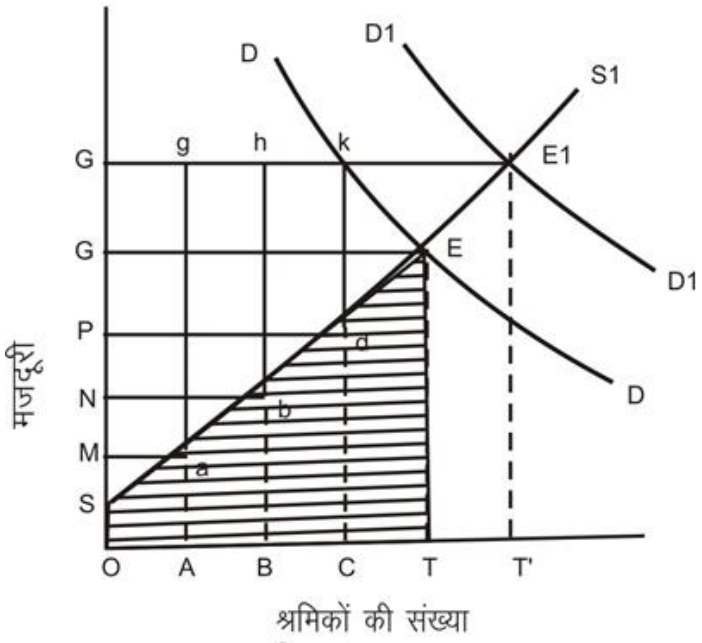

चित्र 14.3

चित्र से स्पष्ट है कि - (E संतुलन बिन्दु पर)

$$\text{वास्तविक आय} \times \text{कुल मूजदरी} = \text{OG} \times \text{OT} = \text{OTEG}$$

$$\text{अवसर लागत} = \text{पूर्ति रेखा } SS_1 \text{ के नीचे का क्षेत्र} = \text{OSET श्रमिकों की OT संख्या पर लगान}$$

$$= \text{OTEG} - \text{OSET} = \text{GSE}$$

यदि माँग और बढ़ जाए जैसा D_1, D_1 से व्यक्त है तो लगान में वृद्धि हो जाएगी तथा लगान $OT1\ E1G1 - OSE1\ T1 = G1SE1$ होगा।

14.6 ब्याज की अवधारणा (Concept of Interest)

ब्याज, आय का वह भाग हैं जो पूंजीपति को पूंजी की सेवाओं के बदले प्राप्त होता हैं। **मार्शल (Marshall)** के अनुसार ***"ब्याज किसी बाज़ार में पूंजी के प्रयोग की कीमत हैं। Interest is the cost of using capital in the market."*** **कीन्स (Keynes)** के अनुसार ***"ब्याज एक पुरुस्कार हैं जो लोगो को अपने धन को संगृहीत मुद्रा के बजाय, किसी अन्य रूप में रखने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु दिया जाता हैं। Interest is the reward given to people to encourage them to keep their money in some form other than stored currency. "***

ब्याज के दो मूल रूप है- **कुल ब्याज (Net Interest)** तथा **शुद्ध ब्याज (Pure Interest)**, ऋणदाता ऋणी से जो आय वसूल करता है, वह सारी आय शुद्ध ब्याज नहीं होती। इस आय को कुल ब्याज कहना अधिक उपयुक्त होगा। शुद्ध ब्याज के अलावा कुल ब्याज में और भी बहुत से भुगतान सम्मिलित होते हैं।

कुल ब्याज में चार मुख्य तत्व पाए जाते हैं:

1. **शुद्ध ब्याज (Pure Interest)**- शुद्ध ब्याज पूँजी को उधार पर देने का पुरस्कार है।
2. **जोखिम के विरूद्ध बीमा (Insurance against risk)**- कुल ब्याज का एक अंश उस जोखिम का भुगतान भी होता है जो ऋणदाता (Lender) द्वारा ऋण (Loan) देते समय उठाया जाता है। ऋण देते समय जितना जोखिम कम होता है, उतना ही ब्याज दर कम होता है।
3. **असुविधा का भुगतान (Inconvenience pay)-** ऋण देते समय ऋणदाता को असुविधा का अनुभव होता है।
4. **प्रबन्धक का पारिश्रमिक (Manager's remuneration)-** प्रत्येक ऋण दाता को ऋण-प्रबन्ध पर कुछ न कुछ व्यय करना पड़ता है।

उदाहरणार्थ, ऋणदाता को प्रत्येक ऋणी के लिए अलग से खाता खोलना पड़ता है और समय-समय पर उसकी देखभाल करनी पड़ती है। यह भी सम्भव है कि ऋण वापस लेने से पूर्व उसे कई बार ऋणी का दरवाजा खटखटाना पड़े। इन सभी के कारण ऋणदाता को अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है और वह शुद्ध ब्याज में 1 अथवा 2 प्रतिशत की वृद्धि करके अपनी क्षतिपूर्ति कर लेता है।

14.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)

ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन **प्रो. हिक्स (Prof Hicks)** तथा **प्रो. हेन्सन (Prof. Henson)** ने किया हैं। इसी कारण ब्याज के इस सिद्धान्त को हिक्स-हेन्सन समन्वय सिद्धान्त (Hicks Henson Cordinate Principle) भी कहा जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर वास्तविक तत्वों अथवा अमौद्रिक तत्वों (Non-Monetary Elements) जैसे-विनियोग तथा बचत पर निर्भर करती है। **कीन्स (Keynes)** का यह सिद्धान्त ब्याज की दर को पूर्णतः मौद्रिक घटना के रूप में परिभाषित करता है, तथा ब्याज की दर मुद्रा की माँग (Demand for Money) अथवा तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) तथा मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money) द्वारा प्रभावित होती है। **प्रो. हिक्स** (Prof Hicks) ने दोनों ही विचारधाराओं को अपूर्ण बताते हुए स्पष्ट किया हैं कि प्रतिष्ठित विचारधारा वस्तु बाजार के सन्तुलन को बताती है जिसमें ब्याज दर के निर्धारण के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह सिद्धान्त केवल यह बतलाता है कि विनियोग, बचत समानता की दशा में विभिन्न ब्याज की दरों पर आय का स्तर क्या होगा।

कीन्स (Keynes) का सिद्धान्त मुद्रा बाजार के सन्तुलन को बताता है जिसमें ब्याज की दर, पुनः अनिर्धारणीय है क्योंकि यह सिद्धान्त केवल मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति में समानता की दशा को स्पष्ट करता है।

प्रो. हिक्स एवं **प्रो. हेन्सन** ने उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का उचित समन्वय करते हुए ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आधुनिक सिद्धान्त में आय परिवर्तन का मौद्रिक एवं वास्तविक तत्वों पर प्रभाव देखकर ब्याज की दर का निर्धारण किया गया है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक सिद्धान्त में मौद्रिक एवं वास्तविक तत्वों का एकीकरण करके ब्याज की दर को निर्धारित किया गया है।
प्रतिष्ठित विचारधारा एवं कीन्स की तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) विचारधारा का समन्वय निम्नलिखित चार तत्व प्राप्त होते हैं

1. विनियोग माँग वक्र (Investment Demand Curve)
2. बचत वक्र (Saving Curve)
3. तरलता पसन्दगी वक्र (Liquidity Preference Curve)
4. मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

उपर्युक्त तत्वों के आधार पर हमें दो प्रकार के (IS एवं LM) वक्र प्राप्त होते हैं।

14.7.1 विनियोग बचत वक्र (Investment Demand Curve)

विनियोग बचत वक्र, प्रतिष्ठित सिद्धान्त से प्राप्त किया जाता है जो ब्याज एवं आय के ऐसे संयोगों को बताता है जिन पर विनियोग एवं बचत बराबर होते हैं। (IS curve depicts differents combination of those interest and income which keep I=S) इस प्रकार वस्तु बाजार (Goods Market) में वास्तविक तत्वों के सन्तुलन को बताने वाला, IS वक्र कहलाता है।

वस्तु बाजार में, $I = f(r)$ अर्थात् विनियोग ब्याज की दर का फलन है। $S = f(Y)$ अर्थात् बचत आय का फलन है। $I = S$ अर्थात् वस्तु बाजार में सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि विनियोग तथा बचत बराबर हों। वस्तु बाजार (Goods Market) के इन सभी कारणों की सहायता से IS वक्र की व्युत्पत्ति (derivation) की जा सकती है।

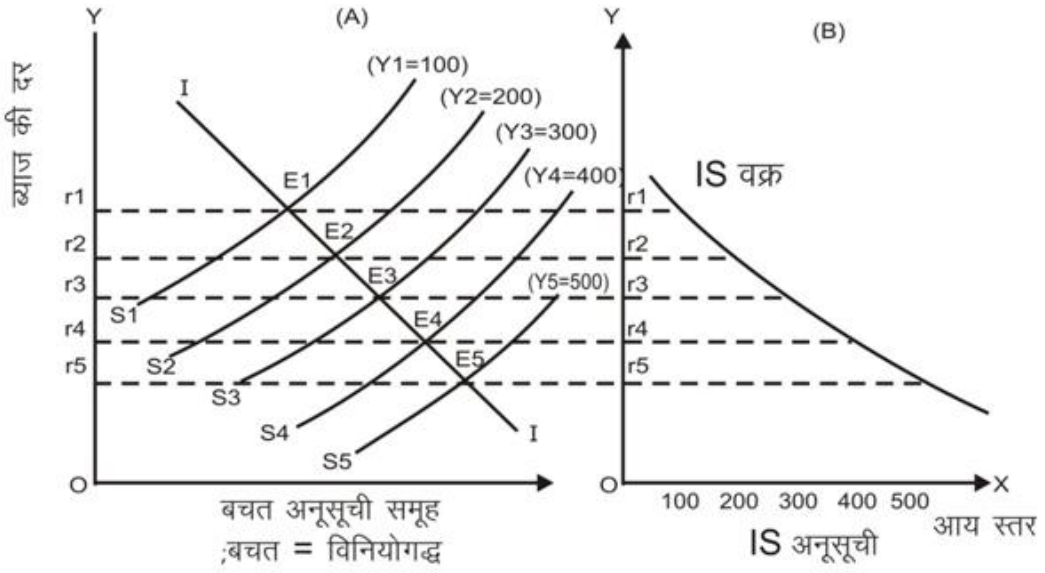

चित्र 14.4 IS वक्र की व्युत्पत्ति

चित्र 14.4 में IS वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के A भाग में विभिन्न आय स्तरों Y_1, Y_2, Y_3, Y_4तथा Y_5 पर बचत वक्र क्रमश: S_1Y_1 , S_2Y_2 , S_3Y_3, S_4Y_4 तथा S_5Y_5 हैं। इन विभिन्न आय स्तरों पर बचत वक्र, विनियोग वक्र के साथ समानता (I=S) स्थापित करते हुए क्रमशः ब्याज की दर r_1, r_2, r_3, r_4 तथा r_5 निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का A भाग हमें यह बतलाता है कि विभिन्न आय स्तरों पर बचत तथा विनियोग की समानता की दशा में, ब्याज की विभिन्न दरें क्या हैं। चित्र के भाग B में इसी सम्बन्ध का निरूपण किया गया है। IS वक्र ऐसे बिन्दुओं का बिन्दुपथ (Locus) है जो आय एवं ब्याज की दर के उन विभिन्न संयोगों को बताता है जिन पर बचत एवं विनियोग समान होते हैं।

14.7.2 तरलता-मुद्रा वक्र (LM Curve)

कीन्स (Keynes) के विश्लेषण के अनुसार अर्थव्यवस्था में ब्याज दर पूर्णतः एक मौद्रिक घटना (Monetary Event) है। ब्याज दर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) के भी कई स्तर होंगे। दूसरे शब्दों में, कीन्स की तरलता पसन्दगी विचाराधारा से LM वक्र की उत्पत्ति की जा सकती है। LM वक्र हमें यह बतलाता है कि तरलता पसन्दगी वक्र के दिए होने पर विभिन्न आय स्तरों पर ब्याज की दरें क्या-क्या होंगी?

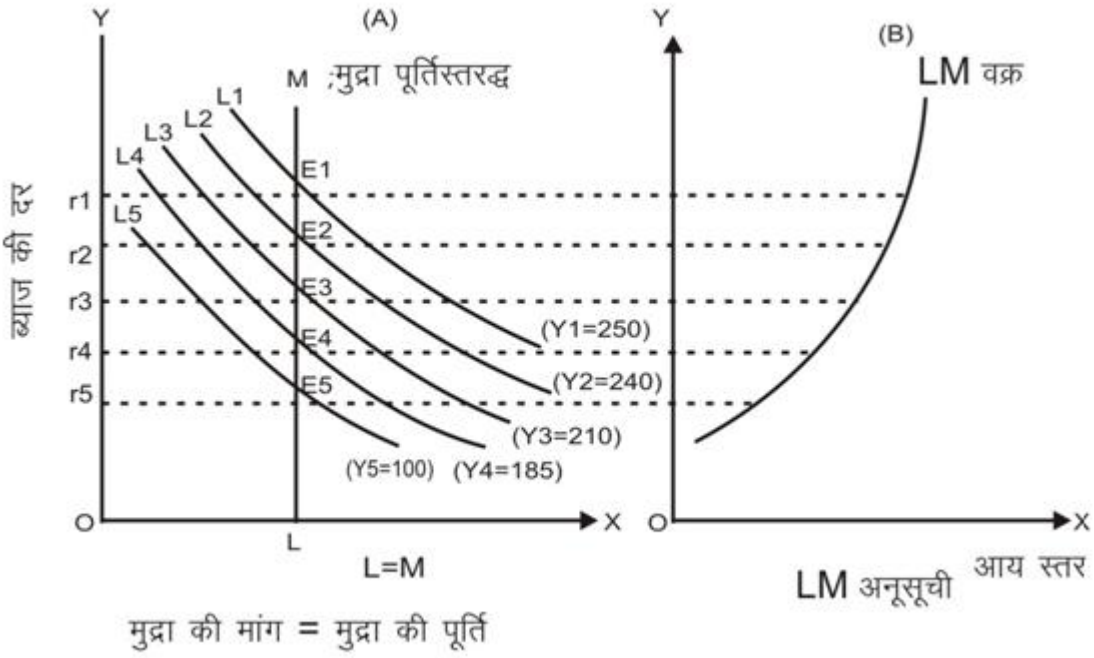

चित्र 14.5 LM वक्र की व्युत्पत्ति

चित्र 14.5 में LM वक्र की उत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के भाग A में स्थिर मुद्रा की पूर्ति ML वक्र दिखाया गया है। विभिन्न आय स्तरों Y_1, Y_2, Y_3, Y_4तथा Y_5 पर तरलता पसन्दगी वक्र क्रमशः L_1Y_1 , L_2Y_2 , L_3Y_3, L_4Y_4 तथा L_5Y_5 प्रदर्शित किए गए हैं जो विभिन्न आय स्तरों पर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति में

समानता (L=M) स्थापित करते हुए विभिन्न ब्याज की दरें r_1, r_2, r_3, r_4 तथा r_5 तथा निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का A भाग स्पष्ट रूप से हमें मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति की समानता की दशा में आय स्तर तथा ब्याज की दर के सम्बन्ध को बताता है। चित्र के B भाग में इसी सम्बन्ध को LM वक्र की सहायता से व्यक्त किया गया है। LM वक्र आय तथा ब्याज की दर के ऐसे संयोग बिन्दुओं का बिन्दुपथ (Locus) है जिन पर मुद्रा की पूर्ति (M) तथा मुद्रा की माँग (L) परस्पर बराबर हों। LM वक्र की सहायता से हम दिए गए आय स्तरों पर ब्याज की दरों का अनुमान लगा सकते हैं। यदि हमें पहले से आय स्तर का पता ना हो तो हम ब्याज की दर का अनुमान नहीं कर सकते।

14.7.3 संतुलन (Equilibrium)

IS वक्र तथा LM वक्र दोनों की सहायता से हम ब्याज की दर तथा आय स्तर का निर्धारण कर सकते हैं। निर्धारण की इस प्रक्रिया को चित्र 14.6 में समझाया गया है।

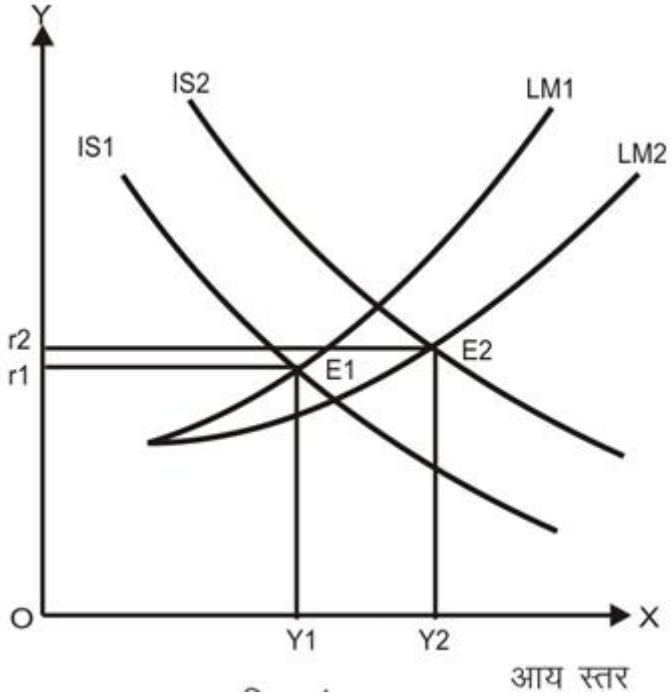

चित्र 14.6 ब्याज दर निर्धारण

चित्र में आरम्भिक IS_1 तथा LM_1 वक्र एक-दूसरे को बिन्दु E_1 पर काटते हैं, जहाँ Or_1 ब्याज दर तथा OY_1 आय स्तर निर्धारित होते हैं। इस सन्तुलन बिन्दु E_1 पर आय स्तर तथा ब्याज की दर, में सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है कि- 1. विनियोग एवं बचत सन्तुलन में हो (अर्थात् वास्तविक बचत एवं विनियोग इच्छित बचत के बराबर हो) तथा 2. मुद्रा की माँग, मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए (अर्थात् माँगी गयी मुद्रा की मात्रा वास्तविक मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए)।

चित्र में IS_2 परिवर्तित IS वक्र को बताता है, IS वक्र का यह परिवर्तन विनियोग फलन में वृद्धि अथवा बचत फलन में कमी के कारण उत्पन्न होता है। परिवर्तित LM_2 वक्र मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि और तरलता पसन्दगी में कमी के कारण उपस्थित होता है। परिवर्तित IS_2 तथा LM_2 वक्रों के साथ Or_2 ब्याज दर तथा OY_2 आय स्तर निर्धारित होते हैं।

इस प्रकार ब्याज आधुनिक सिद्धान्त निर्धारणीय है जो निम्नलिखित फलनों पर आधारित है:

1) विनियोग माँग फलन

$I = f(r)$

अर्थात् विनियोग ब्याज दर का फलन होता है।

2) बचत फलन

$S = f(Y, r)$

अर्थात् बचत, आय स्तर तथा ब्याज की दर दोनों का फलन होती है।

3) तरलता पसन्दगी फलन

$L = f(Y, r)$

अर्थात् मुद्रा की माँग, आय स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर करती है।

4) मुद्रा की मात्रा, जो सरकार द्वारा नियन्त्रित की जाती है, स्थिर होती है। उपर्युक्त फलनों के आधार पर सन्तुलन शर्तों को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है:

1. $I = S$,अर्थात् विनियोग=बचत

2. $L = M$,अर्थात् मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

14.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. "ब्याज पूँजी के त्याग का प्रतिफल है", यह कथन दिया है-

(क) मार्शल (ख) हिक्स

(ग) सीनियर (घ) फिशर

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों द्वारा प्रतिपादित ब्याज का सिद्धान्त है-

(क) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (ख) IS एवं LM वक्र सिद्धान्त

(ग) बचत विनियोग सिद्धान्त (घ) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

3. कीन्स के अनुसार ब्याज का सम्बन्ध किस से है -

(क) सौदा उद्देश्य (ख) दूरदर्शिता उद्देश्य

(ग) सट्टा उद्देश्य (घ) इनमें से तीनो

14.9 सारांश (Summary)

अनेक आलोचनाओं के बावजूद, रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को आर्थिक साहित्य में सम्माननीय स्थान प्राप्त है। पश्चिमी देशों में रिकार्डो के लगान सिद्धान्त ने व्यवहारिक नीति के निर्माण पर गहरा प्रभाव डाला है। इस सिद्धान्त के अनुसार लगान जमींदार द्वारा किए गए किसी प्रयास के कारण उत्पन्न नहीं होता। यह रिकार्डो के सिद्धान्त का प्रभाव ही हैं, जिसके कारण विश्व के बहुत से देशों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन (elimination) कर दिया गया है। इस सिद्धान्त की दूरगामी उपलक्षणाओं के ही कारण समाजवादी लेखक इसको सम्माननीय स्थान देते हैं।

विशेष रूप से, विकासशील देशों में प्राकृतिक एवं मानवी संसाधनों का उपयोग करने के लिए पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने हेतु पूँजी के प्रतिफल के रूप में ब्याज की विशेष भूमिका होने के कारण इसके

विभिन्न सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। इस प्रकार ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को समझते हुए ब्याज के विभिन्न आयामों की जानकारी दी गयी है।

14.10 शब्दावली (Glossary)

- **वास्तविक आय(Actual Earning)-** उत्पादन साधन को मिलने वाली वास्तविक आय।
- **हस्तान्तरण आय(Transfer Income)-** उत्पादन साधन को दूसरे क्षेत्र में हस्तान्तरित करने पर साधन को प्राप्त होने वाली आय।
- **आभास लगान (Quasi Rent)-** उत्पादन साधन को मिलने वाली वह अतिरिक्त आय जो अल्पकाल में साधनों की सीमित पूर्ति के कारण होती है।
- **सौदा उद्देश्य (Transaction Motive)**- दैनिक लेन देन के लिए मुद्रा की माँग सौदा उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।
- **दूरदर्शिता उद्देश्य (Precautionary Motive)-** भविष्य की अनिश्चितताओं को पूरा करने हेतु मुद्रा की माँग दूरदर्शिता उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।
- **सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive)-** भविष्य में ब्याज दर, बाण्ड तथा प्रतिभूतियों की कीमतों में होने वाले परिवर्तन से लाभ उठाने हेतु की मुद्रा की माँग सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।

14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1. क 2. ग 3. घ

14.12संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

14.13सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

14.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लगान एक विभेदात्मक बचत है, स्पष्ट कीजिए।
2. लगान एक प्रकार का अतिरेक है। रिकार्डो तथा आधुनिक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "ब्याज पूँजी बचतों की पूर्ति एवं पूँजी निवेश में समानता स्थापित करता है।" इस कथन का परीक्षण कीजिये ।
4. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
5. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या निम्न स्थिति में कीजिए-

(क) जब भूमि के सभी टुकड़े समान उर्वरता के हों, तथा (ख) जब विभिन्न टुकड़ों की उर्वरता में भिन्नता हो । व्याख्या करते समय यह भी स्पष्ट करें कि मूल्य में वृद्धि के साथ-साथ लगान में भी वृद्धि होती जाएगी।

6. ब्याज के तरलता पंसदगी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 15 मजदूरी और लाभ का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Wages and Profit)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)
15.2 उद्देश्य (Objective)
15.3 मजदूरी के विभिन्न सिद्धान्त (Different Theories of Wages)
15.4 मजदूरी-निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Wages)
15.4.1 श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)
15.4.2 श्रम की माँग (Demand for Labour)
15.4.3 मजदूरी निर्धारण: माँग-पूर्ति सन्तुलन (Wage Determination: Demand-Supply Equilibrium)
15.4.4 पूर्ण प्रतियोगिता में दी हुई मजदूरी के अन्तर्गत एक फर्म का सन्तुलन (Equilibrium of Individual Firm Under given Wage Conditions of Perfect Competition)
15.4.5 अल्पकाल में श्रमिकों का प्रयोग (Use of Labour in Short Run)
15.4.6 दीर्घकाल में श्रमिकों का प्रयोग (Use of Labour in Long Run)
15.5 लाभ के विभिन्न सिद्धान्त (Different Theories of Profit)
15.6 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Profit)
15.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
15.8 सारांश (Summary)
15.9 शब्दावली (Glossary)
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
15.11 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची (Useful/Helpful Text)
15.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

उत्पादन की क्रिया में भाग लेने वाले साधनों को पारितोषित के रूप में कुछ प्रतिफल प्राप्त होते है जैसे भूमि को लगान, पूँजी को ब्याज तथा साहसी को लाभ, वैसे ही श्रम को मजदूरी प्राप्त होती है। इस इकाई में मजदूरी और लाभ के सिद्धान्त की चर्चा की गयी है। जिसमें आपको मजदूरी और लाभ के सिद्धांतों के बारे में बताते हुए मजदूरी और लाभ के आधुनिक सिद्धांतों को विस्तार से बताया गया हैं। इस इकाई के अंतर्गत आप यह समझ सकेंगे की श्रम की माँग और पूर्ति किस प्रकार निर्धारित होती हैं अथवा इससे मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार होता है। लाभ की परिभाषा के साथ ही आप लाभ के बाकि सिद्धांतों और लाभ के आधुनिक सिद्धान्त को भी जानेंगे तथा उसकी आलोचनाओ को भी समझेंगे।

15.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे की

- ✓ मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- ✓ मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती हैं और किस प्रकार संतुलन में रहती हैं, यह जान सकेंगे।
- ✓ यह जानेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कैसे मजदूरी संतुलन में बनी रहती हैं ।
- ✓ समझ सकेंगे कि लाभ कितने प्रकार के होते हैं?
- ✓ लाभ के आधुनिक सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

15.3 मजदूरी के विभिन्न सिद्धान्त (Different Theories of Wages)

विभिन्न विद्वानो ने मजदूरी निर्धारण की दृष्टि से कई सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जिसमे कुल 6 सिद्धान्त आते हैं।

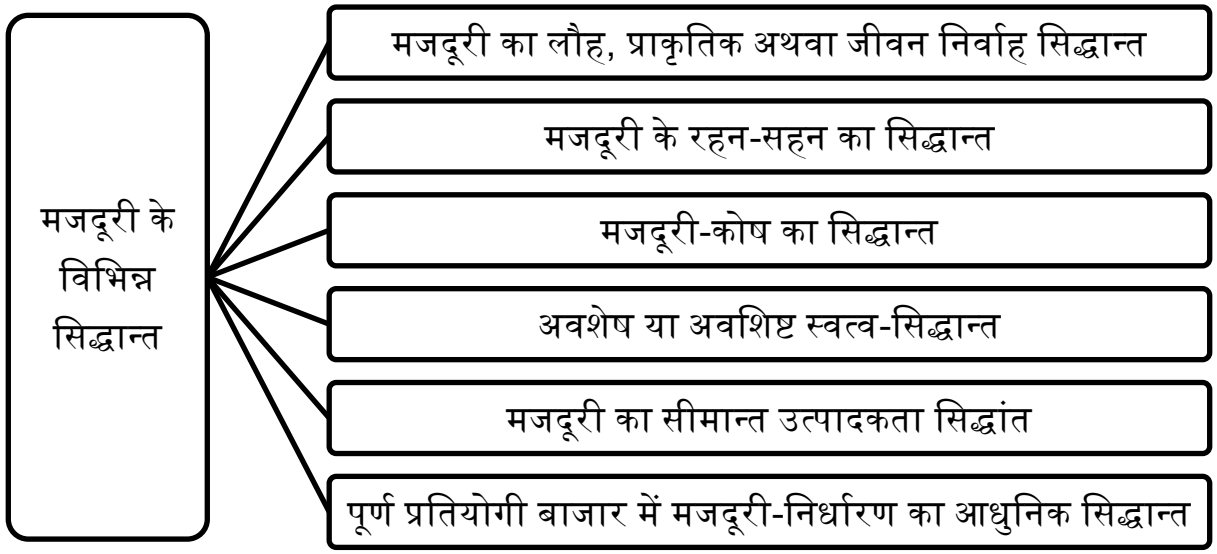

अब आप इन सभी सिद्धान्तों को एक-एक कर के पढेंगे और समझने की कोशिश करेंगे।

1. मजदूरी का लौह, प्राकृतिक अथवा जीवन निर्वाह सिद्धान्त (Iron, Natural and Subsistence Theory of Wages)- 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के मध्य एक प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री **टारगॉट** (Turgot) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी निर्धारण का एक प्राकृतिक सिद्धान्त है, जिसके अनुसार मजदूरी सदेव जीवन निर्वाह के बराबर ही रहती है। **रिकार्डो** (Ricardo) ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते समय दो प्रकार की मजदूरी की दरों की चर्चा की - प्राकृतिक दर (Natural Rate) तथा बाजार

दर। रिकार्डो के अनुसार श्रम की प्राकृतिक दर वह कीमत है जोकि श्रमिकों को एक दूसरे के साथ निर्वाह करने, अपनी जाति को, बिना वृद्धि अथवा किसी कमी के, स्थिर बनाये रखने के लिए आवश्यक है, अर्थात् प्राकृतिक दर वह दर है जो जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर मजदूरी की बाजार दर (Market Rate) वह दर है जो बाजार में प्रचलित रहती है तथा जिस पर श्रमिक कार्य करते हैं, श्रमिकों की संख्या में वृद्धि अथवा कमी के कारण मजदूरी की बाजार दर तथा प्राकृतिक दर में अन्तर हो सकता है। पर दीर्घकाल में दोनों बराबर होंगी। रिकार्डो ने यह विश्वास किया कि मजदूर का मूल्य (मजदूरी) जिसे भोजन तथा आवश्यक, आवश्यकता के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक अवस्था में स्थिर रहता है। इसलिए जर्मन अर्थशास्त्री **लासेल** (Lassel) ने इस सिद्धान्त को मजदूरी का लौह सिद्धान्त (Iron law of wages) कहा।

2. **मजदूरी के रहन-सहन का सिद्धान्त (Theory of Living Wages) :-** मजदूरी के जीवन निर्वाह- सिद्धान्त की कटु आलोचना इसके निराशावादी दृष्टिकोण के कारण की गई थी, तथा यह भी कहा गया कि इस सिद्धान्त में मजदूरी एवं कार्य क्षमता (ability to work) के बीच सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिये इस सिद्धान्त को सुधार कर मजदूरी के रहन-सहन स्तर के सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया गया। रहन-सहन सिद्धान्त का प्रतिपादन **टारेन्स** (Terence) ने किया। इसे **मजदूरी का सुनहरा सिद्धान्त (Golden law of wages)** भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर नहीं, बल्कि रहन-सहन के स्तर के बराबर होनी चाहिए।

3. **मजदूरी कोष का सिद्धान्त (Theory of Wage Fund) :-** मजदूरी निर्धारण के लिए मजदूरी कोष सिद्धान्त की व्याख्या, सिद्धान्त के रूप में **जॉन स्टुअर्ट मिल** (John Staurt Mill) ने वर्ष 1848 में अपनी पुस्तक 'Principles of Political Economy' में की परन्तु इस सिद्धान्त की झलक **एडम स्मिथ** (Adam Smith) के विचारों में भी मिलती है। एडम स्मिथ ने यह कहा कि मजदूरी देने के लिए उत्पादक के पास एक अलग कोष रहता है

मिल (Mill) के अनुसार ***"मजदूरी श्रम की माँग एवं पूर्ति पर निर्भर करती है। या इसे प्राय: इस रूप में भी व्यक्त किया जाता है कि मजदूरी जनसंख्या तथा पूँजी के सम्बन्ध पर निर्भर करती है।"*** मिल का जनसंख्या से अभिप्राय उस समूह से था जो मजदूरी के बदले अपनी सेवाओं को देने के लिए तत्पर हो तथा पूँजी का भी प्रयोग मिल ने विशिष्ट अर्थ में किया।

4. **अवशेष या अवशिष्ट स्वत्व सिद्धान्त (Residual Principle) :-** मिल के मजदूरी-कोष सिद्धान्त की यह आलोचना की गई कि मजदूरी तथा श्रम की कार्यक्षमता में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इस कमी को दूर करने के लिये अवशिष्ट स्वत्व- सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया। सबसे पहले **जेवेन्स (Jevons)** ने वर्ष 1862 में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया परन्तु बाद में अमेरिकन अर्थशास्त्री **वाकर** (Walker) ने इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया और आजकल यह सिद्धान्त उन्हीं के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी कुल उत्पादन का वह भाग है जोकि उत्पादन के अन्य साधनों को उनके पारिश्रमिक देने के बाद शेष रह जाता है। **जेवेन्स** (Jevons) के शब्दों में ***"श्रमिक की मजदूरी अन्त में उसके उत्पादन के ही अनुरूप होती है। कुल उत्पादन में से लगान, कर तथा पूँजी के भुगतान (ब्याज) को घटा देने पर जो शेष बचता है वहीं उसका उत्पादन होता है।"*** सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते समय **वाकर (Walker)** ने कहा ***"मजदूरी कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज तथा लाभ को घटाने पर शेष के बराबर होती है।"***

5. **मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Wages) :-** मजदूरी निर्धारण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त वितरण के सन्दर्भ में दिये गये सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का एक विशिष्ट रूप है। मजदूरी सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले **मार्शल (Marshall)** ने किया। **जे. बी. क्लार्क**, (J. B. Clark) अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी मजदूर की मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी। प्रत्येक उत्पादक किसी भी

श्रमिक को पारिश्रमिक उसके सीमान्त उत्पादन से अधिक नहीं देता है। यदि किसी श्रमिक की उत्पादकता अधिक हो तो उसे अधिक मजदूरी देने में भी उत्पादक संकोच नहीं करेगा। अल्पकाल में हो सकता है कि श्रमिक की मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक हो या कम हो परन्तु दीर्घकाल में निश्चित रूप से मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही होगी। यदि अल्पकाल में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम हुई तो उत्पादक को मजदूरी देने के बाद सीमान्त श्रमिक से कुछ अतिरिक्त उत्पादन लाभ के रूप में मिलेगा। परिणाम स्वरूप श्रम की माँग बढ़ेगी।

15.4 मजदूरी-निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Wages)

किसी वस्तु की कीमत की भांति ही श्रम की कीमत (मजदूरी) भी उसकी माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। श्रम की कुछ विशेषताओं के कारण, मजदूरी का निर्धारण करने के लिए एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त के अंतर्गत आप श्रम की माँग, पूर्ति और संतुलन के द्वारा समझेंगे कि किस प्रकार मजदूरी दर संतुलन में होती हैं।

15.4.1 श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)

श्रम की पूर्ति से अभिप्राय एक दिये हुए श्रमिक द्वारा विभिन्न मजदूरी दरों पर किए जाने वाले कार्य पर घण्टों की संख्या से हैं। श्रम कार्य घण्टों एवं मजदूरी दर में सामान्यतः एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है। ऊँची मजदूरी दर पर अधिक श्रमिक कार्य करने के लिए उपलब्ध होंगे तथा कम मजदूरी दर पर श्रमिकों की कम संख्या कार्य के लिए उपलब्ध होगी। इस प्रकार व्यापक दृष्टिकोण के अन्तर्गत कहा जा सकता है कि श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊपर बढ़ता हुआ होता है।

मजदूरी में परिवर्तन के कारण दो प्रकार के प्रभाव उत्पन्न होते है।

1. प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)

2. आय प्रभाव (Income Effect)

जब मजदूरी दर में वृद्धि होती है तो यह वृद्धि श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करती है जिसके कारण वे श्रमिक अपने आराम के घण्टों का अपने कार्य के घण्टों से प्रतिस्थापन करने लगते हैं। इसी प्रक्रिया को मजदूरी में वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाला प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) कहा जाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव धनात्मक होता है।

दूसरी ओर, श्रमिक आय का स्तर बढ़ जाने पर अधिक आराम को पसन्द करता है। जब मजदूरी दर में वृद्धि होती है तो अतिरिक्त आय मिल जाने के कारण श्रमिक अपने आराम के घण्टों की संख्या को बढ़ा देता है। यह मजदूरी में वृद्धि के कारण उत्पन्न आय प्रभाव (Income Effect) है, जो ऋणात्मक (Negative) होता है जिसके अनुसार मजदूरी की वृद्धि श्रमिक को अधिक आराम करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

मजदूरी में वृद्धि के कारण उत्पन्न प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव के कारण श्रम की वास्तविक पूर्ति (Actual Supply) दोनों प्रभावों की परिभाषा पर निर्भर करती है। श्रम की इस वास्तविक पूर्ति पर मजदूरी के परिवर्तन का सही अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है।

अर्थशास्त्रियों ने यह स्पष्ट किया है कि कम मजदूरी स्तर पर धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक बलशाली होता है जिसके कारण मजदूरी में वृद्धि होने पर अधिक श्रम - पूर्ति उपलब्ध होती है। इसके अनुसार श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊँपर बढ़ता हुआ होता है किन्तु मजदूरी में एक पर्याप्त स्तर तक वृद्धि हो जाने पर एक सीमा के बाद यह सम्भव है कि ऋणात्मक आय प्रभाव धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक बलशाली हो जाता हैं। ऐसी स्थिति में श्रम का पूर्ति वक्र उस पर्याप्त मजदूरी दर के बाद पीछे की ओर झुका हुआ हो जाता है जैसा कि चित्र 15.1 में दिखाया गया है। इस चित्र में श्रम का पूर्ति वक्र

OW_1 मजदूरी स्तर तक बायें से दायें ऊपर बढ़ता हुआ है क्योंकि इस मजदूरी स्तर तक धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक है किन्तु इस मजदूरी स्तर के बाद जब मजदूरी बढ़कर OW हो जाती है तब आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव से बलशाली हो जाता है जिसके कारण श्रमिक की पूर्ति ON_2 से घट कर ON_3 हो जाती है।

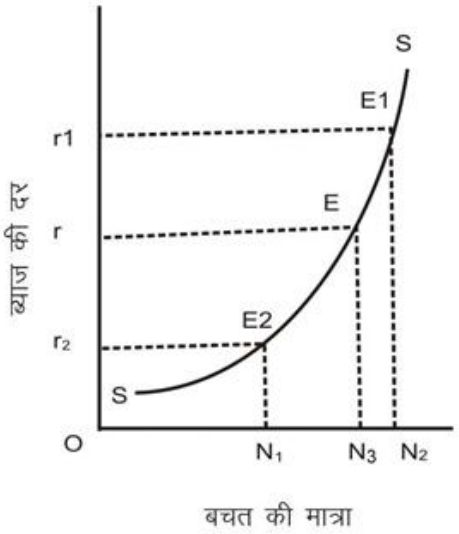

चित्र - 15.1

15.4.2 श्रम की माँग (Demand of Labour)

किसी वस्तु के उत्पादन के लिए श्रम की माँग उद्यमियों द्वारा की जाती है। श्रम की माँग उस वस्तु की माँग पर निर्भर करती है जिसके उत्पादन में उस श्रम का प्रयोग किया जाता है। उद्यमी किस बिन्दु तक श्रमिक की माँग करेगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस श्रम की उत्पादकता क्या हैं?

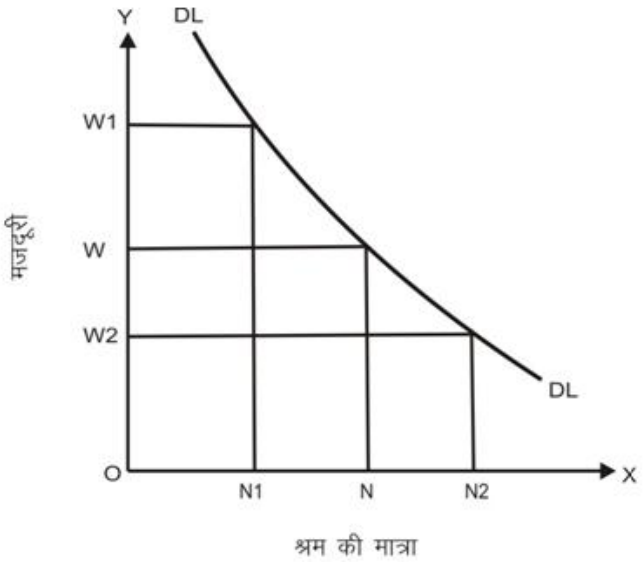

चित्र - 15.2

श्रमिकों को मजदूरी उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर दी जाती है। उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण जब श्रम की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता हैं तो श्रम की अतिरिक्त इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता घटती चली जाती है। किसी उद्योग के सीमान्त आय उत्पाद (Marginal Revenue Product -MRP) वक्र का घटता हुआ भाग ही उस उद्योग-विशेष के श्रम की माँग वक्र को बताता है। चित्र 15.2 में श्रम का वक्र D_L D_L प्रदर्शित किया गया है जो बायें से दायें ओर नीचे गिरता हुआ है। श्रम का माँग वक्र, मजदूरी दर एवं श्रम की माँग को दर्शाती है। यह श्रम की मात्रा और मजदूरी के विपरीत सम्बन्ध को बताता है अर्थात् ऊँची मजदूरी दर पर श्रमिकों की माँग कम होती है।

15.4.3 मजदूरी निर्धारण:- माँग-पूर्ति सन्तुलन (Wage Determination:- Demand Supply Equilibrium)

एक उद्योग में मजदूरी का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ श्रम की माँग एवं श्रम की पूर्ति परस्पर बराबर होते हैं। चित्र 15.3 में इस सन्तुलन स्थिति को बिन्दु E पर दिखाया गया है।

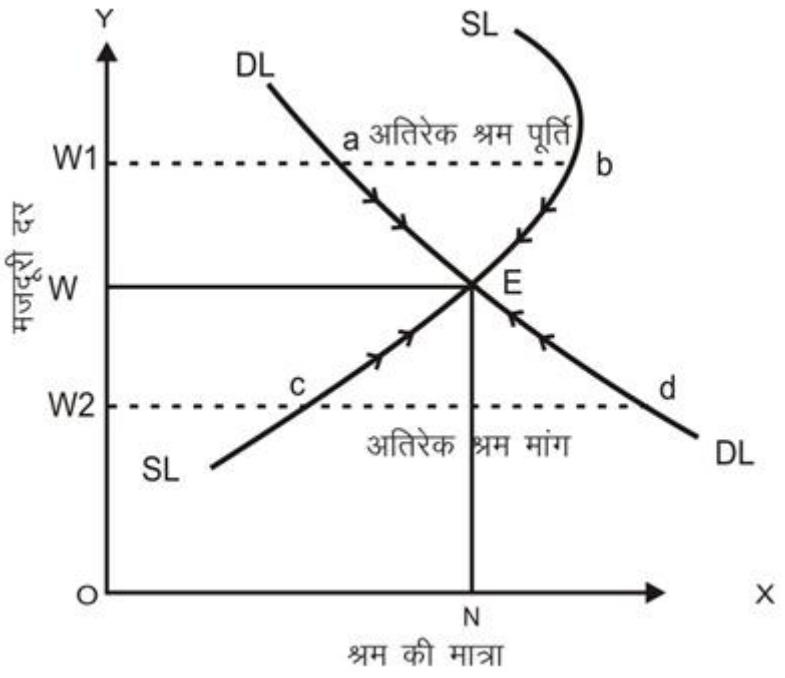

चित्र – 15.3 मजदूरी निर्धारण

सन्तुलन बिन्दु E पर
श्रम की माँग = ON
श्रम की पूर्ति = ON तथा, मजदूरी पर =OW

यदि मजदूरी दर पर aW_1 श्रम की माँग तथा bW_1 श्रम की पूर्ति है। दूसरे शब्दों में OW_1 मजदूरी दर पर ab अतिरेक श्रम पूर्ति (Surplus Labour Supply) उपस्थित होती है। यह अतिरिक्त पूर्ति अथवा बेरोजगारी श्रमिकों के मध्य स्पर्धा उत्पन्न करेगी जिसके कारण मजदूरी दर में कमी होनी प्रारम्भ होगी। मजदूरी में कमी की यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक की श्रम की माँग तथा श्रम की पूर्ति पुनः बिन्दु E पर बराबर ना हो जाए। इसके विपरीत, यदि किसी कारणवश श्रम की मजदूरी दर OW_2 हो जाती है, तो इस दशा में cW_2 श्रम की पूर्ति और dW_2 श्रम की माँग प्राप्त होती है अर्थात OW_2 मजदूरी दर पर cd अतिरेक श्रम की माँग

(Surplus Labour Demand) प्राप्त होती है। श्रमिकों की यह अतिरिक्त माँग, मजदूरी दर को तब तक बढ़ाएगी जब तक कि पुनः बिन्दु E पर माँग और पूर्ति सन्तुलन में ना आ जाए।

15.4.4 पूर्ण प्रतियोगिता में दी हुई मजदूरी के अन्तर्गत एक फर्म का सन्तुलन (Equilibrium of Individual Firm Under given Wage Conditions of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म और उद्योग के मध्य एक विशेष सम्बन्ध पाया जाता है जिसके अनुसार उद्योग में श्रम की माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा जो भी मजदूरी निर्धारित होती है उसे उद्योग के अन्तर्गत कार्यरत प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म मजदूरी दर को प्रभावित नहीं कर सकती क्योंकि एक फर्म श्रमिको की कुल पूर्ति का केवल एक छोटा अंश प्रयोग करता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी रेखा पूर्ण लोचदार (Perfectly Elastic) अथवा एक क्षैतिज (horizontal) रेखा के रूप में होती है।

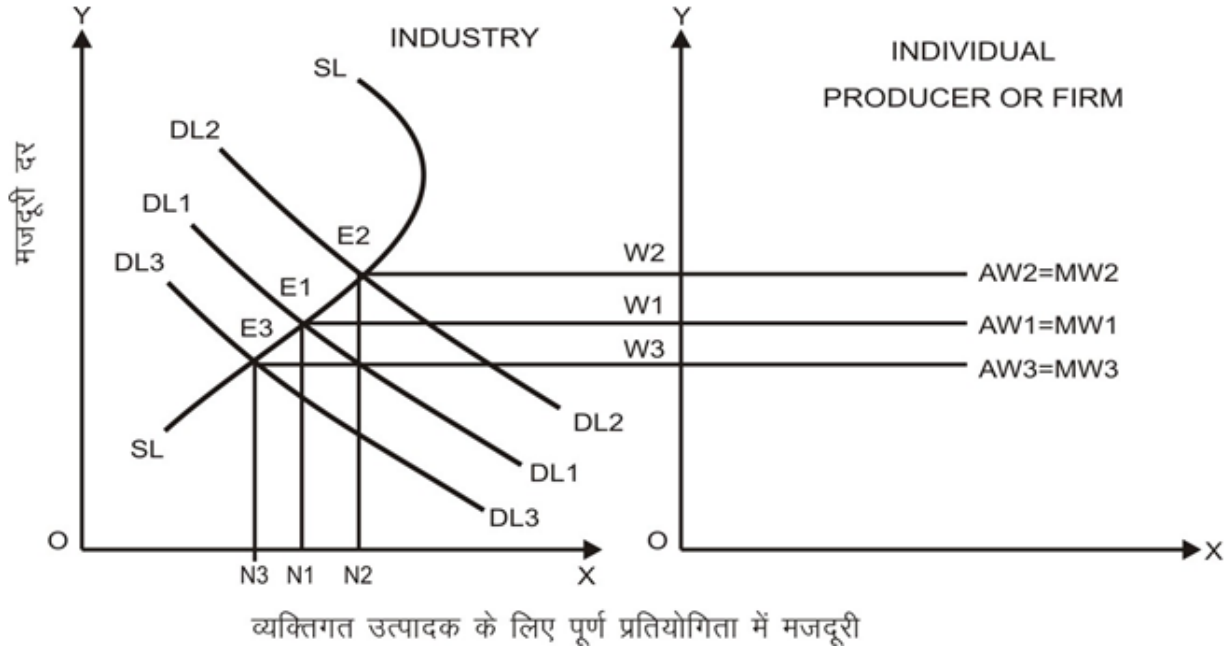

चित्र 15.4

चित्र 15.4 में उद्योग एवं फर्म के सम्बन्ध को दिखाया गया है। उद्योग में श्रम की माँग एवं श्रम की पूर्ति वक्रों का सन्तुलन बिन्दु E_1, E_2 तथा E_3 पर दिखाया गया है। जिन पर क्रमशः उद्योग में OW_1, OW_2 तथा OW_3 मजदूरी दरों का निर्धारण होता है। इन विभिन्न मजदूरी दरों पर व्यक्तिगत फर्म को क्रमशः $AW_1=MW_1$, $AW_2=MW_2$ तथा $AW_3=MW_3$ को बताने वाली पड़ी रेखाएं पूर्ति रेखा के रूप में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक व्यक्तिगत फर्म के लिए औसत मजदूरी (AW) तथा सीमान्त मजदूरी (MW) बराबर होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी रेखा क्षैतिज (horizontal) होने के कारण व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी दर स्तर दिया हुआ तथा स्थिर होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म इस दिये हुए स्तर पर उस

बिन्दु तक श्रमिकों की संख्या का प्रयोग करेगी जहाँ श्रमिकों की सीमान्त आगम उत्पादकता, श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी के बराबर हो जाये (अर्थात् MRP=MW)। इस प्रकार एक फर्म के सन्तुलन की शर्त है MRP=MW । यदि सीमान्त आय उत्पाद (Marginal Revenue Product -MRP) अधिक है MW से, इस स्थिति में एक फर्म अतिरिक्त श्रमिकों का प्रयोग उस सीमा तक करती रहेगी जब तक MRP=MW ना हो जाये। दूसरी ओर, यदि सीमान्त आय उत्पाद (Marginal Revenue Product -MRP) कम है MW से तो फर्म अपनी हानि के कम करने की दृष्टि से श्रमिकों का उस सीमा तक कम प्रयोग करेगी जहाँ MRP=MW। संक्षेप में, MRP=MW ही फर्म की संतुलन की दशा है।

15.4.5 अल्पकाल में श्रमिकों का प्रयोग (Use of Labour in Short Run)

अल्पकाल में एक फर्म को श्रमिकों के प्रयोग की दृष्टि से लाभ, सामान्य लाभ या हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं। दी हुई मजदूरी की दशा में फर्म का अल्पकालीन लाभ चित्र 15.5 में दिखाया गया है। चित्र में सन्तुलन बिन्दु E है जहाँ-

मजदूरी की दर = OW
उपयोग की गयी श्रम की मात्रा = ON
प्रति इकाई लाभ = ER
फर्म का कुल लाभ = ERSW क्षेत्रफल

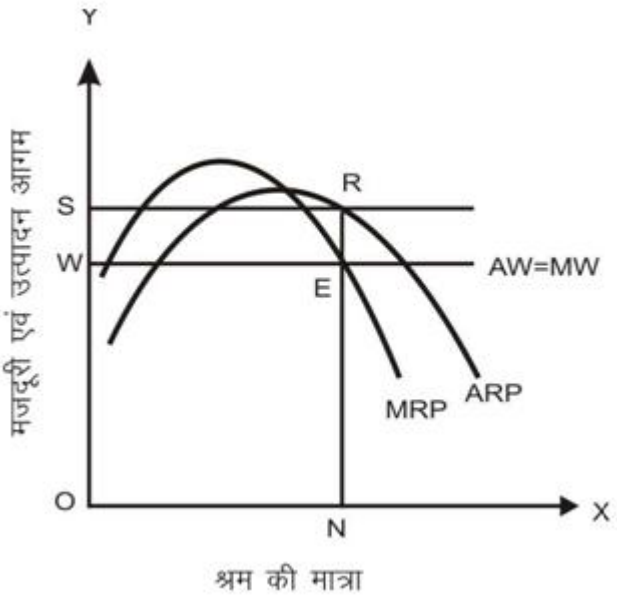

चित्र 15.5 फर्म का अल्पकालीन लाभ (दी हुई मजदूरी की दशा में)

चित्र 15.6 में दी गयी मजदूरी की दशा में फर्म का अल्पकालीन सामान्य लाभ दिखाया गया है। फर्म का सन्तुलन बिन्दु E पर उपस्थित होता है।

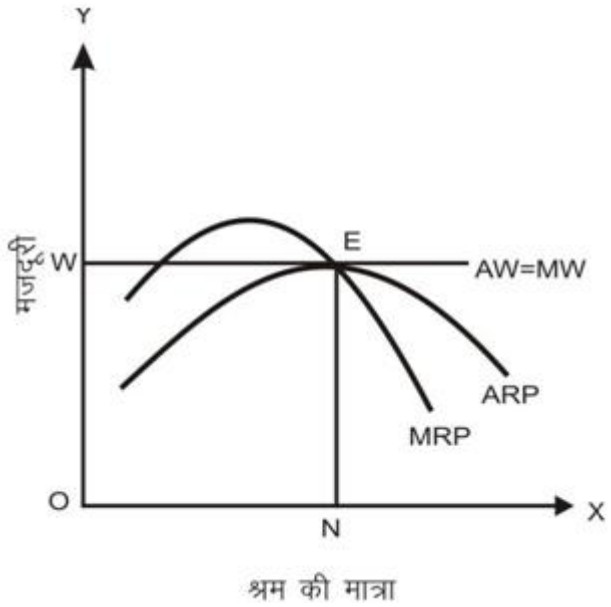

चित्र 15.6 फर्म का सामान्य लाभ (दी हुई मजदूरी की दशा में)

जहाँ मजदूरी दर = OW = औसत मजदूरी (AW) = सीमान्त मजदूरी (MW); उपयोग की गई श्रम की मात्रा = ON

चित्र 15.7 में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दी हुई मजदूरी की दशा में फर्म की अल्पकालीन हानि को दिखाया गया है। सन्तुलन की शर्त के अनुसार सन्तुलन बिन्दु E पर उपस्थित होगा जहाँ-

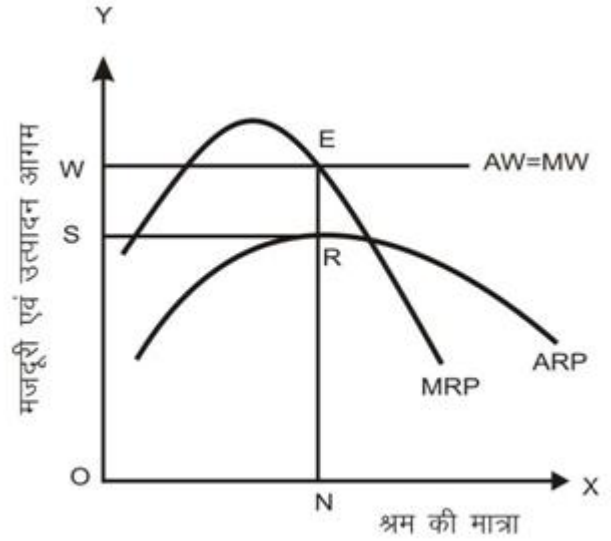

चित्र 15.7 फर्म की अल्पकालीन हानि (दी हुई मजदूरी की दशा में)

मजदूरी की दर = OW

उपयोग की गई श्रम की मात्रा = ON

प्रति इकाई हानि = ER

फर्म का कुल हानि = WERS

15.4.6 दीर्घकाल में श्रमिकों का प्रयोग (Use of Labour in Long Run)

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकालीन अवधि में फर्म को केवल सामान्य लाभ (Normal Profit) ही प्राप्त होता है। क्योंकि दीर्घकाल में सदैव औसत मजदूरी (AW), औसत आगम उत्पादकता (ARP) के बराबर होती है। दीर्घकाल में यदि फर्म को अतिरेक लाभ (Super Normal Profit) प्राप्त होता है तब इस अतिरेक लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नई फर्मों का प्रवेश होगा जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की माँग बढ़ने के कारण उनकी मजदूरी (AW) भी बढ़ेगी तथा अधिक फर्मों द्वारा उत्पादन करने के कारण औसत आगम उत्पादकता (ARP) कम हो जाएगी। इन दोनों प्रभावों का सामूहिक परिणाम यह होगा कि पुनः ARP=AW की स्थिति उत्पन्न होगी, अर्थात् फर्म का अतिरेक लाभ घटकर सामान्य लाभ में परिवर्तित हो जाएगा। इसके विपरीत यदि फर्म को हानि होगी तो दीर्घकाल में कुछ फर्में उद्योग छोड़कर बाहर चली जाएगी। जिसके कारण उद्योग में श्रमिकों की माँग घट जाएगी तथा साथ ही वस्तु का उत्पादन भी घट जाएगा। इन प्रभावों का संयुक्त परिणाम ARP=AW के रूप में उपस्थित होगा जोकि फर्म के दीर्घकालीन सन्तुलन को बताता है।

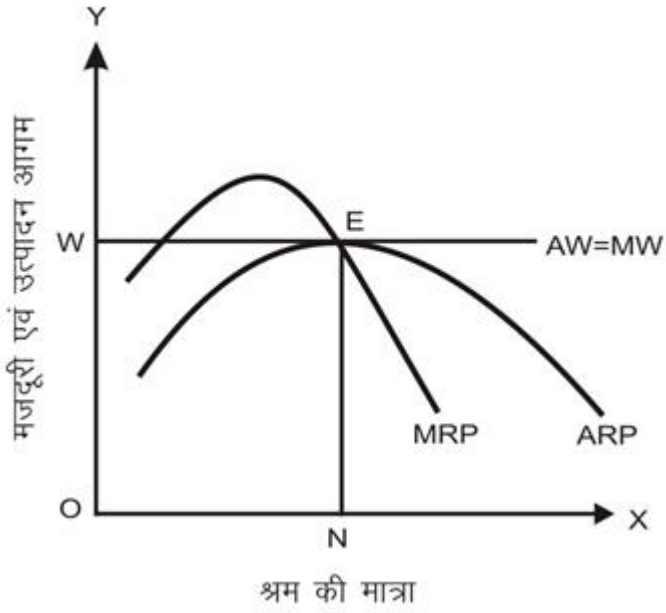

चित्र नं. 15.8

चित्र 15.8 में दीर्घकाल में फर्म की सामान्य लाभ की दशा को दिखाया गया है।
सन्तुलन बिन्दु E पर,
मजदूरी दर = OW, उपयोग की गई श्रम की मात्रा = ON, तथा **AW = MW= ARP= MRP**
अर्थात् दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए इस स्थिति का होना आवश्यक है।

15.5 लाभ के विभिन्न सिद्धान्त (Different Theories of Profit)

विभिन्न विद्वानों ने लाभ निर्धारण की दृष्टि से कई सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं। मजदूरी के सिद्धान्त पढने के बाद अब आप लाभ के सिद्धान्त पढेंगे।

15.6 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Profit)

शुम्पीटर (Schumpeter) के नवप्रर्वतन (Innovation) सिद्धान्त, में शुम्पीटर ने इस बात पर बल दिया हैं कि साहसी का प्रमुख कार्य उत्पादन क्रिया में नवप्रवर्तन को लाना है तथा लाभ इसी नवप्रवर्तन की

क्रिया का प्रतिफल है। नवप्रवर्तन से उनका अभिप्राय किसी भी ऐसे परिवर्तन से है जिसके फलस्वरूप उनकी आय में वृद्धि आए। हम पहले ही जान चुके हैं कि किसी साहसी की आय दो कारक पर निर्भर करती है -पहला: उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन लागत, दूसरा: उत्पादित वस्तु की माँग। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नवप्रवर्तन एक ओर तो उत्पादन फलन में लाए जाने वाले ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है जिससे न्यूनतम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन की प्राप्ति हो सके तथा दूसरे ऐसे परिवर्तन जिनसे उत्पादित वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो सके। इस प्रकार नवप्रवर्तन के अन्तर्गत प्रायः निम्नांकित क्रियायें आती हैं-

1. उत्पादन की नयी प्रविधि या तरीकों को जन्म देना।
2. कच्चे माल तथा सामग्रियों के किसी नए स्रोत की खोज।
3. किसी भी उद्योग में नई संगठन व्यवस्था को बनाए रखना।
4. किसी नई वस्तु को बाजार में लाना।
5. किसी नए बाजार की खोज करना।

प्रो. शुम्पीटर (Prof. Schumpeter) ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि किसी नवप्रवर्तन के कारण सफलता मिली है तथा इसके फलस्वरूप या तो उत्पान लागत में कमी हुई या माँग में वृद्धि हुई तो लाभ का जन्म होगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का लाभ साहसी के उस प्रयास का ही परिणाम है, जिसे नवप्रर्वतन कहा जा सकता है। नवप्रवर्तन के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि साहसी उस नई प्रविधि का आविष्कार करे। आविष्कार करने वाला तो कोई दूसरा व्यक्ति भी हो सकता है, जिसने शोध (Research) किया है, जैसे किसी नई मशीन का आविष्कार, उस नई मशीन या प्रविधि के लिए वित्तीय सहायता भी दूसरा व्यक्ति दे सकता है पर इन्हें जो इस क्रिया के कारण आय प्राप्त होगी वह लाभ नहीं होगा। वित्तीय सहायता देने वाले पूँजीपति को तो ब्याज मिलेगा, आविष्कारक को 'पेटेन्ट राइट' के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त होगा। लाभ तो उस साहसी को मिलेगा जो उस नए आविष्कार या प्रविधि को क्रियान्वित करता है, उत्पादन में उसे प्रयोग करने का साहस करता है।

नवप्रवर्तन तथा लाभ के सम्बन्ध में **प्रो. स्टिगलर** (Stigler) का दृष्टिकोण अत्यन्त ही उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार "जब तक कि कोई एक स्थायी एकाधिकार की स्थिति स्थापित नहीं कर लेता, ऐसे लाभ जो सफल नवप्रवर्तन के कारण प्राप्त होते हैं, संक्रमणकारी (अस्थायी) होंगे और अन्य फर्मों के इन्हें बाँटने के प्रयास के कारण समाप्त हो जाएँगे। परन्तु यह लाभ अन्य फर्मों की इसके सम्बन्ध में अनभिज्ञता के कारण या नई फर्मों के प्रवेश में समय लगने के कारण, पर्याप्त समय के लिए बने रह सकते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि एक सफल नव-प्रवर्तक लगातार इस प्रकार के असामान्य लाभ को अर्जित कर सकता है, क्योंकि नवप्रवर्तन को उत्पादन के प्रयोग में शुरू करता है तो कुछ समय तक तो उसकी सफलता के कारण उसे एकाधिकार की स्थिति प्राप्त हो जाती है और वह असामान्य लाभ अर्जित करता है। पर धीरे-धीरे यह लाभ समाप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रो. शुम्पीटर के नवप्रवर्तनजन्य लाभ की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसका स्वभाव अस्थायी होता है। दीर्घकाल में यह समाप्त हो जाता है। यदि कोई साहसी अपने नवप्रवर्तन के सम्बन्ध में पेटेण्ट राइट प्राप्त करले तथा इस प्रकार दूसरों द्वारा इसके अनुकरण को कानून के अन्तर्गत प्रतिबन्धित कर दें तो उसका एकाधिकारिक लाभ बना रहता है पर ऐसा कम ही हो पाता है। **प्रो. शुम्पीटर** का यह मत है कि नवप्रवर्तनजन्य लाभ कभी भी स्थायी नहीं होता। इस दृष्टि से लाभ आय के अन्य स्वरूप जैसे लगान, ब्याज, मजदूरी से भिन्न होता है। आय के अन्य स्वरूप तो स्थायी है क्योंकि यह प्रसंविदाजन्य (contractual) हैं, सभी परिस्थितियों में यह बने रहेंगे पर लाभ एक अस्थायी अवशेष या अतिरेक है जो नवप्रवर्तन के कारण उत्पन्न होता है।

लाभ के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनाएं

अर्थशास्त्रियों के अनुसार इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न हैं

1. यह सिद्धान्त हमारे समक्ष लाभ की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। इसमें सन्देह नहीं है कि नवप्रवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होता है। नव प्रवर्तन, वास्तव में लाभ के महत्वूर्ण निर्धारक हैं। लेकिन नवप्रवर्तनों के अलावा अन्य बहुत से ऐसे तत्व हैं जो लाभ का कारण बनते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त उन पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। यह सिद्धान्त तो पुरा बल नवप्रवर्तनों पर ही देता है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम झेलने का प्रतिफल नहीं है। प्रो. शुम्पीटर के शब्दों में, ***"उद्यमकर्ता कभी जोखिम नहीं उठाता। यदि उसका व्यवसाय असफल हो जाता है तो उससे ऋण प्रदान करने वाले व्यक्ति को ही हानि होती है।"*** प्रो. शुम्पीटर के अनुसार, जोखिम पूँजीपति द्वारा उठाया जाता है, उद्यमकर्ता द्वारा नहीं। लेकिन प्रो. शुम्पीटर का कथन तथ्यों के विपरीत है। वास्तव में, उद्यमकर्ता जोखिम उठाता है, पूँजीपति नहीं।
3. उद्यमकर्ता के कार्यों पर यह सिद्धान्त एक संकुचित सा दृष्टिकोण अपनाता है। उद्यमकर्ता का कार्य केवल नवप्रवर्तनों को क्रियान्वित करना ही नहीं है, यह व्यवसाय के समुचित संगठन के लिए भी समान रूप में उत्तरदायी होता है। अत: लाभ केवल नवप्रवर्तनों के कारण ही नहीं होता यह उद्यमकर्ता द्वारा सम्पन्न किए गए अन्य संगठनात्मक कार्यों के कारण भी होता है। यह सर्वविदित है कि सभी उद्यमकर्ता नवप्रवर्तन नहीं करते लेकिन फिर भी उन्हें कुछ लाभ तो प्राप्त होता ही रहता है।

15.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मजदूरी का अवशेष सिद्धान्त निम्नलिखित में से किसने प्रतिपादित किया था?

   क. पीगू ख. मार्शल ग. जे.वी. से घ. वाकर

2. मजदूरी का लौह नियम का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री ने किया ?

   क. रिकार्डो ख. एडम स्मिथ ग. जे०एस० मिल घ. पीगू

3. श्रम पूर्ति वक्र-

   क. पूर्ति वक्र के ही समान होता है।

   ख. पूर्ति वक्र से विपरीत होता है।

   ग. एक सीमा तक पूर्ति वक्र जैसा होता है, फिर बायीं ओर मुड़ता है।

   घ. एक सीमा तक पूर्ति वक्र जैसा होता है फिर दायीं ओर मुड़ता है।

15.8 सारांश (Summary)

इस इकाई में मुख्य रूप से मजदूरी एवं लाभ के आधुनिक सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी हैं और इसी के साथ मजदूरी एवं लाभ के अन्य सिद्धान्तों को भी बताया गया हैं। इस इकाई में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा राष्ट्रीय आय में से श्रमिकों को मिलने वाले अंश को निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है। यद्यपि मजदूरी और लाभ के आधुनिक सिद्धान्त आपके अध्ययन हेतु विस्तारपूर्वक बताए गए हैं। आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से कुछ भिन्न है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तों के महत्व को पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस इकाई में आप मजदूरी के सिद्धान्त के अलावा मजदूरी पूर्ति वक्र के बारे में अथवा वक्र में आए परिवर्तन के बारे में भी पढेंगे। यही नहीं जीवन स्तर में वृद्धि, वर्तमान की बढ़ती माँग, श्रम कल्याण उपाय, बाजार की दशा, कार्य आराम अनुपात, श्रम की माँग, श्रमिकों की विशिष्टता, अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन अवधि का मजदूरी निर्धारण में महत्वपूर्ण भागीदारी होती है। स्थान, समय तथा परिस्थिति का भी मजदूरी दर पर प्रभाव पड़ता है। लाभ के सन्दर्भ में बात करे तो इस इकाई में आप, कुल लाभ तथा वास्तविक लाभ के अन्तर को समझते हुए सामान्य लाभ तथा असामान्य लाभ के बारे में जानेंगे। लाभ के प्रतिष्ठित से लेकर आधुनिक सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन विधि में सुधार, तकनीकी विकास, पूँजी की पूर्ति में

वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचि, इच्छा आदि में हुए परिवर्तन तथा औद्योगिक संगठनों में हुए परिवर्तनों तथा नवप्रवर्तन का लाभ के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है? यह सब आपने इस इकाई में पढ़ा एवं सीखा है।

15.9 शब्दावली (Glossary)

- **मजदूरी कोष (Wage Fund) -** मजदूरी देने के लिए उत्पादक के पास जो अलग कोष होता है, जिसमें से वह मजदूरी देता है उसे मजदूरी कोष कहते हैं।
- **श्रम की पूर्ति (Supply of Labour) -** इस से अभिप्राय एक दिये हुए श्रमिक द्वारा विभिन्न मजदूरी पर प्रस्तुत किए जाने वाले कार्य घण्टों की संख्या से हैं।
- **कार्य-आराम अनुपात (Work Leisure Ratio) -** श्रम की पूर्ति को प्रभावित करने वाला वह तत्व जिसमें एक श्रमिक के लिए कार्य आराम अनुपात को जाना जाता है।
- **औसत मजदूरी (Average Wage) -** सामान्य रूप से एक मजदूर को मिलने वाली मजदूरी।
- **सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage) -** एक अतिरिक्त श्रमिक की सीमान्त मजदूरी।
- **सामान्य लाभ (Normal Profit) -** किसी उद्योग में साहसी द्वारा वह लाभ जो उसे उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक है। सामान्य लाभ या साहसी की स्थानान्तरण आय है।
- **कुल लाभ (Total Profit)-** साहसी द्वारा लगाए गए व्यक्तिगत साधनों जैसे भूमि तथा पूँजी का प्रतिफल, ह्रास तथा संरक्षण व्यय, प्रबन्धक का प्रतिफल, एकाधिकारी लाभ, आकस्मिक लाभ, शुद्ध लाभ के योग को कुल लाभ कहते है।
- **शुद्ध लाभ (Net Profit) -** साहसी के साधनों का प्रतिफल, ह्रास तथा संरक्षण व्यय, प्रबन्ध का प्रतिफल, एकाधिकारी लाभ, आकस्मिक लाभ के योग को शुद्ध लाभ कहते है।

15.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) ***उच्चतर आर्थिक विश्लेषण***, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटिड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2009) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त***, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1999) ***व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण,*** शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1999) ***व्यष्टि अर्थशास्त्र***, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) ***Micro Economics***, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) ***Modern Micro-Economics Theory***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) ***Principles of Economics,*** Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

- Stonier and Hague (2011) ***A Text Book of Economics***, Oxford Publications, New Delhi.

15.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. मजदूरी से आप क्या समझते हैं? मजदूरी के प्रतिष्ठित - सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।
3. मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. लाभ से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? सामान्य लाभ तथा असमान्य लाभ बताए।
4. शुम्पीटर के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. मजदूरी का लौह, प्राकृतिक अथवा जीवन निर्वाह सिद्धान्त एवं मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।